भूमिका ।



ससारकी अपनी मर्यादामे स्थिति राजशासनके अधीन है, वह शासन जिन नियमोके अनुसार होता है उसको राजनीति कहते है, उस नीतिके अनुसार वर्तनेसे राजाको इस लोकमे यश और परलोकमें आनन्द प्राप्त होता है, यद्यपि भारतवर्षकी पुरातन राजनीतिके पूरे ग्रन्थ इस समय सर्वथा प्राप्त नही होते, पर तोभी जो कुछ मिलते है उनमे बहुत कुछ भरा पडा है, उनमेंसे हम आज एक ग्रन्थ कामन्दकीय नीतिसारका अनुवाद करके यह दिखलाना चाहते है कि नीतिसार होनेपर भी इसके समस्त विषय महाराजोके परम उपयोगी है, यदि महीपालगण ऐसे ग्रन्थोंका अपने राजकुमारोंको अभ्यास करावें, तो वह प्रजापालन कोषवृद्धि सदाचरणमें तथा धर्मप्रचारमें बहुत कुछ वृद्धि करसकते है, इस अवसरमें हम महामहिम गुणिजनमण्डलीमण्डन गढवाल टिहरीनरेश महाराजाधिराज श्री १०८ श्रीकीर्तिसाहजी बहादुर के सी एस आई महोदयको अनेक धन्यवाद करते है कि, जो ऐसे पुरातन ग्रन्थोंके अनुशीलनपूर्वक पुरातन राजनीतिग्रन्थोंका आदर करते हुए धर्मसे प्र[illegible] करते है, यदि इसी प्रकार अन्य महीपति इस ओर दत्तचित्त हो त[illegible]न राजनीतिके ग्रन्थ फिर जगमगा उठें, और राजा प्र[illegible]दिनोंदिन होती रहे

इस ग्रन्थमें राजनीति सम्बन्धी प्राय समस्त [illegible] गया है जिनमें यह भलीभाँति प्रगट होजाता है [illegible] इसमें राजकुमारोंके कर्तव्य, राजा प्रजाका सम्बन्ध, [illegible] धारी, दुर्गादिनिर्माण, पर्यटन सभाप्रवेश आदि अनेक विष[illegible]णाके साथ लिखेगये है जिनका वर्णन १९ सर्गोमें इस ग्रन्थमे वर्णन किया गया है

यह ग्रन्थरत्न आगतक केवळ संस्कृतमें ही था पर अब सबके निमित्त वैश्यवंशदिवाकर सनातनधर्मप्रचारनिरत 'श्रीवेङ्कटेश्वर' प्र ध्यक्ष सेठजी श्रीयुत खेमराज श्रीकृष्णदासजी महोदयकी अनुमति भाषानुवाद किया गया है, और आशा है कि यह ग्रन्थ राज्य मोपयोगी होगा और सर्व साधारण भी इसके अव नकी योग्यता तथा राजकाजमें चतुराई प्राप्त कर र्में बहुत कुछ सावधानी कीगई है, तथापि जो सज्जन विद्वान् कृपाकर उस जायगी।

मुझ आश ... का अवलोकनकर मुझे प्र फर्ग यह परमोत्तम ग्रन्थ ... जकर राजकाजमें दक्ष कराकर त्रिवर्ग साधन करावे इसी कारणस विख्यात पत्र श्री समाचार के उपहारमें वितरण करनेका संकल्प किया गया है।

सज्जनोंका अनुगृहीत–
पं० ज्वालाप्रसादमिश्र,
मुहल्ला दिनदारपुरा
मुरादाबाद

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

कामन्दकीयनीतिसारः।

भाषाटीकासहितः ।

प्रथमः सर्गः १.

यस्य प्रभावाद्भुवनं शाश्वते पथि तिष्ठति ।
देवः स जयति श्रीमान् दण्डधारो महीपतिः ॥ १ ॥

दोहा–जिनकी कृपाकटाक्षसे, सिद्ध होत सब काम ।
जन ज्वालाप्रसादपर, द्रवहु राम घनश्याम ॥ १ ॥

जिसके प्रभावसे यह त्रिभुवन सनातन मर्यादा नीतिमार्गमे निरन्तर स्थिति करताहै उस परात्पर दण्डधारी परमेश्वरकी सदा जय हो, अथवा जिसके प्रतापसे यह भूमण्डल निरन्तर धर्ममार्गमे प्रवर्तित होताहै, उस प्रबल प्रतापी राजाकी सदा जय हो ॥ १ ॥

वंशे विशालवंश्यानामृषीणामिव भूयसाम् ।
अप्रतिग्राहकाणां यो बभूव भुवि विश्रुतः ॥ २ ॥

जिसने अप्रतिग्रहशील विशालकुलमे बडे म[illegible]की समान प्रसिद्ध-[illegible]में जन्म ग्रहण कियाहै जो पृथ्वीमे विख्या[illegible] ॥

जातवेदा इवार्चिष्मान् वेदा[illegible] ।
योऽधीतवान् सुचतुरश्चतुरो[illegible]

जो अग्निके समान तेजस्वी जिसने एक[illegible]
अथर्व, चारो वेदोंका अध्ययन कियाहै ॥ ३ ॥

यस्याभिचारवज्रेण वज्रज्वलनतेजसः ।
पपात मूलतः श्रीमान् सुपर्वा नन्दपर्वतः ॥ ४ ॥

जो वज्र और अग्निके समान तेजस्वी जिसके मंत्राभिचाररूप व महातेज वज्र पर्वबाला श्रीमान् नन्दवंशरूप पर्वत समूल नष्ट होगया ॥

एकाकी मन्त्रशक्त्या य शक्त्या शक्तिधरोपम ।
आजहार नृचन्द्राय चन्द्रगुप्ताय मेदिनीम् ॥ ५ ॥

कार्तिकेयके समान जिसने इकले ही मन्त्र [illegible] साम्राज्य दिया ॥ ५ ॥

[illegible] अर्थशास्त्रमहोदधे ।
[illegible] वेधसे ॥ ६ ॥

[illegible] अमृत निकाला [illegible] असीमगुणसम्पन्न विष्णुगुप्त [illegible] नमस्कारहै ॥ ६ ॥

दर्शनात् तस्य सुदृशो विद्यानां पारदृश्वन ।
राजविद्याप्रियतया संक्षिप्तग्रन्थमर्थवत् ॥ ७ ॥

आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता और दण्डनीति प्रभृति सर्वशास्त्रविशारद निर्मलज्ञानसम्पन्न उस गुरुवर विष्णुगुप्तप्रणीत शास्त्रका अनुशीलन करके जो ज्ञान प्राप्तकियाहै उसके अनुसार राजनीतिप्रियताके कारण संक्षेप मद "नीतिसार" प्रकाश करताहूं ॥ ७ ॥

उपार्जने पालने च भूमेर्भूमीश्वरं प्रति ।
यत्किञ्चिदुपदेक्ष्यामो राजविद्याविदां मतम् ॥ ८ ॥

राज्यलाभ और राज्यप्रतिपालनसम्बन्धमें राजाओंको जो उपाय अवलम्बन करने उचितहैं हम इस ग्रन्थमें सो वर्णन करतेहैं ॥ ८ ॥

राजास्य जगतो हेतुर्वृद्धेर्वृद्धाभिसम्मत ।
नयनानन्दजननः शशाङ्क इव तोयधेः ॥ ९ ॥

सर्वप्रधान प्रथम राजाहीका वर्णन करते हैं कि इस जगत्की उन्न

कमात्र राजाही हेतुहै, यह वृद्धजनोंने कहाहै, चन्द्रमा जिसप्रकार समुद्रको ल्हादित करताहै, इसीप्रकार राजा प्रजाके नेत्रोंको आनन्द देताहै ॥९॥

यदि न स्यान्नरपतिः सम्यङ्नेता ततः प्रजा ।
अकर्णधारा जलधौ विप्लवेतेह नौरिव ॥ १० ॥

यदि भलीप्रकार शिक्षा करनेवाला राजा न हो तो समुद्रमे कर्णधारहीन ोकाकी समान प्रजागण विपत्तिको प्राप्तहोजाय ॥ १० ॥

धार्मिकं पालनपरं सम्यक् परपुरञ्जयम् ।
राजानमभिमन्येत प्रजापतिमिव प्रजा ॥ ११ ॥

धर्मानुसार भलीप्रकार पक्षपातरहित होकर पुत्रके समान प्रजापालनमे त्पर शत्रुनाशक राजाको प्रजापति अर्थात् सृष्टिकर्त्ताकी समान प्रजा सर्व- ावसे सन्मान करतीहै ॥ ११ ॥

प्रजां संरक्षति नृपः सा वर्द्धयति पार्थिवम् ॥
वर्द्धनाद्रक्षणं श्रेयस्तदभावे सदप्यसत् ॥ १२ ॥

राजा दण्डयोग्योको दण्डविधान और अदण्ड व्यक्तियोको सन्मान- पूर्वक प्रजाओंको भलीप्रकार शत्रुओंके हाथसे [illegible] करके पालन करताहै तो प्रजागणभी धान्य धनादिद्वारा प्राणपणसे [illegible] सम्पत्ति बढाती है बढना और पालना इनमे पालनाही श्रेयस्कर है [illegible] ओंके हाथमे प्रजाकी रक्षा न करनेसे राजाका मंगल नहीं [illegible]

न्यायप्रवृत्तो नृपतिरात्मानमपि [illegible]
त्रिवर्गेणोपसन्धत्ते निहन्ति ध्रुवम [illegible]

जिस समय राजा न्यायपरायण होता है तब [illegible] प्रजाको भी त्रिवर्ग अर्थ, धर्म, काम, का साधन कराप्रकता है [illegible] अवश्यही त्रिवर्गका नाशक होता है ॥ १३ ॥

धर्माद्धि यवनो राजा चिराय बुभुजे भुवम् ।
अधर्माच्चैव नहुषः प्रतिपेदे रसातलम् ॥ १४ ॥

[illegible]राजानेभी चिरकालतक पृथ्वीको भोगाहै और अधर्म [illegible]हीसे रसातलको प्राप्त हुआ [नहुष राजा पहले [illegible] समय इन्द्र अपने अमरपदसे वंचित हुए [illegible] राजा किया । तब इन्होंने इन्द्रा- [illegible]नका उसकी प्रतिज्ञानुसार मह[illegible] [illegible] चले और राजा शीघ्र चलनको[illegible] [illegible] हुआ । तब रानीने चरणप्रहार करनेपर [illegible] [illegible]री सर्प होकर पृथ्वीमें गिरा राजा तुरत अजगर [illegible] [illegible] युधिष्ठिरने उद्धार किया] ॥ १४ ॥

तस्माद्धर्मं पुरस्कृत्य यतेतार्थाय पार्थिवः ।
धर्मेण वर्द्धते राज्यं तस्य स्वादु फलं श्रियः ॥ १५ ॥

इसकारण धर्मकोही आगे करके राजाको अर्थप्राप्तिमें यत्न करना चाहिये धर्मसे राज्य बढताहै और लक्ष्मी उसका स्वादु फलहै ॥ १५ ॥

स्वाम्यमात्यश्च राष्ट्रञ्च दुर्गं कोषो बलं सुहृत् ।
एतावदुच्यते राज्यं सत्वबुद्धिव्यपाश्रयम् ॥ १६ ॥

स्वामी मंत्री, राष्ट्र, दुर्ग कोष (खजाना) सेना मित्रवर्ग इन सबका नाम राज्यहै कि सत्वगुणी बुद्धिका आश्रय करे ॥ १६ ॥

आलम्ब्य यत्नवत्सत्त्वं बुद्ध्यालोकितनिर्गमः ।
सप्ताङ्गस्यास्य लाभाय यतेत सततोत्थितः ॥ १७ ॥

यत्नपूर्वक सत्त्वगुणका अवलम्बनकर बुद्धिसे निर्गमके उपायको देखता हुआ राजा निरन्तर जागताहुआभी इन सातोअंगोंके लाभका यत्न करै ॥ १७ ॥

न्यायेनार्जनमर्थस्य रक्षणं वर्द्धनं तथा ।
सत्पात्रप्रतिपत्तिश्च राजवृत्तं चतुर्विधम् ॥ १८ ॥

न्यायद्वारा धनका उपार्जन, उसकी रक्षा, और बढाना, तथा सत्पात्रमे इसका निक्षेप यह चारप्रकारकी राजाकी कर्तव्यता है ॥ १८ ॥

नयविक्रमसम्पन्नः सूत्थानश्चिन्तयेच्छ्रियम् ।
नयस्य विनयो मूलं विनयः शास्त्रनिश्चयः ॥ १९ ॥

नीति और पराक्रमसम्पन्न राजा उन्नतिकी इच्छावाला लक्ष्मीकी चिन्ता करतारहै कि, यह किसप्रकार वृद्धिको प्राप्तहोगी विनय नीतिका मूलहै विनयही शास्त्रका निश्चयहै ॥ १९ ॥

विनयो हीन्द्रियजयस्तद्युक्तः शास्त्रमृच्छति ।
तन्निष्ठस्य हि शास्त्रार्थाः प्रसीदन्ति तत. परम् ॥ २० ॥

विनयही इन्द्रियजयमे साधकहै इस विनयसे युक्तहुआ पुरुषही शास्त्रको प्राप्तहोताहै इसमें निष्ठा करनेके उपरान्तही सम्पूर्ण शास्त्राके अर्थ प्रकाशित होते है ॥ २० ॥

शास्त्रं प्रज्ञा धृतिर्दाक्ष्यं प्रागल्भ्य [illegible]ारयिष्णुता ।
उत्साहो वाग्मिता दार्ढ्यमापत्[illegible] [illegible]ुता ॥ २१ ॥

शास्त्र, बुद्धि,धृति (धीरता), दक्षता, प्रग[illegible] [illegible]ीके [illegible] मात्र बोलनेमे चतुराई, दृढता दु खमे क्लेश सहन[illegible]

प्रभावः शुचिता मैत्री त्याग. [illegible]
श्रुतं शीलं दमश्चेति गुणाः सम्प[illegible] ॥

प्रभाव, पवित्रता,मित्रता, त्याग, सत्यबोलना, [illegible] उसको स्मरण रखना, शास्त्र तथा शीलसम्पन्न होना और बाहर भीतरकी इन्द्रियोका जय करना यह गुण सम्पत्तिके कारणहै ॥ २२ ॥

आत्मानं प्रथमं राजा विनयेनोपपादयेत् ।
ततोऽमात्यांस्ततो भृत्यांस्ततः पुत्रांस्ततः प्रजाः ॥ २३ ॥

चाहिये कि प्रथम अपनेको विनयसम्पन्न करे फिर मन्त्री
पुत्र और तत्पश्चात् प्रजाको संपन्न करे ॥ २३ ॥

प्रजापालनवत्सर ।
मी श्रियमश्नुते ॥ २४ ॥

विनीतआत्मा राजा महा-
र्म्मीका भागी

प्रकीर्णविषयारण्ये ... नम् ।
ज्ञानाङ्कुशेन कुर्व्वीत वश्यमिन्द्रियद... तनम् ॥ २५ ॥

वड भटिल विषयरूपी वनमें दौडते हुए मनको मथनेवाले इन्द्रियरूप
हाथीका ज्ञानरूपी अंकुशसे वशीभूत करे ॥ २५ ॥

आत्मा प्रयत्नेनार्थेभ्यो मनः समधितिष्ठति ।
संयोगादात्ममनसो प्रवृत्तिरुपजायते ॥ २६ ॥

अपने प्रयत्नसेही मन अर्थोंसे रहित होकर अचल होताहै आत्मा और
मनके संयोगसेही कार्यरूपी प्रवृत्ति प्रगट होतीहै ॥ २६ ॥

विषयामिषलोभेन मन प्रेरयतीन्द्रियम् ।
तन्निरुन्ध्यात्प्रयत्नेन जिते तस्मिन् जितेन्द्रियः॥ २७॥

विषयरूपी आमिषके लोभसे मन इन्द्रियोंको प्रेरणा करताहै इससे प्र-
त्नसे मनको जय करनाचाहिये मनके जीतनेसे इन्द्रियें जीतली जातीहैं ॥ २७ ॥

विज्ञानं हृदयं चित्तं मनो बुद्धिश्च तत्समम् ।
अनेनात्मा करोतीह प्रवर्त्तननिवर्त्तने ॥ २८ ॥

विज्ञान, हृदय, चित्त, मन, बुद्धि, इनके साथही आत्मा निवृत्तिमार्गमें प्रवृत्ति करताहै ॥ २८ ॥

धर्माधर्मौ सुख दुःखमिच्छाद्वेषौ तथैव च ।
प्रयत्नज्ञानसंस्कारा आत्मलिङ्गमुदाहृतम् ॥ २९ ॥

धर्म, अधर्म, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, ज्ञान, संस्कार, यह आत्मा का लिङ्ग कहागयाहै अर्थात् जहा यह हो वहां आत्माकी स्थिति जानी जातीहै ॥ २९ ॥

ज्ञानस्यायुगपद्भावो मनसो लिङ्गमुच्यते ।
नानार्थेषु च संकल्पः कर्म चास्य प्रकीर्त्तितम् ॥ ३० ॥

एकसाथ दो वस्तुओंके ज्ञानका उदय न होना मनका लिंगहै, अनेक अर्थोंमें संकल्प करना इसका कर्महै ॥ ३० ॥

श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी जिह्वा नासिका चेति पञ्चमी ।
पायूपस्थे हस्तपादौ वागितीन्द्रियसंग्रहः ॥ ३१ ॥

श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, पाचवीं, नासिका, गुदा, उपस्थ, हाथ चरण और वाणी यह इन्द्रियसमुदायहै ॥ ३१ ॥

शब्दःस्पर्शश्च रूपञ्च रसो गन्ध[illegible] च ।
उत्सर्गानन्दनादानगत्यालापाश्च [illegible] ॥ ३२ ॥

शब्द, स्पर्श, रूप, रस, पाचवाँ गंध, मल [illegible] और आलाप (बातचीत) यह क्रमसे इन इन्द्रि[illegible]

आत्मा मनश्च तद्द्वियोरन्तःकरणमुच्यते
आभ्यां तु सप्रयत्नाभ्यां संकल्प उपजायते ॥ ३३ ॥

आत्मा और मनके संयोगका नाम अन्तःकरण है इन्हीके प्रयत्नसे संकल्प उत्पन्न होताहै ॥ ३३ ॥

आत्मा बुद्धीन्द्रियाण्यर्था बहिष्करणमुच्यते।
सकल्पाध्यवसायाभ्यां सिद्धिरस्य प्रकीर्त्तिता ॥ ३४॥

इन्द्रिय और अर्थोसे समाग बहिष्करण कहाताहै सं
ी सिद्धि कहीगईहै ॥ ३४ ॥

त यत्नानन्तर्य्यके स्मृते।
न्निर्मनस्कताम् ॥ ३५ ॥

मसे इनकी प्रवृत्ति रोककर
मनकी निश्चल।

एव करणसामर्थ्यात्मय न।
नयापनयविद्राजा कुर्य्यात्‌ हितमात्मन ॥ ३६ ॥

इसप्रकार साधनकी सामर्थ्यसे आत्मासेही आत्माको निरोध कर
नीति और अनीतिका जाननेवाला राजा अपना हितसाधन करे ॥ ३६ ॥

एकस्यैव हि योऽशक्तो मनस सन्निबर्हणे।
महीं सागरपर्य्यन्तां स कथ ह्यवजेष्यति ॥ ३७ ॥

जो एक अपने मनके जीतनेमेंही समर्थ नहीहै यह समुद्रपर्यन्त पृथिवीको
किसप्रकार जीतसक्ताहै ॥ ३७ ॥

क्रियावसानविरसैर्विषयैरपहारिभि ।
गच्छत्याक्षिप्तहृदयः करीव नृपतिर्ग्रहम् ॥ ३८ ॥

परिणाम में विरस हानेवाले मनके हरनेवाले विषयोंसे हृदयमें
साहस किया हुआ राजा हाथीके समान पकड़ लियाजाताहै ॥ ३८ ॥

सम्भ्रमाना स्वकार्य्येषु विषयान्धीकृतेक्षण ।
[illegible] ॥ ३९ ॥

अकार्यमें निरन्तर लगाहुआ विषयोंसे अन्धाहुआ राजा स्वयही महाभय देनेवाली उग्र विपत्तिको प्राप्तहोताहै ॥ ३९ ॥

शब्दः स्पर्शश्च रूपञ्च रसो गन्धश्च पञ्चमः ।
एकैकमलमेतेषां विनाशप्रतिपत्तये ॥ ४० ॥

शब्द, स्पर्श, रूप, रस और पाँचवी गन्ध इन एक २ की भी अधिक आसक्ति राजाके विनाश करनेमे समर्थ है ॥ ४० ॥

शुचिशष्पांकुराहारो विदूरक्रमणक्षमः ।
लुब्धकाद्गीतलोभेन मृगो मृगयते वधम् ॥ ४१ ॥

पवित्र दूर्वा अंकुरका भोजन करनेवाला, दूरभागनेमें समर्थ लुब्धक गीतसे लुभायाहुआ मृगभी आप अपने वधमें कारण होजाता है ॥४१॥

गिरीन्द्रशिखराकारो लीलयोन्मूलितद्रुमः ।
करिणीस्पर्शसम्मोहादालानं याति वारणः ॥ ४२ ॥

देखो पर्वतके शिखरकी समान आकारवाला लीलासेही वृक्षोका उखाडनेवाला हाथी हथिनीके स्पर्शके लोभसे बंधनको प्राप्त होताहै ॥ ४२ ॥

स्निग्धदीपशिखालोकविलोभित[illegible]लोचनः ।
मृत्युमृच्छत्यसन्देहात् पतङ्ग[illegible] पतनम् ॥४३॥

स्निग्धदीपककी शिखाके दर्शनसे जिसके न[illegible] [illegible]पा सहसा गिरकर उसपर पतंग अपना प्राण देदेताहै यह [illegible] सन्देह नहीं ॥ ४३ ॥

दूरेऽपि हि भवन् दृष्टेरगाधसलिले न[illegible]
मीनस्तु सामिषं लोहमास्वादयति मृत्यवे [illegible]

जिसके निवासका स्थान दृष्टिसे दूरहै जो अगाधजलमे रहताहै ऐसा मीन अपनी मृत्युके लियेही आमिषसहित लोहको भक्षण करताहै ॥ ४४ ॥

गन्धलुब्धो मधुकरो दानासवपिपासया ।
अभ्येत्य सुखसञ्चारो गजकर्णझनज्झनाम् ॥ ४५ ॥

ग लोभको मासहुआ दानमदरूपी आसवके पीनेकी इच्छा
चारिणी झनझनध्वनि हाथीके कानके समीप मरणको
४५ ॥

विषया विषसन्निभा ।
सम पञ्च सेवते ॥ ४६ ॥

य फिर जो इन पाचों विष-
यांको सेवन करन ॥ ४६ ॥

सेवेत विषयान् क। ।
सुखंहि फलमर्थस्य तन्निरोधे नृप। ॥ ४७ ॥

समयपर विषयोंका सेवन करे पर जितेन्द्रिय पुरुषको इसकी तत्परता तथा आसक्ति नहीं चाहिये, अर्थका फल सुखहै यदि यह न मिले तो लक्ष्मी व्यर्थ है ॥ ४७ ॥

निकाम सक्तमनसां कान्तामुखविलोकने ।
गलन्ति गलिताभूणा यौवनेन सह श्रिय ॥ ४८ ॥

जिनके मन स्त्रीके देखनेमें अत्यन्त लगेहुयेहैं उनकी लक्ष्मी और यौवन भोगुओंके साथ नष्टहोतेहैं ॥ ४८ ॥

धर्मादर्थोऽर्थत काम कामात् सुखफलोदय ।
आत्मान हन्तिवान् हत्वा युक्त्या यो न निषेवते ॥ ४९ ॥

धर्मसे अर्थ अर्थसे काम और कामसे सुखफलका उदय होताहै जो युक्तिसे इनका सेवन नहीं करता यह इनसे नाशकर आत्माका भी नाशकरताहै ॥ ४९ ॥

नामापि स्त्रीति संह्लादि विकरोत्येव मानसम् ।
किंपुनर्दर्शन तस्या विलासोल्लासितभ्रुव ॥ ५० ॥

खींहै, ऐसा मोहकारक शब्द मनमें तत्काल विकार करताहै फिर उस वामलोचना वाँकी भौंहवालीके दर्शनकी तो कौन कहै ॥ ५० ॥

रहःप्रचारकुशला मृदुगद्गदभाषिणी ।
कं न नारी रमयति रक्तं रक्तान्तलोचना ॥ ५१ ॥

एकान्तप्रचारमें कुशल कोमल और गद्गदकंठसे भाषण करनेवाली कोयोंमें लालिमावाली वामलोचना नारी किस अनुरक्त पुरुषको नहीं रमातीहै?॥५१॥

मुनेरपि मनोऽवश्यं सरागं कुरुतेऽङ्गना ।
प्रसन्नं कान्तिजननं सन्ध्येव शशिमण्डलम् ॥ ५२ ॥

वह स्त्री मुनिके मनकोभी रागी और वशीभूत करलेतीहै इसका प्रसन्न निर्मल कान्तिजनन सन्ध्याकालीन चन्द्रमण्डलके समान मुखहै ॥ ५२ ॥

मनः प्रह्लादयन्तीभिर्मदयन्तीभिरप्यलम् ।
महान्तोऽपि हि भिद्यन्ते स्त्रीभिरद्रिरिवाचलाः ॥ ५३॥

मनको आनन्द देनेवाली मदकरानेवाली स्त्रियोंसे बडे विद्वान्भी विदीर्ण होजातेहैं जैसे जलवर्षणसे पर्वत ॥ ५३ ॥

मृगयाऽक्षास्तथा पानं गर्हितानि महीभुजाम् ।
दृष्टास्तेभ्यस्तु विपदः पाण्डुनैषधवृष्णिषु ॥ ५४ ॥

राजोंको मृगया खेलना, पाशा खेलना, म[illegible] करना यह गर्हितहै इन्हींके द्वारा पाण्डवों की नलकी और यदुवंशिय[illegible] न हुईहै ॥५४॥

१–देखो राजा युधिष्ठिर जिस समय दुर्योधनसे जुआ [illegible] हारकर पीछे द्रौपदीकोभी हारगये और तेरह वर्षतक वनम[illegible] निमित्त महाभारत होकर भारतवर्ष रसातलको पहुँचा ।

२–राजा नल बड़ा प्रतापी राजा था, पर द्यूतके कारण [illegible] आ- धाकपड़ा पहरे घरसे बाहर निकला और अन्तमें अपनी स्त्रीको [illegible] कता फिरा, और सारथीके वेशमें राजा ऋतुपर्णके यहां कितनेही वर्ष बिताय, [illegible] १२ वर्षमें पुष्करके पास लौटकर राजा ऋतुपर्णसे सीखी विद्याके कारण अपना राज्य [illegible] था ।

काम क्रोधस्तथा लोभो हर्षो मानो मदस्तथा ।
षड्वर्गमुत्सृजेदेनमस्मिन्स्त्यक्ते सुखी नृप ॥ ५५

[illegible] लोभ, हर्ष, मान मद यह छः वर्ग राजाको सदा त्याग [illegible] ।
[illegible] त्यागनेसे राजा सुखी होताहै ॥ ५५ ॥

[illegible] गति कामात्क्रोधाच्च जनमेजय ।
[illegible] र्मोवातापिर्दर्पवोऽसुर ॥ ५६ ॥

[illegible] की कन्याक पकडनेमात्रसे [illegible]
[illegible] जन्मेजय रागीहुआ, रार्म [illegible]

गाना [illegible] मदहुआ [illegible]

पौलस्त्या रा[illegible] नृप ।
भयाता निधनह्येते शत्रुषड्वर्गम[illegible] ॥ ५७ ॥

पुलस्त्यका भया राक्षस रावण मानसे दम्भोद्भव राजा मदसे नहुष [illegible]
अर्थात यह महीपाल षड्वर्गरूप शत्रुके अधीन हो नष्ट होगये ॥ ५७ ॥

---

१ राजा दण्डक [illegible] शुक्राचार्यकी कन्याको देखकर उससे मैथुनके लिये [illegible] उसके न माननेपर [illegible] [illegible] [illegible] शुक्राचार्य [illegible] [illegible] [illegible] दिया कि सात दिनमें [illegible] देश [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] होकर दण्डकवन होगया ।

२-[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] अनुचित [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] शाप दिया कि [illegible] होगा ।

३-[illegible] असुर [illegible] [illegible] [illegible] निमन्त्रित कर [illegible] और [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] किया ।

शत्रुषड्वर्गमुत्सृज्य जामदग्न्यो जितेन्द्रियः ।
अम्बरीषो महाभागो बुभुजाते चिरं महीम् ॥ ५८ ॥

इन छहों शत्रुओंको जीतकर परशुराम जितेन्द्रियहै, इसी जयसे महाभाग अम्बरीषने बहुत कालतक भूमिको भोगाहै ॥ ५८ ॥

शास्त्राय गुरुसंयोगः शास्त्रं विनयवृद्धये ।
विद्याविनीतो नृपतिर्न कृच्छ्रेष्ववसीदति ॥ ५९ ॥

शास्त्रज्ञानके निमित्त गुरुसयोग, विनयवृद्धिकेलिये शास्त्रअभ्यास करै विद्यासे विनीत राजा सकटमेभी दुःखी नही होताहै ॥ ५९ ॥

वृद्धोपसेवी नृपतिः सतां भवति सम्मतः ।
प्रेर्य्यमाणोऽप्यसद्वृत्तैर्नाकार्य्येषु प्रवर्त्तते ॥ ६० ॥

वृद्धोकी सेवाकरनेवाला राजा सकट पडनेपरभी दु खी नही होता और असत् वृत्तिमे प्रेरितहुआ भी कार्यमे प्रवृत्त नहीं होताहै ॥ ६० ॥

आदधानः प्रतिदिनं कलाः सम्यङ् महीपतिः ।
शुक्लपक्षे प्रतिचरन् शशांक इव वर्द्धते ॥ ६१ ॥

राजा प्रतिदिन भलीप्रकार कलाओंको धारण करताहुआ शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी समान वृद्धिको प्राप्तहोताहै ॥ ६१ ॥

जितेन्द्रियस्य नृपतेर्नीतिमार्गानुस[illegible]रणः ।
भवन्ति ज्वलिता लक्ष्म्यः कीर्त्तय[illegible] [illegible]पृग. ॥ ६२ ॥

---

१ राजा अम्बरीषपर एकादशीके व्रतमें पारण करलनार [illegible] ऋा[illegible] [illegible] सीको प्रगट कर कहा कि, हमको निमन्त्रण देकर विना [illegible] पारण किया? राजाने कहा भगवन्! द्वादशी बीती जानार्थ [illegible] ग्रहण किया है तथापि दुर्वासाने राजाके ऊपर राक्षसीकी प्रेरणा [illegible] चक्रको भेजकर राजाकी रक्षाकरनेको कहा, सुदर्शन चक्र राक्षसी [illegible] पीछे हुआ, एक वर्षतक ऋषिराज घूमे किसीने उनकी रक्षा न की [illegible] हाथ बाँधे खडा रहा, अन्तमें जब दुर्वासा राजापर आये तब राजाने सुदर्शन चक्रसे प्रार्थना कर ऋषिराजको बचाया और उनपर क्रोध न किया ।

नीतिमार्गका अनुसरण करनेवाले जितेन्द्रिय राजाकी लक्ष्मी प्रकाशित होती और आकाशका स्पर्शकरनेवाली कीर्ति होती है ॥ ६२ ॥

स राजा विनयी नयान्वितो निषेवमाणो नरदेवसेवितम्
प्रतिभास्वरश्रिय शिरोमहारत्नगिरेरिवोन्नतम् ६३।

विनीत नययुत उत्तम नरेन्द्रोंसे सेवित शोभा प्रकाशित ... और महारत्नरूपी पर्वतके शिरोभागमें अव

... पार्थिवता समुन्नता
विनय पुर सर ॥६४।

... पार्थिवता नहीं है इसमें
... ॥ ६४ ॥

परा विनीत समुपैति संपदं महा... विभूषणम्
मधुचन्दानो मृदुसञ्चरत्कर करीव भद्रो विनयेन शोभते॥६५।

विनीतपुरुष परमसंपत्ताको प्राप्त होताहै राजोंका विनयही भूषण मधुस्रावदानवाला अर्थात् दानशील मृदुता करनेवाला भद्र हाथीके समान विनयसे राजा शोभित होताहै ॥ ६५ ॥

गुरुस्तुविद्याधिगमायसेव्यते श्रुता च विद्यामतयेमहात्मनाम्
श्रुतानुसन्धीनिमतातिवेधसामसंशयसाधुमसन्तिभूतये ॥६६।

विद्याप्राप्तिके निमित्त गुरुकी सेवा की जातीहै और विद्याकी प्राप्ति महात्माओंकी मतिके निमित्त होती है विधानकर्ताओंकी शास्त्रसम्बन्धि मति होतीहै और वही कल्याणके निमित्त निःसन्देह साधु होते हैं॥ ६६ ।

सुनिपुणमुपसेव्य सद्गुरु शुचिरनुवृत्तिपरो विभूतये ।
भवतिहिविन... हितो नृपतिपदाय शमायचक्षम ॥६७॥

... करके और ... पवित्र चरित्र करताहै

वह ऐश्वर्यको प्राप्त होताहै विनयसे वृद्धिको प्राप्तहुआ राजा राजपद और शान्तिके लिये समर्थ होताहै ॥ ६७ ॥

अविनयरतमादराद्दत वशमवशश्च नयन्ति विद्विषः।
श्रुतविनयविधिंसमाश्रितस्तनुरपिनैतिपराभवंक्कचित् ॥६८॥

इति श्रीकामन्दकीये नीतिसारे इन्द्रियविजयविद्या
वृद्धसंयोगो नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

जो अविनयमे रत तथा अवशहै तौभी उनको शत्रु तिरस्कार कर वशमे करलेतेहै और जो शास्त्र तथा विनयकी विधिको आश्रय किये है उनका कही थोडाभी पराभव नही होताहै ॥ ६८ ॥

इति श्रीकामन्दकीये नीतिसारे पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकाया
इन्द्रियविजयविद्यावृद्धसयोगो नाम प्रथम सर्ग ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः २.



आन्वीक्षिकी त्रयी वार्त्ता दण्डनीतिश्च पार्थिवः।
तद्विद्यैस्तात्क्रियोपेतैश्चिन्तयेद्विनयान्वितः ॥ १ ॥

विनयसम्पन्न राजा आन्वीक्षिकी (तर्क) [illegible] विद्या वार्त्ता और दण्ड-नीति इनको जानकर और इनकी क्रियाकी [illegible] ॥ १ ॥

आन्वीक्षिकी त्रयी वार्त्ता दण[illegible] शाश्वती।
विद्याश्चतस्र एवैता योगक्षेमाय [illegible] ॥ २ ॥

आन्वीक्षिकी (तर्कशास्त्र) त्रयी (वेदत्रयकी [illegible]
दण्डनीति यह चारो विद्या देहधारियोके योगक्षेमक [illegible] ॥ २ ॥

त्रयी वार्त्ता दण्डनीतिरिति विद्या हि मा[illegible]।
त्रय्या एव विभागोऽयं सेयमान्वीक्षिकी मता ॥ ३ ॥

त्रयी वार्ता दण्डनीति इस विद्याको मनुष्य भलीप्रकार धारण कर वर्तनेहैं और त्रयीविद्याका एक विभागही आन्वीक्षिकी विद्या कहाती है॥ ३ ॥

वार्ता च दण्डनीतिश्च द्वे विद्ये इत्यवस्थिते ।
...कस्यार्थप्रधानत्वाच्छिष्या सुरपुरोधस ॥ ४ ॥

...नीति यह जो दो विद्याहैं यह ...लोकके प्रधान अर्थकी ...गप्रकार कीगई है ॥ ४ ॥

...विद्येत्यौशनसी स्थिति ।
... समुदाहृता ॥ ५ ॥

...सी विद्याहैं, इसमें मत-

विद्या... आरम्भ

विद्याश्चतस्र एवता ।
पृथक्पृथक्प्रसिद्ध्यर्थं यासु लोका ... ॥६॥

यही चार विद्या हैं इसप्रकार हमको गुरुका उपदेशहै पृथक्पृथक् प्रसिद्धिके निमित्त जिनमें लोक प्रतिष्ठित होरहेहैं ॥ ६ ॥

आन्वीक्षिक्यात्मविज्ञानं धर्माधर्मौ त्रयीस्थितौ ।
अर्थानर्थौ तु वार्तायां दण्डनीतौ नयानयौ ॥ ७ ॥

आन्वीक्षिकीमें आत्माका विज्ञान होताहै और त्रयीविद्यामें धर्म अधर्मकी व्यवस्थाहै वार्तामें अर्थ अनर्थका ज्ञान दण्डनीतिमें नीति अनीति स्थित॥७॥

आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता सर्वा विद्या प्रचक्ष्यते ।
सत्योऽपि हि न सत्यस्ता दण्डनीतेस्तु विभ्रमे ॥ ८ ॥

आन्वीक्षिकी त्रयी और वार्ता यह सभी विद्या कहाती हैं सत्यही यदि दण्डनीतिका सम्यक् प्रभाव न हो तो यह सभी विद्या असत्यके समान होतीहैं ॥ ८ ॥

दण्डनीतिर्यदा सम्यङ्नेतारमधितिष्ठति ।
तदा विद्याविदः शेषा विद्याः सम्यगुपासते ॥ ९ ॥

जब दण्डनीति भलीप्रकारसे नेतामें स्थितरहतीहै तब विद्याका जानने-वाला सम्पूर्ण शेषविद्याओंको प्राप्तहोताहै ॥ ९ ॥

वर्णाः सर्व्वाश्रमाश्चैव विद्यास्वासु प्रतिष्ठिताः ।
ईक्षणाद्रक्षणं तासां तद्धर्म्मस्यांशभाङ्नृपः ॥ १० ॥

चारो वर्ण और चारो आश्रम अपनी २ विद्याओंमे प्रतिष्ठितहैं उनकी ईक्षणा करना (देखना) ही दर्शनहै जो ऐसा करताहै वही राजा धर्मका अंशभागी होताहै ॥ १० ॥

आन्वीक्षिक्यात्मविद्या स्यादीक्षणात् सुखदुःखयोः ।
ईक्षमाणस्तया तत्त्वं हर्षशोकौ व्युदस्यति ॥ ११ ॥

सुख दुःखके दिखानेसे कि इस कर्मसे यह सुख यह दुःख होताहै आन्वी-क्षिकीका नाम आत्मविद्याहै इसके द्वारा तत्त्व देखनेसे विचारवान् हर्षशोकसे रहित होजाताहै ॥ ११ ॥

ऋग्यजुःसामनामानस्त्रयो वेदास्त्रयी मता ।
उभौ लोकाववाप्नोति त्रय्यां तिष्ठन् यथाविधि ॥ १२ ॥

ऋग्यजु साम इन तीन वेदोंके प्रतिपादित [illegible] आदि त्रयीविद्या कहातेहै, इस त्रयीविद्यामे यथाविधि स्थित [illegible] लोकोको प्राप्त-होताहै ॥ १२ ॥

अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा [illegible]
धर्म्मशास्त्रं पुराणञ्च त्रयीदं सर्वमु[illegible] ॥

चार वेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, [illegible] अंग मीमांसा, और न्यायविस्तार, धर्मशास्त्र और पुराण यह सब त्रयी [illegible] कहीहै ॥ १३ ॥

त्रयी वार्ता दण्डनीति इन विद्याको मनुष्य भलीप्रकार धारण कर सकतेहैं और त्रयीविद्याका एक विभागही आन्वीक्षिकी विद्या कहाती है॥३॥

वार्ता च दण्डनीतिश्च द्वे विद्ये इत्यवस्थित ।
लोकस्यार्थप्रधानत्वाच्छिष्या सुरपुरोधस ॥ ४ ॥

दण्डनीति यह भी दो विद्याहैं यह लोकके प्रधान अर्थकी
शिष्योंद्वारा प्रचार कीगईहै ॥ ४ ॥

गानिस्तु विद्येत्यौशनसो स्थिति ।
नामारम्भा समुदाहृता ॥ ५ ॥

व्यापार्यकी विद्याहै, इसमें सब

रम् ।

पृ ५१ त्रयम ॥६॥

यही चार विद्या हैं इन नसमुच्चय
प्रसिद्धिके निमित्त जिनसे लोक प्रतिष्ठित है। ६

आन्वीक्षिक्यात्मविज्ञानं धर्माधर्मौ त्रयीस्थितौ ।
अर्थानर्थौ तु वार्तायां दण्डनीतौ नयानयौ ॥ ७ ॥

आन्वीक्षिकीसे आत्माका विज्ञान होताहै और त्रयीविद्यामें धर्म अधर्मकी व्यवस्थाहै वार्तामें अर्थ अनर्थका ज्ञान दण्डनीतिमें नीति अनीति स्थितहै॥७॥

आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता सती विद्या प्रचक्ष्यते ।
सत्योऽपि हि न सत्यस्ता दण्डनीतेस्तु विप्लवे ॥ ८ ॥

आन्वीक्षिकी त्रयी और वार्ता यह सती विद्या कहाती हैं सत्यही यदि दण्डनीतिका सम्यक् प्रभाव न हो तो यह सती विद्या असतीके समान होतीहैं ॥ ८ ॥

दण्डनीतिर्यदा सम्यङ्नेतारमधितिष्ठति ।
तदा विद्याविदः शेषा विद्याः सम्यगुपासते ॥ ९ ॥

जब दण्डनीति भलीप्रकारसे नेतामे स्थितरहतीहै तब विद्याका जाननेवाला सम्पूर्ण शेषविद्याओंको प्राप्तहोताहै ॥ ९ ॥

वर्णाः सर्व्वाश्रमाश्चैव विद्यास्वासु प्रतिष्ठिताः ।
ईक्षणाद्रक्षणं तासां तद्धर्म्मस्यांशभाङ्नृपः ॥ १० ॥

चारो वर्ण और चारो आश्रम अपनी २ विद्याओंमे प्रतिष्ठितहै उनकी ईक्षणा करना (देखना) ही दर्शनहै जो ऐसा करताहै वही राजा धर्मका अंशभागी होताहै ॥ १० ॥

आन्वीक्षिक्यात्मविद्या स्यादीक्षणात् सुखदुःखयोः ।
ईक्षमाणस्तया तत्त्वं हर्षशोकौ व्युदस्यति ॥ ११ ॥

सुख दु खके दिखानेसे कि इस कर्मसे यह सुख यह दु ख होताहै आन्वीक्षिकीका नाम आत्मविद्याहै इसके द्वारा तत्त्व देखनेमे विचारवान् हर्षशोकसे रहित होजाताहै ॥ ११ ॥

ऋग्यजुःसामनामानस्त्रयो वेदास्त्रयी मता ।
उभौ लोकाववाप्नोति त्रय्यां तिष्ठन् यथाविधि ॥ १२ ॥

ऋग्यजु साम इन तीन वेदोके प्रतिपादित कर्मउपासनाआदि त्रयीविद्या कहातेहै, इस त्रयीविद्यामे यथाविधि स्थित होनेसे दोनो लोकोंको प्राप्तहोताहै ॥ १२ ॥

अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः ।
धर्म्मशास्त्रं पुराणञ्च त्रयीद मत[illegible] ३ ॥

चार वेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त [illegible] अंग मीमांसा, और न्यायविस्तार, धर्मशास्त्र और [illegible] त्र्या कहीहै ॥ १३ ॥

पाशुपाल्यं कृषि पण्य वार्ता वार्त्तानुजीविनाम् ।
सम्पन्नो वार्त्तया साधुर्नवृत्तेर्भयमृच्छति ॥ १४ ॥

पशुपालन कृषि (खेती) करना बेचना खरीदना, यह वार्ता है। इस जीविका करता है यह वार्तासे सम्पन्नहुआ महात्मा कभी नहीं होता ॥ १४ ॥

ने रूपातस्तात्स्म्याद्दण्डो महीपति ।
नेर्नयनान्नीतिरुच्यते ॥ १५ ॥

नेरीका नाम दण्डहै यह दण्ड
नयन अर्थात सम्यक रीतिसे
॥

पति ।
॥ ॥ १६ ॥

इससे और दूसरी सम्पण । ने
कर्को उपकार करनेवाली विद्याहै राजा नका

विद्यायदाभिनिपुणाश्चतुर्वर्गमुदारधी ।
विद्यात्तदासां विद्यात्वं विदिर्ज्ञाने निरुच्यते ॥ १७ ॥

उदार बुद्धिवाला जब इनके द्वारा चतुर्वर्गको जानताहै, इसीसे इनको विद्यात्व कहते हैं विदज्ञाने अर्थात् इनके द्वारा ज्ञान होताहै इसीसे इनका विद्या कहतेहैं ॥ १७ ॥

इज्याध्ययनदानानि यथाशास्त्र सनातन ।
ब्राह्मणक्षत्रियविशा सामान्यो धर्म्म उच्यते ॥ १८ ॥

यज्ञ करना वेदपाठ करना दानदेना यह ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंका शास्त्रविहित सनातन सामान्य धर्म है ॥ १८ ॥

याजनाध्यापने शुद्धे विशुद्धाच्च प्रतिग्रहः।
वृत्तित्रयमिदं प्राहुर्मुनयो ज्येष्ठवर्णिनः ॥ १९ ॥

यज्ञ कराना वेदादि पढाना शुद्धतापूर्वक शुद्ध पुरुषसे प्रतिग्रहलेना यह मुनियोंने ब्राह्मणोकी आजीविका वर्णन की है ॥ १९ ॥

शस्त्रेण जीवनं राज्ञो भूतानाञ्चाभिरक्षणम्।
पाशुपाल्यं कृषिःपण्यं वैश्यस्याजीवनं स्मृतम् ॥ २० ॥

क्षत्रियको शस्त्रधारणद्वारा जीवन, प्राणियोकी रक्षा करना यही वृत्ति निर्देशकीहै, पशुपालन कृषि और व्यापारसे वैश्यकी जीविका कहीहै ॥ २० ॥

शूद्रस्य धर्म्मः शुश्रूषा द्विजानामनुपूर्व्वशः।
शुद्धा च वृत्तिस्तस्यैव कारुचारणकर्म्म च ॥ २१ ॥

और क्रमसे द्विजातियोकी धर्मपूर्वक सेवा करनी शूद्रकी वृत्तिहै कारु [चित्रकारी] तथा चारण [कत्थक] कर्मसे आजीविका करनी उसकी शुद्धवृत्तिहै ॥ २१ ॥

गुरौ वासोऽग्निशुश्रूषा स्वाध्यायो व्रतधारणम्।
त्रिकालस्नायिता भक्ष्यं गुरौ प्राणान्तिकी स्थितिः २२ ॥

गुरुके यहां निवास, अग्निकी शुश्रूषा, सेवा, वेदादिपाठ व्रतधारण, त्रिकालस्नान, भिक्षासे प्राणपर्यन्त गुरुके यहां निवास करे ॥ २२ ॥

तदभावे गुरुसुते तथा सब्रह्मचारिणि।
कामतोवाऽऽश्रमान्यत्वं स धर्म्मो ब्रह्मचारिणः ॥ २३ ॥

अथवा गुरुजी नहो तो गुरुके पुत्रके समीप नि[illegible] ब्रह्मचर्यका धारण करना फिर विद्या पूर्णकर इच्छासे अन्य आश्रम[illegible] ब्रह्मचारियोका धर्म है ॥ २३ ॥

स मेखली जटी दण्डी मुण्डी
आविद्याग्रहणाद्गच्छेत्कामतोवाऽऽश्रमान्तरम् ॥ २४ ॥

यह ब्रह्मचारी मखला धारण कियेरहे जटा रखायेरहे दण्ड धारण कियेरहे वा शिर मुँडायरहे वा निरन्तर गुरुके यहांही निवास करता रहे वि धाके पूर्णज्ञानतक यहीं रहे पीछे इच्छा होनेसे दूसरे आश्रममें जाय ॥ २४ ॥

अग्निहोत्रोपचरणं जीवनञ्च स्वकर्मभिः ।

...ग गृहिणां काले पर्व्ववर्जं रतिक्रिया ॥ २५ ॥

...पने कर्मसे जीवन करना पर्वको छोड़कर समयमें ...र्म है ॥ २५ ॥

...जादीनानुकम्पनम् ।

...गाश्य गृहमेधिनः ॥ २६ ॥

...या श्रुतिस्मृतियोंके अनुसार

[illegible]

वनवास पय...

...हस्न रहना नित्य अग्निहोत्र ... ...

वा मृगचर्म धारण करना वनमें निवास ... ...

फलभोजन ॥ २७ ॥

प्रतिग्रहनिवृत्तिश्च त्रिःस्नानं व्रतचारिता ॥

देवातिथीनां पूजा च धर्मोऽयं वनवासिनः ॥ २८ ॥

प्रतिग्रह न लेना त्रिकालस्नान व्रताचरण देवताअतिथियोंकी पूजा यह वनवासियोंका धर्म है ॥ २८ ॥

सर्व्वारम्भपरित्यागो भैक्ष्याश्यं वृक्षमूलता ।

निष्प्रतिग्रहताऽद्रोहः समता सर्व्वजन्तुषु ॥ २९ ॥

सम्पूर्ण उद्योगका त्याग भिक्षा भोजन वृक्षमूलमें शयन प्रतिग्रहका न लेना किसीसे द्रोह न करना सब प्राणियोंमें समता ॥ २९ ॥

प्रियाप्रियपरिष्वङ्गःसुखदुःखाविकारिता ।
सबाह्याभ्यन्तरं शौचं वाङ्मनोव्रतचारिता ॥ ३० ॥

प्रियअप्रियमे एकसा ज्ञान होना सुख दुःखमे हर्ष शोक न करना बाहर भीतरसे पवित्र होना वाणीमनसे व्रत आचरण करना ॥ ३० ॥

सर्व्वेन्द्रियसमाहारो धारणा ध्याननित्यता ।
भावसंशुद्धिरित्येष परिव्राड्धर्म्म उच्यते ॥ ३१ ॥

सम्पूर्ण इन्द्रियोको जय करना धारणा और नित्य ध्यान करना और भावशुद्धिहोना यह सन्यासियोका धर्म है ॥ ३१ ॥

अहिंसा सूनृता वाणी सत्यं शौचं दया क्षमा ।
वर्णिनां लिङ्गिनाञ्चैव सामान्यो धर्म्म उच्यते॥ ३२॥

हिंसा न करनी, सत्य और मीठी बाते बोलना, सत्य पवित्रता दया क्षमा यह सब वर्ण और आश्रमोका साधारण धर्मह ॥ ३२ ॥

स्वर्गानन्त्याय धर्मोऽयं सर्व्वेषां वर्णिलिङ्गिनाम् ।
तस्याभावे तु लोकोऽयं संकरान्नाशमाप्नुयात् ॥ ३३ ॥

यह धर्म वर्णाश्रमियोको अनन्त कालतक स्वर्गके देनेवाले है इसके अभावमे यह लोक वर्णसङ्कर होकर नाशको प्राप्त होजाताहै ॥ ३३ ॥

सर्व्वस्यास्य यथान्यायं भूपतिः सम्प्रवर्त्तकः ।
तस्याभावे धर्म्मनाशस्तदभावे जगच्च्युतिः ॥ ३४ ॥

राजा इन सबकाही न्यायपूर्वक प्रवर्त्तक[illegible] नहानसे [illegible] नाश और धर्मनाशसे जगत नष्ट होजाताहै ॥ [illegible]

वर्णाश्रमाचारयुक्तो वर्णाश्रम[illegible]
पाता वर्णाश्रमानाञ्च पार्थिवः [illegible] ३५॥

वर्णाश्रमके आचारसे युक्त वर्णाश्रमका [illegible] श्रमके रक्षक राजा सब लोकका अधीश्वर होताहै ॥ [illegible]

इति यस्मादुभौ लोकौ धारयत्यात्मतो नृप ।
प्रजानाञ्च तत सम्यग् दण्ड दण्डीव धारयेत्॥ ३६॥

स्मस्मात्स्म आत्मवान् राजा दोनों लोकोंको धारण करताहुआ और
प्र गायोग्य शासन करताहुआ दण्डीकी समान दण्डधारण
। ६ ॥

तीक्ष्णेन मृदुना परिभूयते ।
मायुक्तदण्ड प्रशस्यते ॥ ३७ ॥

न) होनातीहै मृदुदण्डस राजाहीका
युक्तदण्डका विधान करै ॥३७॥

यथाविधि ।
ययेत् ॥३८॥

। ी साम,]
वृद्धिका माय होनाह ।। न क्षमा
मनक त्यागारार्भो कपित करनाह ।

लाक शास्त्रानुगो नयो दण्डा नाः ।
उद्वेजनादधर्म्मस्तु तस्मान्नयो महीपत ॥ ३० ॥

लाकशास्त्रके अनुसार करनेमाला नीतिम तत्पर राजाका उचित दण्ड
विनतापा कारण नहीं किन्तु धर्मीका कारण हातोहै क्योंकि उद्वेजनसे
अधर्म होता और उसस राजा भ्रष्ट होजाताहै ॥ ३ ॥

परस्पराभिपतया जगता भिन्नवत्मन ।
दण्डाभाव परिध्वर्मी मात्स्या न्याय प्रवतव ॥ ४० ॥

और जो परस्पर मांसभक्षणपर अभिन्नमाम भिन्नमार्गमे स्थित जगतको
दण्डक अभावम नष्ट करनेहै उगको नाम मात्स्यन्यायहै अथात् जैसे मत्स्य

मच्छके मासभक्षणकी अभिलाषा करते है ऐसा राजा प्रजाका वर्ताव, नष्टता-केलिये होताहै ॥ ४० ॥

जगदेतन्निरालम्बं कामलोभादिभिर्बलात् ।
निमज्जमानं निरये राज्ञा दण्डेन धार्य्यते ॥ ४१ ॥

यह जगत काम और लोभकेद्वारा बलसे निरालम्ब नरकमे डूबताहै केवल दण्डसे राजाही इसको धारण करताहै ॥ ४१ ॥

इदं प्रकृत्या विषयैर्वशीकृतं परस्परं स्त्रीधनलोलुपं जगत् ।
सनातनेवर्त्मनिसाधुसेविते प्रतिष्ठते दण्डभयोपपीडितम् ॥४२॥

यह जगत् स्वभावसेही विषयोके वशीभूतहै परस्पर स्त्री और धनमे लोभित होरहाहै, तब साधुसेवित सनातनमार्गमे दण्डके भयसे पीडित हुआही स्थित होताहै ॥ ४२ ॥

नियतविषयवर्त्ती प्रायशो दण्डयोगात्
जगति परवशेऽस्मिन् दुर्लभः साधुवृत्तः ।
कृशमथ विकलं वा व्याधितं वाऽधनं वा
पतिमिव कुलनारी दण्डनीत्याऽभ्युपैति ॥ ४३ ॥

निरन्तर विषयोमे वर्तनेवाले इस परवश जगतमे सदाचारवाला पुरुष भी दण्डयोगसेही स्थिति होतीहै । कृश, अगहीन, व्याधित, निर्धन पतिको कुलनारी दण्डसेही प्राप्त होती है ऐसेही प्रजा दण्डभयसे नियमके वशीभूत रहतीहै ॥ ४३ ॥

इति परिगणितार्थः प्राप्तमार्गानुसारी
नियमयति यतात्मा यः प्रजां दण्ड[illegible]
अपुनरपगमाय प्राप्तमार्गप्रचारा
सरित इव समुद्रं सम्पदस्तं विशन्ति ॥ ४४ ॥

इति श्रीकामन्दकीये नीतिसारे विद्याविभागो वर्णाश्रमव्यवस्था दण्डमाहात्म्यञ्च द्वितीय सर्ग ॥ २ ॥

...प्रकार जो राजा सब अर्थोंको भलीप्रकार जानताहै और सनातन ...अवलम्बन करताहै और स्वयं आत्मसंयमी होकर प्रजाको दण्ड ...मनाहै उसने मुक्तिके निमित्त अपना मार्ग खोलदियाँ ...श करती हैं इसीप्रकार सब सम्पत्तियें उसमें प्रविष्ट

...विद्याविभागो वर्णाश्रमव्यवस्था ...सर्ग ॥ २ ॥

...

प्रजा समनुगृण्ह... ॥

भूमिपति दण्डीकी समान सब भूत... ...तिकी समान स्वयं प्रजापर अनुग्रह करे ॥ १ ॥

वाक् सूनृता दया दानं दीनोपगतरक्षणम् ।
इति सङ्गः सतां साधु व्रतं सत्पुरुषव्रतम् ॥ २ ॥

प्यारी सत्यवाणी दया दान दीनोंपर रक्षा सत्पुरुषोंकी संगति सब ...रिय होना यह सत्पुरुषोंके धर्महैं ॥ २ ॥

आधिव्र इव दुःखेन ह्यङ्गेन गरीयसा ।
समन्वित करुणया परया दीनमुद्धरेत ॥ ३ ॥

हृदयमें मानसुर बड़े दुःखसे पिराइभा जैसे घड़ी करुणासे युक्त होकर दीनोंका उद्धार करना चाहिये ॥ ३ ॥

न तेभ्योऽभ्यधिकाः सन्तः सन्ति सत्पुरुषव्रतैः।
दुःखपङ्कार्णवे मग्नं दीनमभ्युद्धरन्ति ये ॥ ४ ॥

जो सत्पुरुष अपने व्रतसे दु खरूप दलदलके समुद्रमे डूबतेहुए दीनोका उद्धार करतेहै उनसे सन्तजन अधिक नही है ॥ ४ ॥

दयामास्थाय परमां धर्म्मादविचलन्नृपः।
पीडितानामनाथाना कुर्य्यादश्रुप्रमार्ज्जनम् ॥ ५ ॥

राजा अपने धर्मसे विचलित न होता हुआ परमदयामे स्थित होकर पीडित अनाथजनोका अश्रुमार्जन करे ॥ ५ ॥

आनृशंस्यं परो धर्म्मः सर्व्वप्राणभृतां यतः।
तस्माद्राजाऽऽनृशंस्येन पालयेत्कृपणं जनम् ॥ ६ ॥

जिसकारण कि, प्राणियोपर क्रूरता नकरना यही सबका परम धर्म है, इसकारण राजा दु खीजनोका मृदुतापूर्वक पालन करै ॥ ६ ॥

नहि स्वसुखमन्विच्छन् पीडयेत् कृपणं नृपः।
कृपणः पीड्यमानोहि मन्युना हन्ति पार्थिवम् ॥७॥

अपने सुखकी इच्छासे राजाको कृपणजनको पीडा न देनी चाहिये, [illegible] कि वह पीडित हुआ दीन अपने क्रोधसे राजाको नष्ट करदेता है॥७॥

कोहि नाम कुले जातः सुखलेशेन लोभितः।
अल्पसाराणि भूतानि पीडयेदविचारयन् ॥ ८ ॥

ऐसा कौन कुलजात श्रेष्ठ पुरुष होगा जो अपने थोडेसे सुखके [illegible] अल्पबलवाले प्राणियोको विनाविचार पीडित [illegible] ॥ ८ ॥

आधिव्याधिपरीताय अद्य श्वो [illegible] विनाशिने।
कोहि नाम शरीराय धर्म्मापेत [illegible] ॥

आधिव्याधिसे युक्त आज वा कल नाश [illegible] [illegible] धर्मसे रहित कार्य कौन करेगा ॥ ९ ॥

आहार्य्यैर्नीयमानं हि क्षणं दुःखेन दृश्यताम् ।
छायामात्रकमेवेदं पश्येदुदकबिन्दुवत् ॥ १० ॥

जो केवल आहारमात्रसेही चलताहै दृश्यमात्रमें दुःखसे नष्ट होजाताहै
...मात्र देहको जलके बिन्दुकी समान जानना चाहिये ॥ १० ॥

...यानाहतभ्रान्ति मेघमालातिपेलवे ।
...महात्मानो ह्रियन्ते विषयारिभिः ॥ ११ ॥

...गामी महापवनसे इधर उधर घूमने लगती है
...किसप्रकार विचलित न होंगे ॥ ११ ॥

...न खलु देहिनाम् ।
...याणमाचरेत् ॥ १२ ॥

... निश्चयही देहधा
...करै ॥ १२ ॥

जग... ।
स्वजनैः मगत... ॥

इस जगत्को मृगतृष्णाकी समान क्षणभं...
...प्रकार धर्म और सुखके लिये कार्य करै ॥ १३ ॥

मथ्यमानस्तु स्वजनैर्महानतिविराजते ।
सुधातल इव श्रीमान् प्रासादश्चन्द्ररश्मिभिः ॥ १४ ॥

अपने जनोंसे मथित हुआ यह पुरुष महान् होताहै तथा विराजित
होताहै जिसप्रकार चन्द्रकिरणोंसे श्रीमान् अमृतमय राजमहल शोभित
होता है ॥ १४ ॥

हिमांशुमाली न तथा न चोत्फुल्लोत्पलं मनः ।
आनन्दयति चेतांसि यथा सज्जनचेष्टितम् ॥ १५ ॥

न ऐसा चन्द्रमा न ऐसा कमलखिला सरोवर चित्तको प्रसन्न करताहै जैसे सज्जनपुरुषकी चेष्टा चित्त प्रसन्न करतीहै ॥ १५ ॥

ग्रीष्मसूर्य्यांशुसन्तप्तमुद्वेजनमनाश्रयम् ।
मरुस्थलमिवोदग्रं त्यजेद्दुर्जनसङ्गतम् ॥ १६ ॥

गरमीके सूर्यकी किरणोसे सन्तप्त उद्वेजन करनेवाले आश्रयहीन उद्दण्ड मरुस्थलकी समान दुर्जनकी सगतिको त्याग दे ॥ १६ ॥

सतः शीलोपसम्पन्नानकस्मादेव दुर्ज्जनः ।
अन्तः प्रविश्य दहति शुष्कवृक्षानिवानलः ॥ १७ ॥

पर्वतकी समान अचल सत्पुरुषोंके भी अन्तःकरण दुर्जन अकस्मात् प्रवेश करके सूखे वृक्षको अग्नि जैसे जला डालते है ॥ १७ ॥

निश्वासोद्गीर्णहुतभुग् धूमधूम्रीकृताननैः ।
वरमाशीविषैः सङ्गं कुर्य्यान्नत्वेव दुर्ज्जनैः ॥ १८ ॥

जिनके श्वास अग्निके समान निकलते है धूमसे धूम्रायमान मुखवाले सर्पजनोकी सगति करना अच्छा है पर दुर्जनोकी सगति अच्छी नही॥१८॥

दीयते स्वच्छहृदयैः पिण्डो येन त पाणिना ।
मार्ज्जार इव दुर्वृत्तस्तमेव हि विलुम्पति ॥ १९ ॥

स्वच्छहृदयवाले पुरुष जिस हाथसे पिण्डदान दे दुर्वृत्त दानमे वही पुरुष मार्ज्जारकी समान लोप करदेता है ॥ १९ ॥

असाध्यं साधुमन्त्राणां तीव्र [illegible]
द्विजिह्ववदनं धत्ते दुष्टो दुर्ज्जन[illegible] ॥ २० ॥

तीक्ष्ण वाणीरूप विषको उगलताहुआ [illegible] दुर्जनरूप सर्प साधुमन्त्रोंसे भी असाध्य होता है ॥ [illegible]

क्रियतेऽभ्यर्हणीयाय स्वजना[illegible]

तव साधुतर कार्य्यो दुर्ज्जनाय हितार्थिना ॥२१॥

जैसे अपने मनके सत्कारके लिये अमली की जाती है इसीप्रकार हितकी इच्छा करनेवालेको इससे भी अधिक दुर्जनका सत्कार करना चाहिये॥२१॥

द्राविनीं सर्व्वसत्त्वाना सम्यग्जनजिहीर्षया ।

गमयन परमां मैत्रीं विसृजेल्लौकिकीं गिरम् ॥२२॥

करनेवाली सम्पूर्ण जनोंके चित्त हरनेवाली परममैत्री नी लोकसम्बन्धकी वाणी बोले ॥ २२ ॥

ा वाचा प्रह्लादयेज्जगत् ।

ाग्घनदोऽपि सन ॥ २३ ॥

चाहे कुबेर भी हो क्रूरवाणी

पा। न २४॥

मुरवार्णास यह मनाय ॥ न

होकरभी विद्वान कठोरवाणी न बोले ॥

तीव्राण्युद्वेगकारीणि विसृष्टान्यनयात्मक ।

कृन्तन्ति देहिनां मर्म्म शस्त्राणीव वचांसि च ॥२५॥

उद्वेग करनेवाले तीव्र वचन जब अन्यायी लोग उच्चारण करते हैं यह शस्त्रधारियोंकी समान देहधारियोंके मर्म छेदन करदेते हैं ॥ २५ ॥

प्रियमेवाभिधातव्य नित्य सत्सु द्विषत्सु च ।

शिखीव केकामधुर प्रियवाक कस्य न प्रिय ॥२६॥

इससे मित्र और वैरी सबसेही प्यारे वचन कहने चाहिये देखो मोरकी वाणी किसको प्यारी नहीं होती ॥ २६ ॥

अलङ्क्रियन्ते शिखिनः केकया मदरक्तया ।
वाचा विपश्चितोऽत्यर्थं माधुर्य्यगुणयुक्तया ॥ २७ ॥

मदसे अनुरक्त मयूरवाणीसे अलकार कियेजाते है, इसी प्रकार मधुरतायुक्त वाणीसे बुद्धिमानोकी शोभा होती है ॥ २७ ॥

मदरक्तस्य हंसस्य कोकिलस्य शिखण्डिनः ।
सरन्ति न तथा वाचो यथा साधुविपश्चिताम् ॥ २८ ॥

मदसे रक्त हस, कोकिला, मोरकी भी ऐसी वाणी नही निकलती जैसी कि महात्मा बुद्धिमान् मनोहर वाणी बोलते है ॥ २८ ॥

गुणानुरागी स्थितिमान् श्रद्दधानो दयान्वितः ।
धनं धर्म्माय विसृजेत् प्रियां वाचमुदीरयेत् ॥ २९ ॥

गुणोमे अनुरागी स्थितिवाला, श्रद्धायुक्त, दयासम्पन्न पुरुष प्यारी वाणी बोलताहुआ धर्मार्थ धनको दान करै ॥ २९ ॥

ये प्रियाणि प्रभाषन्ते प्रयच्छन्ति च सत्कृतिम् ।
श्रीमन्तोऽनिन्द्यचरिता देवास्ते नरविग्रहाः ॥ ३० ॥

जो प्रियवाणी बोलतेहे और सत्कार करतेहै वह श्रीमान निन्दारहित चरित्रवाले मनुष्य शरीरधारी देवताहीहै ॥ ३० ॥

शुचिरास्तिक्यपूतात्मा पूजयेद्देवताः सदा ।
देवतावद्गुरुजनमात्मवच्च सुहृज्जनम् ॥ ३१ ॥

शुचि, आस्तिक और पवित्र आत्मा हा[illegible] [illegible]न करनाचाहिये गुरुजनोके देवके समान और सुहृज्जनोको आत्म[illegible] [illegible] ॥ ३१ ॥

प्रणिपातेन हि गुरून् सतो[illegible]
कुर्व्वीताभिमुखान् भूत्यै देवान् [illegible] [illegible]ना ॥ ३२ ॥

गुरुजनोंको दण्डवत् करके सत्पुरुषोंको नम्रभावसे, देवताओंको पुष्पक मेंसे ऐश्वर्यके निमित्त अपने सन्मुख करे ॥ ३२ ॥

स्वभावेन हरेन्मित्रं सद्भावेन च बान्धवान् ।
स्त्रीभृत्यान् प्रेमदानाभ्यां दाक्षिण्येनेतरं जनम् ॥ ३३ ॥

मित्रको सद्भावसे बन्धुजनोंको, प्रेमदानसे स्त्री और भृत्योंको
ो वशीभूत करे ॥ ३३ ॥

अ स्वधर्म्मपरिपालनम् ।
ाभ्र मधुरा गिर ॥ ३४ ॥

ने धमका पालन करना दीनों
४ ॥

णे ।
॥ ३५ ॥

माणपणस भी रूप ग ग्रुणसे
मिलना शक्ति अनुसार दान सहन ।

बन्धुभिर्बन्धुसंयोग स्वजन चार॥ ।
सचिचानुविधायित्वमिति वृत्त महात्मनाम् ॥ ३६ ॥

बन्धुभोंकेद्वारा बन्धुसयोग अपन जनोंमें सच्चरित्रता और उनके चित्त रमनेका विधान करना यह महात्माओंका बर्ताव होताहै ॥ ३६ ॥

सनातने वत्मनि साधु तिष्ठतामयहि पन्था गृहमेधिनां मत ।
अनेन गच्छन्निपतमहात्मनामिमञ्चलोकपरमञ्चविन्दति॥ ३७॥

गृहस्थियोंका सनातन मर्यादामें भलीभाँतिसे रहनाही सुमार्ग कहागया है जो महात्मा निरन्तर इस मार्गमें चलते है वह इस लोक और पर लोकमेभी मान्य होते हैं ॥ ३७ ॥

इतिपथि विनिवेशितात्मनो रिपुरपि गच्छति साधु मित्रताम् ।
तदवनिपतिमत्सराद्दते विनयगुणेन जगद्वशी भवेत् ॥ ३८ ॥

जो कोई अपनेको इस मार्गमें चलाता है उसके शत्रुभी मित्र होजाते है सो राजा यदि अभिमानी न हो तो उसके विनय और गुणोंसे जगत् वशीभूत होजाताहै ॥ ३८ ॥

क च नरपतिवर्गः संग्रहः क प्रजानां
मधुरवचनयोगाल्लोकमाह्लादयीत ।
मधुरवचनपाशैरानतो लालितः सन्
पदमपि हि न लोकः संस्थितेर्भेदमेति ॥ ३९ ॥

इति श्रीकामन्दकीये नीतिसारे आचारव्यवस्थापनं
नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

कहा तो नरपतिवर्ग, कहा प्रजाओंका संग्रह परन्तु लोकोंके प्रसन्न करनेवाले मधुरवचनके योगसे प्रजा वशमे आती है मधुरवचनके पाशोंसे नम्रीभूत और लालित हुई प्रजा मर्यादासे भिन्न एक पदभी तो चलनेको समर्थ [illegible] होती ॥ ३९ ॥

इति श्रीकामन्दकीय नीतिसारे भाषाटीकायामाचारव्यवस्थापन
नाम तृतीय सर्ग ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः ४

स्वाम्यमात्यश्च राष्ट्रञ्च दुर्गं कोशो बलं सुहृत् ।
परस्परोपकारीदं सप्ताङ्गं राज्यमुच्यते ॥ [illegible] ॥

स्वामी, मन्त्री, राज्य, किला, खजाना, सेना [illegible] परस्पर उपकारी होनेसे राज्यके सात अंग कहे है ॥ [illegible] ॥

एकाङ्गेनापि विकलमेतत्साधु न वर्त्तते ।
तस्य साकल्यमन्विच्छन् कुर्व्वीत सुपरीक्षणम् ॥२॥
एक अङ्ग भी विकल होनेसे राज्यमें गड़बड़ होती है, इसकारण परीक्षापूर्वक इनकी सम्पूर्णता रखनी उचित है ॥ २ ॥

[illegible]मानमेव प्रथममिच्छेद्गुणसमन्वितम् ।
[illegible]णसंयुक्तस्ततः शेषपरीक्षणम् ॥ ३ ॥
[illegible]यत्न करना चाहिये आप गुणसम्पन्न होकर
[illegible]

[illegible]श्चाकृतात्मभिः ।
[illegible]नितुमर्हति ॥ ४ ॥
[illegible]जो दुष्कर आत्म
[illegible]

[illegible]लोका[illegible]
तिष्ठन्त्यपि इवाधार[illegible]
शुद्ध आमाषाढ सत्कारसम्पन्न राजाको [illegible]
माली तथा बड़े श्रमसे वशीभूत होनेवाली लोकोंक आधारमें [illegible]
हैं जैसे सब आधारमें स्थित रहते हैं ॥ ५ ॥

कुलं सत्त्वं वयः शीलं दाक्षिण्यं क्षिप्रकारिता ।
अमविसंवादिता सत्यं वृद्धसेवा कृतज्ञता ॥ ६ ॥
अच्छाकुल बल अवस्था शान्ति चतुराई कामको शीघ्र सम्पादन करना विवाद न करना सत्य बोलना वृद्धोंकी सेवा करना कृतज्ञ होना ॥६॥

दैवसम्पन्नता बुद्धिरक्षुद्रपरिवारिता ।
शक्यसामन्तता चैव तथा च दृढभक्तिता ॥ ७ ॥

दैवी सम्पत्ति सम्पन्न होना, सत्व सम्पन्न बुद्धि, वृद्धपुरुषोंको सेवामें
रहना, समर्थ सामन्तोंको समीप रखना, दृढ भक्ति होनी ॥ ७ ॥

दीर्घदर्शित्वमुत्साहः शुचिता स्थूललक्ष्यता ।
विनीतता धार्मिकता गुणाः साध्याभिगामिकाः ॥८॥

दीर्घदर्शी होना, उत्साह रखना, पवित्र रहना, स्थूलतासेही लक्ष्यको
जानलेना, विनयसम्पन्न होना, धर्मात्मा होना साध्यवस्तुके सिद्धकरनेके
गुण रखना ॥ ८ ॥

गुणैरेतैरुपेतः सन्सुव्यक्तमभिगम्यते ।
तथा च कुर्वीत यथा गच्छेल्लोकाभिगम्यताम् ॥ ९ ॥

इन गुणोंसे युक्तहुआ स्वामी प्रत्यक्षही जान लियाजाताहै राजा इसप्र-
कारके आचरण करै जिससे सब लोक इसको प्रिय जाने ॥ ९ ॥

प्रख्यातवंशमक्रूरं लोकसंग्राहिणं शुचिम् ।
कुर्वीतात्महिताकाङ्क्षी परिवारं महीपतिः ॥ १० ॥

विख्यातवंशवाले,क्रूरतारहित,लोकोंके संग्रहमें तत्पर,पवित्र ऐसे परिवा-
रका संग्रह अपनी हितकी इच्छा करनेवाले राजाको करना चाहिये ॥१०॥

दुष्टोऽपि भोग्यतामेति परिवारगुणैर्नृपः ।
न क्रूरपरिवारस्तु व्यालाक्रान्त इव द्रुमः ॥ ११ ॥

दुष्टप्रकृतिवाला भी राजा परिवारके गुणोंसे भोग्यताको प्राप्त होताहै
और क्रूरपरिवारवाला राजा सर्पोंसे व्याप्त वृक्षके समान भोग्यताको प्राप्त
नहीं होता ॥ ११ ॥

निरुन्धानाः सतां मार्गं भक्षयन्ति म[illegible]निम् ।
दुष्टात्मानस्तु सचिवास्तस्मात्सुस[illegible] १२॥

सत्पुरुषोंके मार्गको रोकनेवाले दुष्टात्मा मन्त्री [illegible]
इसकारण राजाको अच्छे मन्त्रियोंका संग्रह करन[illegible]

विभूती प्राप्य परमा सतां सम्भोग्यतां व्रजेत् ।
यासु सन्तो न तिष्ठन्ति ता वृथैव विभूतयः ॥ १३ ॥

परमऐश्वर्यको प्राप्तहोकर सत्पुरुषोंकीही सम्भोगताको प्राप्तहोना चाहिये जिनमें सत्पुरुषोंकी स्थिति न होवे वे ऐश्वर्य वृथाही हैं ॥ १३ ॥

असद्भिरसतामेव भुज्यन्ते धनसम्पदः ।
किम्पाकवृक्षस्य ध्वाङ्क्षा भक्षन्ति नेतरे ॥१४॥

...म्पत्ति असत्पुरुषही भोगते हैं क्या पाक (फ...
करतेहैं दूसरे नहीं ॥ १४ ॥

...मानुदग्रो बलवान् वशी ।
...सुविग्रहः ॥ १५ ॥

...मान्, बड़ा बलवान्
...में निपुण, भले
...वाला ॥

पराभियोगप्रसहः
परच्छिद्रानुपश्यी च सन्धिविग्र... ॥

दूसरेके अभियोगको कठिनतासे सहनेवाला, सम्पूर्ण मन... जान... पराये छिद्र जानकर उपेक्षा न करनेवाला, संधिविग्रहके तत्त्वको जाननेवाला ॥ १६ ॥

गूढमन्त्रप्रचारश्च देशकालविभागवित् ।
आदाता सम्यगर्थानां विनियोक्ता च पात्रवित् ॥ १७॥

गुप्तसम्मतिका प्रचारकरनेवाला देश काल विभागका जाननेवाला, भलीप्रकार अर्थका ग्रहण करनेवाला तथा सत्पात्रका ज्ञाता ॥ १७ ॥

क्रोधलोभभयद्रोहदम्भचापल्यवर्जितः ।

परोपतापपैशुन्यमात्सर्य्येर्ष्यानृतातिगः ॥ १८ ॥

क्रोध, लोभ, भय, वैर, स्तब्धता और चचलतासे रहित, परायोंको :ख देना, चुगली, अभिमान, ईर्षा और असत्यसे रहित ॥ १८ ॥

वृद्धोपदेशसम्पन्नः शक्तो मधुरदर्शनः ।
गुणानुरागी स्मितवागात्मसम्पत्प्रकीर्त्तिता ॥ १९ ॥

वृद्धपुरुषोंके उपदेश माननेवाला, समर्थ, मधुरदर्शी, गुणोमे अनुरागी धुरिमालिये बोलनेवाला यह सब आत्मसम्पत्ति कही है ॥ १९ ॥

इत्यादिगुणसम्पन्ने लोकयात्राविदि स्थिरे ।
निर्वृत्तः पितरीवास्ते यत्र लोकः स पार्थिवः ॥ २० ॥

जो इनको आदि लेकर और गुणोसे सम्पन्न है, तथा लोकयात्राके जानने- ाले स्थिरचित्त निश्चिन्त बुरेकर्मोंसे रहित, जिस राजामे प्रजा पिताकी समान वर्ताव करतीहै वही यथार्थ राजाहै ॥ २० ॥

आत्मसम्पद्गुणैः सम्यक् संयुक्तं युक्तकारिणम् ।
महेन्द्रमिव राजानं प्राप्य लोकोऽभिवर्द्धते ॥ २१ ॥

ना आत्मसम्पत्तिके गुणोसे भलीप्रकार युक्तहै युक्तिपूर्वक कार्यको करता महेन्द्रसमान राजाको प्राप्तहोकर प्रजा वृद्धिको प्राप्तहोतीहै ॥२१॥

शुश्रूषा श्रवणञ्चैव ग्रहणं धारणं तथा ।
ऊहाऽपोहोऽर्थविज्ञानं तत्त्वज्ञानञ्च धीगुणा ॥ २२ ॥

शुश्रूषा, श्रवण, ग्रहण, धारण, ऊहापोह (तर्कवितर्क) अर्थका विज्ञान और तत्त्वज्ञान यह बुद्धिके गुण है ॥ २२ ॥

दाक्ष्यं शैघ्र्यं तथामर्षः शौर्य्यञ्चोत्साहलक्षणम् ।
गुणैरेतैरुपेतः सन् राजा भवितुमर्हति ॥ [illegible] ॥

चतुरता, शीघ्रकारिता, अमर्ष (असहना) शूरता [illegible] लक्षण है, इन गुणोंसे युक्त हुआही राजा होसकताहै ॥ [illegible]

त्याग सत्यञ्च शौर्य्यञ्च त्रय एते महागुणा ।
प्राप्नोति हि गुणान्सर्वानेतैर्युक्तो नराधिप ॥ २४ ॥

त्याग (दान) सत्य बोलना और शूरता यह तीन महागुणहैं, इ
युक्तहुआ राजा सम्पूर्ण गुणोंको प्राप्त होताहै ॥ २४ ॥

कुलीना शुचय शूरा श्रुतवन्तोऽनुरागिण ।
दण्डनीतिप्रयोक्तार सचिवा स्युर्महीपते ॥ २५

कुलीन पवित्र, शूर, शास्त्रसम्पन्न दण्डनीतिके यथायोग्य प्रयोग कर
वाले राजाके मंत्री होने चाहिये ॥ २५ ॥

उपधा शोधिता सम्यग्गाहमाना फलोदयम् ।
तस्य सर्व परीक्षेरन्सानुरागा कृताकृतम् ॥ २६ ।

यह भलीप्रकार उपायोंके जानेहुएहों वस्तुसामग्रीके शोधने माननेवाले
कौन वस्तु कहा स्थितहै तथा फलके उदयको माननवाले अनुरागयु
उस राजाके कर्म अकर्मकी मंत्रीजन परीक्षा करते रहैं ॥ २६ ॥

उपेत्य धीयते यस्मादुपधेति तत स्मृता ।
उपाया उपधा ज्ञेयास्तयाऽमात्यान् परीक्षयेत् ॥ २७

समीप जाकर भलीप्रकार परीक्षा कीजाती है इससे उपधा कहाते
उपायोंका नामही उपधाहै अर्थात् धर्म अर्थ काम और भयसे परीक्षापू
मंत्री आदिके आशयका ढूँढना उपधा कहाती है । इन उपायोंद्वारा अ
त्योंकी परीक्षा करे ॥ २७ ॥

स्वदेशजो जानपद कुलशीलमलान्वित ।
वाग्मी प्रगल्भश्चक्षुष्मानुत्साही प्रतिपत्तिमान् ॥ २८

अपने देशका कुलशील और बलसे सम्पन्न वाचा
प्रगल्भ, दूरदर्शी, उत्साही, समयपर तत्काल उपायका ज्ञाता ॥ २८ ॥

स्तम्भचापलहीनश्च मैत्रः क्लेशसहः शुचिः ।
सत्यसत्त्वधृतिस्थैर्य्यप्रभावारोग्यसंयुतः ॥ २९ ॥

स्तब्धता और चपलतासे हीन मित्रताके गुणसम्पन्न क्लेशका सहनेवाला, पवित्र सत्यवादी बल धैर्य स्थिरता प्रभाव और आरोग्यसे संयुक्त ॥ २९ ॥

कृतशिल्पश्च दक्षश्च प्रज्ञावान् धारणान्वितः ।
दृढभक्तिरकर्त्ता च वैराणां सचिवो भवेत् ॥ ३० ॥

शिल्पविद्यामें चतुर दक्ष विचारबुद्धिसम्पन्न, मन्त्रादिधारणमें समर्थ, स्वामीमें दृढभक्तिकरनेवाला, तथा वैरोंका न करनेवाला ऐसा मन्त्री होना चाहिये ॥ ३० ॥

स्मृतिस्तत्परतार्थेषु वितर्को ज्ञाननिश्चयः ।
दृढता मन्त्रगुप्तिश्च मन्त्रिसम्पत् प्रकीर्त्तिता ॥ ३१ ॥

स्मृति अर्थात् कर्तव्य कर्मोंका स्मरण रखना योग्यतासे धनादि उपार्जन करनेमें तत्पर तर्करहितता ज्ञानमें निश्चय दृढता और मन्त्रका गुप्त रखना यह मन्त्रीकी सम्पद् कही है ॥ ३१ ॥

त्रय्याञ्च दण्डनीत्याञ्च कुशलोऽस्य पुरोहितः ।
अथर्ववेविहितं कर्म्म कुर्य्याच्छान्तिकपौष्टिकम् ॥ ३२ ॥

और इस राजाका पुरोहित त्रयीविद्या दण्डनीतिमें कुशल होनाचाहिये, व शान्तिक पौष्टिक कर्म अथर्ववेदके अनुसार करनेवाला होना चाहिये ॥ ३२ ॥

तादृक् सांवत्सरोऽप्यस्य ज्योतिःशास्त्रार्थचिन्तकः ।
प्रश्नाभिधानकुशलो होरागणिततत्त्ववित् ॥ ३३ ॥

इसीप्रकार तिथि आदिका यथायोग्य जाननेवाला प्रश्नकहनेमें चतुर, होरागणितके तत्त्वका जाननेवाला ज्योतिःशास्त्रके अर्थका ज्ञाता, ज्योतिषी होना चाहिये ॥ ३३ ॥

साधुतेषाममात्यानां तद्विधभ्यस्तु बुद्धिमान् ।
चक्षुष्मत्तश्च शिल्पञ्च परीक्षेत गुणद्वयम ॥ ३४ ॥

बुद्धिमान राजाको उचित है कि इन अमात्यादिकों उन विषयवाले भास दूरदर्शिता और शिल्पता इन दोनों गुणोंकी परीक्षा करे ॥ १४ ।

स्वजनेभ्यो विजानीयात् फलस्थानानवग्रहम् ।
परिकर्म्म स्वदाक्ष्यञ्च विज्ञान धारयिष्णुताम् ॥३५।

फलक स्थानों और अवग्रह (अवपण) की जाँच अपने जनोंसे करनी चाहिये तथा परिकर्म [अंगसस्कार] अपनी चतुराई विज्ञान और धारणा इसको स्वजनोंसे जाने ॥ ३५ ॥

गुणद्वय परीक्षेत प्रागल्भ्य प्रतिभान्तथा ।
कथायोगेन बुध्येत वाग्मित्व सत्यवादिताम् ॥३६॥

प्रगल्भता और बुद्धिकी चमत्कारिता इन दोनों गुणोंकी परीक्षा करे बातचीतसे वाचालता और सत्यवादिता जान लीजाती है ॥ ३६ ॥

उत्साहञ्च प्रभावञ्च तथा क्लेशसहिष्णुताम् ।
धृतिञ्चैवानुरागञ्च स्थैर्य्यं वा यदि लक्षयेत् ॥ ३७ ॥

उत्साह प्रभाव क्लेसकी सहनसीलता धृति अनुराग (प्रेम) स्थिरता यह जाननीहां तथा ॥ ३७ ॥

भक्तिं मैत्रीञ्च शौचञ्च जानीयाद्व्यवहारत ।
सवासिभ्यो बल सत्यमारोग्य शीलमेव च ॥ ३८ ॥

भक्ति,मित्रता पवित्रता यह व्यवहारसे जाननी चाहिये अपने समीप समान निवासियोंसे बल सत्य और आरोग्यता तथा शीलको जाने॥३८॥

अस्तब्धताम चापल्य वैरिणां चापि कर्तृताम् ।
प्रत्यक्षतो विजानीयाद्भद्रतां क्षुद्रतामपि ॥ ३९ ॥

स्तब्ध (जड) न होना, चपलता न होना तथा वैरियोंका कर्तव्य, श्रेष्ठता और नीचता यह बाते प्रत्यक्ष होनेसे जाननी चाहिये ॥ ३९॥

कर्मानुमेयाः सर्वत्र परोक्षगुणवृत्तयः ।
तस्मात्परोक्षवृत्तीनां फलैः कर्म विभावयेत् ॥ ४० ॥

और जितनी परोक्षगुणकी वृत्ति है वह सब उनके कर्मोंसे जाननी चाहिये, इससे परोक्ष वृत्ति (जो वस्तु सन्मुख नही) के फलोको कर्मद्वाराही जानै ॥ ४० ॥

सज्जमानमकार्येषु निरुन्ध्युर्मन्त्रिणो नृपम् ।
गुरूणामपि चैतेषां शृणुयाद्वचनं नृपः ॥ ४१ ॥

जिससमय राजा अकार्यमे प्रवृत्त हो तब मन्त्रियोको उसको निवारण करना चाहिये और राजाको उचितहै कि, गुरुजन और मंत्रीजन इनके वचनोको मानै ॥ ४१ ॥

नरेश्वरे जगत्सर्वं निमीलति निमीलति ।
सूर्योदये यथाऽम्भोजं तत्प्रबोधे प्रबुध्यते ॥ ४२ ॥

राजाके नष्ट होने वा अज्ञानी होनेसे सब जगत् नष्ट होता है, वा सो जाता है, और राजाके जागरूक होनेसे सूर्योदयमे कमलकी समान खिल जाता है ॥ ४२ ॥

तं बोधयेज्जगन्नाथं सबुध्येत यथा तथा ।
धीसत्वोद्योगसम्पन्नैस्तत्कर्मसु समाहितैः ॥ ४३ ॥

उस जगत्पति राजाको जैस बने वैसे बुद्धि, सत्व,उद्योगसे सम्पन्न सावधानीके कर्मोंसे जगावे ॥ ४३ ॥

नृपस्य ते हि सुहृदस्त एव गुरवो मताः ।
य एनमुत्पथगतं वारयन्त्यनिवारिताः ॥ ४४ ॥

राजाके जो सुहृद् हैं वही उसके गुरु हैं जो इस राजाको कुमार्गमें पड़ तेही तत्काल रोकदेते है और आप उसके भयसे सदुपदेशसे निवृ नहीं होते ॥ ४४ ॥

सम्भ्रमानमकार्येषु सुहृदो वारयन्ति ये ।
सत्यन्तेनैव सुहृदो गुरवो गुरवो हि ते ॥ ४५ ॥

जो सुहृद् अकार्यमें लगेहुए राजाका निवारण करतेहैं वेही सुहृद् सत सुहृद् हैं और गुरुके गुरु हैं ॥ ४५ ॥

एवंविधोऽपि बलिना व्यक्त रागेण रज्यते ।
रागानुरक्तचित्तस्तु किन्न कुर्य्यादसाम्प्रतम् ॥ ४६ ॥

विद्वान्भी बलिष्ठ प्रेमरागमें निश्चयही अनुरक्त होजाताहै, और प्रममें चित्त अनुरक्त होनसे कौनसा अयोग्य कर्म नहीं किया जाता ? ॥ ४६ ॥

पश्यन्नपि भवत्यन्ध सम्राडागोवृतस्तु सद्य ।
सुहृद्वैद्याश्चिकित्सन्ति निर्मलैर्विनयाञ्जनै ॥ ४७ ॥

अनुरागी राजा देखता हुआभी अन्धाही रहता है तब सुहृद्रूपी वैद्यही इसकी निर्मल विनयरूप अंजनसे चिकित्सा करते हैं ॥ ४७ ॥

रागमानमदान्धस्य स्खलत शत्रुसंकटे ।
हस्तावलम्बो भवति सुहृत्सचिवचेष्टितम् ॥ ४८ ॥

राग और मान मदसे अंधेहुए शत्रुसंकटमें पड़े राजाको सुहृद् मंत्रि की चेष्टाही हाथका सहारा होती है ॥ ४८ ॥

मदोद्धतस्य नृपते संकीर्णस्येव दन्तिन ।
गच्छन्त्यन्यायवृत्तस्य नेतार खलु वाच्यताम् ॥ ४९ ॥

मदसे उद्धत अन्यायमें प्रवृत्त हुए राजाके मन्त्रीही दुर्नामताका भाग होतेहैं जिसप्रकार उद्धत मदान्ध कुमार्गगामी हस्तिके माल हाथीके महावतकी निन्दा होतीहै ॥ ४ ॥

भूगुणैर्वर्द्धते राष्ट्रं तद्वृद्ध्या नृपवृद्धये ।
तस्माद्गुणवतीं भूमिं भूत्यै भूपस्तु कारयेत् ॥ ५० ॥

पृथ्वीके गुणोंसे राज्य बढताहै, और राज्यकी वृद्धिमें राजाकी वृद्धि होतीहै, इस कारण राजाको ऐश्वर्यवृद्धिकेनिमित्त पृथ्वीको गुणवतीकरनीचाहिये॥५०॥

शस्याकरवती पण्यखनिद्रव्यसमन्विता ।
गोहिता भूरिसलिला पुण्यैर्जनपदैर्वृता ॥ ५१ ॥

अन्न तथा व्यापारिक वस्तुओंकी खान तथा खोदकर निकलनेवाले हीरा पन्ना आदि द्रव्योंसे युक्त, गौओंकी हितकारिणी, बडे जलवाली पवित्र देशोंसे सम्पन्न ॥ ५१ ॥

रम्या सकुञ्जरवना वारिस्थलपथान्विता ।
अदेवमातृका चेति शस्यते भूर्विभूतये ॥ ५२ ॥

मनोहर, हस्तियोंसे सम्पन्न वनवाली, जल और स्थलके मार्गसे सम्पन्न विना मेघवर्षा भी अन्न उपजानेवाली अर्थात् कूप नहर आदिसे ही सींचनेसे अन्न प्रगट करनेवाली भूमि ऐश्वर्य वृद्धिके निमित्त होती है ॥ ५२ ॥

सशर्करा सपाषाणा साटवी नित्यतस्करा ।
रूक्षा सकण्टकवना सव्याला चेति भूरभूः ॥ ५३ ॥

कंकर पत्थरवाली, सर्वत वनवाली, चोरोंसे नित्य सम्पन्न, रूखी कटीले वनोंवाली, सर्पोंकी अधिकाईवाली भूमि, ऐश्वर्यके निमित्त नही होती ॥५३॥

स्वाजीव्यो भूगुणैर्युक्तः सारूपः पर्वताश्रयः ।
शूद्रकारुवणिक्प्रायो महारम्भकृषीवलः ॥ ५४ ॥

अपने अधीन आजीविकावाला भूमिके गुणोंसे युक्त सारूप (समान रूपवाला)पर्वतके आश्रयवाला अर्थात जिसके समीप पर्वत हो, शूद्र शिल्पी चित्र आदि बनानेवालोंसे युक्त, वणिग्जनोंसे व्याप्त, बडे आरम्भ करनेवाले किसानोंसे सम्पन्न ॥ ५४ ॥

सानुरागो रिपुद्वेषी पीडाकरसहः पृथुः ।
नानादेश्यैः समाकीर्णो धार्मिकः पशुमान् धनी॥५५

अपनमें प्रेमकरनेवाला राजशत्रुसे द्वेष करनेवाला पीडाको सह वाला विशाल, अनेक देशकी वस्तु तथा अनेक देशके प्राणियोंसे भरा धर्मात्मा पशुसम्पन्न और धनी ॥ ५५ ॥

ईदृग्जनपदः शस्तोऽमूर्खव्यसनिनायकः ।
तं वर्द्धयेत्प्रयत्नेन तस्मात्सर्वं प्रवर्द्धते ॥ ५६ ॥

पहलेलिखा इसप्रकारका देश प्रशंसाके योग्यहै और उसका माम मूर्ख और विषयी नहो उस देशको तथा राजाको यत्नसे बढाना च उसके बढनेसे सबकी वृद्धि होतीहै ॥ ५६ ॥

पृथुसीममहाखातमुच्चप्राकारगोपुरम् ।
समावसेत्पुरं शैलसरिद्वनवनाश्रयम् ॥ ५७ ॥

विशालसीमावाला अर्थात् बहुतसी भूमिको घरकर बनाया बहुत गहरी खाई ऊँची चार दिवारी फाटकसे सम्पन्न पुरके समीप नदी तथा घने वनके समीप ॥ ५७ ॥

जलवद्धान्यधनवद्दुर्गं कालसहं महत् ।
दुर्गहीनो नरपतिर्वाताभ्रावयवैः समः ॥ ५८ ॥

जल, धान्य और धनसे भरा पूरा समयको सहनवाला बडा राजाको बनाना चाहिये किलेसे रहित राजा पवनसे प्रेरित मेघोंके टॉकी समान छिन्न भिन्न होजाताहै ॥ ५८ ॥

औदकं पार्वतं वार्क्षमैरिणं धान्वनन्तथा ।
प्रशस्तं शास्त्रमतिभिर्दुर्गं दुर्गोपचिन्तकैः ॥ ५९ ॥

शास्त्रके ज्ञाता दुर्गके विधान जाननेवालोंने जलवाले, पर्वतवाले, वृक्षोवाले, ऊसरभूमिवाले और धनसम्पत्तिवाले दुर्गकी प्रशंसा कीहै ॥ ५९ ॥

जलान्नायुधयन्त्राढ्यं धीरयोधैरधिष्ठितम् ।
गुप्तिप्रधानमाचार्य्या दुर्गं समनुमेनिरे ॥ ६० ॥

जल अन्न शस्त्र और यन्त्रोंसे सम्पन्न, धीरवीर योधाओंसे व्याप्त, प्रधान मन्त्रि और आचार्योंसे रक्षित दुर्गकी वडाई की है ॥ ६० ॥

सापसाराणि दुर्गाणि भुवः सारूपजाङ्गलाः ।
निवासाय प्रशस्यन्ते भूभुजां भूतिमिच्छताम् ॥ ६१ ॥

जलवाले दुर्ग और सारूप (अपने अनुरूप) जांगलदेश यह ऐश्वर्यकी इच्छा करनेवाले राजोंके निवासके योग्य होतेहैं ॥ ६१ ॥

बह्वादानोऽल्पनिःस्रावः ख्यातः पूजितदैवतः ।
ईप्सितद्रव्यसम्पूर्णो हृद्य आप्तैरधिष्ठितः ॥ ६२ ॥

अब कोषका वर्णन करते है वहुत ग्रहणवाला, थोडे खर्चवाला, विख्यात अधिदेवतासे पूजित, मन ईप्सित द्रव्योंसे भरापुरा, सहृदय, सज्जनपुरुषोंसे सेवित ॥ ६२ ॥

मुक्ताकनकरत्नाढ्यः पितृपैतामहोचितः ।
धर्मार्जितो व्ययसहः कोषः कोषज्ञसम्मतः ॥ ६३ ॥

मोती, सुवर्ण और रत्नोंसे भरा, पिता पितामहके सम्बन्धसे आयाहुआ, धर्मसे उपार्जन किया हुआ, कैसाभी खर्च आपडे उसको सहलेनेवाला खजाना कोषाध्यक्षको सम्मतहै ॥ ६३ ॥

धर्म्महेतोस्तथार्थाय भृत्यानां भरणाय च ।
आपदर्थञ्च संरक्ष्यः कोषः कोषवता सदा ॥ ६४ ॥

धर्म और अर्थके निमित्त तथा भृत्योंके भरणपोषण करनेके निमित्त और आपत्तिके निमित्त कोषवालेको कोषकी सदा रक्षा करनी चाहिये॥६४

पितृपैतामहो वश्यः संहतो दत्तवेतन ।
विख्यातपौरुषोर्जित्य कुशल कुशलैर्वृत ॥ ६५ ।

पिता पितामहोंके समयसे प्राप्त वशीभूत, अपना परस्परहित समय निरन्तर जिसके वेतन मिलतारहा विख्यातपुरुषार्थवाला समरमें चतुर चतुरजनोंसे सेवित ॥ ६५ ॥

नानाप्रहरणोपेतो नानायुद्धविशारद ।
नानायोधसमाकीर्णो नीराजितहयद्विपः ॥ ६६ ॥

चमकचमकारके प्रहार लगे शरीरवाला, अनेक युद्ध करनेमें कुश अनेक योधाओंसे मण्डित हाथी घोडोंकी सवारीसे नीराजित ॥ ६६ ॥

प्रवासायासदुःखेषु युद्धेषु च कृतश्रम ।
अद्वैध्यक्षत्रियप्रायो दण्डो दण्डविदां मत ॥ ६७ ।

परदशके परिश्रम और दुःख तथा युद्धोंमें परिश्रम किये हुए अ तीय क्षत्रीही दण्डनता दण्डके जाननवालोंने कहाहै ॥ ६७ ॥

त्यागविज्ञानसत्त्वाढ्य महापक्ष प्रिय वदम् ।
आयतिक्षममद्वैध्य मित्रं कुर्वीत सत्कुलम् ॥ ६८ ।

त्याग विज्ञान और सत्त्वसम्पन्न मित्रके महापक्षका ग्रहण किये मि वादी आनवाले समयके माननेमें समर्थ, अव्यभिचारी, सत्कुलमें उत्प मित्र करना चाहिये ॥ ६८ ॥

समुत्पन्नेषु कृच्छ्रेषु दारुणेष्वप्यसंशयम् ।
दर्शयत्यच्छहृदय कुलीनश्चतुरसताम् ॥ ६९ ॥

दारुण कष्टकर्मो उपस्थित होनेमें निःसन्देह स्वच्छहृदय कुलीन मित्र अपने प्राणोंसे निर्माहता दिखाता है ॥ ६९ ॥

पितृपैतामहं नित्यमद्वैध्यं हृदयानुगम् ।
महल्लघुसमुत्थानं मित्रं मित्रार्थमिष्यते ॥ ७० ॥

पिता पितामहके वंशक्रमसे प्राप्त नित्य अव्यभिचारी हृदयवाला महान और लघुउन्नतिशीलवाला मित्र, मित्रताके लिये इच्छा किया जाता है ॥ ७० ॥

दूरादेवाभिगमनं स्पष्टार्थहृदयानुगा ।
वाक् सत्कृत्य प्रदानञ्च त्रिविधो मित्रसंग्रहः ॥ ७१ ॥

दूरसेही सन्मुख गमन करना हृदयके अनुकूल स्पष्ट बोलना, वाणीसे सत्कारपूर्वक दान, यह तीन प्रकारसे मित्रका सग्रह होता है ॥ ७१ ॥

धर्म्मार्थकामसंयोगो मित्राणां त्रिविधं फलम् ।
यस्मादेतत्रयं न स्यान्नतत्सेवेत पण्डितः ॥ ७२ ॥

धर्म अर्थ और कामका सयोग यह तीन प्रकारसे मित्रोंके सग्रहका फल है, जिसमे यह तीनो न हो बुद्धिमान् उसका सेवन न करे ॥ ७२ ॥

आदौ तन्व्यो बृहन्मध्या विस्तारिण्यः पदे पदे ।
यामिन्यो न निवर्त्तन्ते सतां मैत्र्यः सरित्समाः ॥ ७३ ॥

प्रथम सूक्ष्म मध्यमे बृहत् फिर पदपदमे विस्तारवाली निरन्तर गामिनी नदीकी समान सत्पुरुषोंकी मित्रता कभी निवृत्त नही होती ॥ ७३ ॥

औरसं कृतसम्बन्धं तथा वंशक्रमागतम् ।
रक्षितं व्यसनेभ्यश्च मित्रं ज्ञेयं चतुर्विधम् ॥ ७४ ॥

सहोदर, सम्बन्धी तथा वंशपरम्परासे प्राप्त, व्यसनोसे रक्षित ऐसे चार प्रकारके मित्र होतेहै ॥ ७४ ॥

शुचिता त्यागिता शौर्य्यं समानसुखदुःखता ।
अनुरागश्च दाक्ष्यञ्च सत्यता च सुहृद्गुणाः ॥ ७५ ॥

पवित्रता त्याग शूरता सुखदुःखमें समानता अनुराग और उद्यत तथा सत्यता यह सुहृत्के गुण हैं ॥ ७५ ॥

तदर्थे ह्यनुरागश्च संक्षिप्तं मित्रलक्षणम् ।
यस्मिन्नेतन्न तन्मित्रं तत्रात्मानं न निक्षिपेत् ॥७६॥

और मित्रके निमित्त अनुराग यह संक्षेपसे मित्रका लक्षण है, जिसमें यह बातें न हों वह मित्र नहीं है उसमें अपनी आत्माको अर्पण न करे ॥७६॥

इति स्वराज्यं सकलं समीरितम्परामविद्याऽस्य धनं ससाधनम् ।
गृहीतमेतन्निपुणेन मन्त्रिणा त्रिवर्गनिष्पत्तिमुपैति शाश्वतीम् ॥७७॥

इसप्रकारसे राज्यका समस्त वर्णन किया यह विधान और प्रतिग्रह परमसाधन है निपुणमंत्री द्वारा यह सब ग्रहण करनेसे सदा रहनेवाली त्रिवर्गकी निष्पत्ति [धर्म अर्थ कामकी प्राप्ति] होती है ॥ ७७ ॥

यथान्तरात्मा प्रकृतीरधिष्ठितश्चराचरं विश्वमिदं समश्नुते ।
तथा नरेन्द्रः प्रकृतीरधिष्ठितश्चराचरं विश्वमिदं समश्नुते॥७८॥

जिसप्रकारसे प्रकृतिसे अधिष्ठित अन्तरात्मा इस चराचर जगत्को भोगता है इसीप्रकार प्रजाओंसे प्रतिष्ठित राजा इस चराचर विश्वको प्राप्त कर भोगता है ॥ ७८ ॥

प्रकृतिभिरिति सम्यगर्चितोजनपदमादरवांस्तु पालयेत् ।
जनपदपरिपालनाच्चिरं स्पृशति नृपः परमं प्रियः पदम् ॥७९॥

प्रजाओंसे सत्कारको प्राप्त हुआ राजा आदरपूर्वक देशकी पालना करे जनपदके पालन करनेसे राजा बहुत समयतक पर लक्ष्मीके स्थानको प्राप्त करता रहता है ॥ ७९ ॥

प्रकृतिगुणसमन्वितं सुधीर्भजति नृपं स्पृहणीयतां पराम् ।
भवति च स रणेषु विद्विषां प्रबल इव श्वसनः पयोमुचाम् ॥८०॥

इति श्रीकामन्दकीये नीतिसारे स्वाम्यमात्यजनपददुर्गकोप
दण्डमित्रवर्णनं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

प्रजाके गुणोंसे युक्त बुद्धिमान् राजाकी बडी बडाई होतीहै, और वह युद्धमें शत्रुओंसे ऐसे प्रबल होजाता है, जिसप्रकार पवन मेघोंको छिन्न भिन्न कर देता है ॥ ८० ॥

इति श्रीकामन्दकीये नीतिसारे भाषाटीकायां स्वाम्यमात्यजनपददुर्ग-
कोपदण्ड मित्रवर्णन नाम चतुर्थ' सर्ग ॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः ५.

इत्यर्थवृत्तिसम्पन्नाः कल्पवृक्षोपमं नृपम् ।
अभिगम्य गुणैर्युक्तं सेवेयुरनुजीविनः ॥ १ ॥

इसप्रकार अर्थवृत्तिसे सम्पन्न कल्पवृक्षके समान गुणोंसे युक्त राजाके समीप जाकर सेवक अनुजीवी पुरुष सेवा करें ॥ १ ॥

द्रव्यप्रकृतिहीनोऽपि सेव्यते सद्गुणान्वितः ।
भवत्याजीवनं तस्माच्छ्लाघ्यं कालान्तरादपि ॥ २ ॥

चाहे द्रव्य और प्रकृतिहीनभी हो पर सद्गुणोंसे युक्त होनेसे राजा सेवनीय होताहै, इससे आजीवन होताहै, और यह कालान्तरमें श्लाघनीय होता है ॥ २ ॥

अपि स्थाणुरिवासीत शुष्यन् परिगतः क्षुधा ।
न त्वेवानात्मसम्पन्नाद्वृत्तिमीहेत पण्डितः ॥ ३ ॥

चाहे ठूठकी समान क्षुधासे व्याकुल होकर सूखजाय परन्तु पंडितजन गुणहीन अनात्मसम्पत्तिवाले राजासे वृत्तिकी इच्छा न करें ॥ ३ ॥

अनात्मवान्नयद्वेषी वर्द्धयन्नातिसम्पदः ।

प्राप्यापि महदैश्वर्य्यं सह तेन विपद्यते ॥ ४ ॥

जो अनात्मवान् नीतिका द्वेषी हो और उसके पास बड़ी सम्पत्ति वृद्धि हो, वह महान् ऐश्वर्यको प्राप्त होकरभी उसके सहित नष्ट होजाता है ॥

लब्धावकाशो निपुण आत्मवानविकारवान् ।

स्थाने स्थैर्य्यमवाप्नोति भविकर्म्मसु निश्चित ॥ ५ ॥

आत्मवान् अविकारी चतुर पुरुष कर्तव्य कर्मोंमें निश्चयवाला समय पाकर स्थानमें ऐश्वर्यको प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

आयत्याञ्च तदात्वे च यत्स्यादास्वादपेशलम् ।

तदेव तस्य कुर्वीत न लोकद्विष्टमाचरेत् ॥ ६ ॥

निमित्त प्रारम्भानुसार आगामी कालके आगमनमें तथा वर्तमानमें जो चतुराईसे उत्तम कार्य हो वही आरम्भ करे परन्तु मालिक निमित्त लोक द्वेषी कर्मको न करे ॥ ६ ॥

तिलाश्चम्पकसंश्लेषात्प्राप्नुवन्त्यधिवासताम् ।

रसो न भक्ष्यस्त्वद्गन्ध सर्व्वे सांक्रामिका गुणा ॥७॥

चम्पेके साथ रखनेसे तिलोंमें वैसेही, सुगन्धि आजाती है, रस नहीं खाया जाता पर उसकी गन्ध तिलोंमें जाती है, इसकारण सम्पूर्ण गुण संक्रामिक हैं ॥ ७ ॥

अपां प्रवाहो गाङ्गो वा समुद्रं प्राप्य तद्रस ।

भवत्यपेयस्तद्विद्वान्नाश्रयेदशुभात्मकम् ॥ ८ ॥

जलोंका वा गंगाजलोंका प्रवाह जब सागरमें जाता है तब पीनेके योग्य नहीं रहता, इससे विद्वान्को उचित है कि, अशुभ गुणवालेका आश्रय न करे ॥ ८ ॥

क्लिश्यमानपि हि मेधावी शुद्ध जीवनमाचरेत् ।

तेनेह श्लाघ्यतामेति लोकेऽप्यत्र न हीयते ॥ ९ ॥

बुद्धिमान्को चाहे क्लेशभी रहे पर अपना जीवन शुद्ध रक्खे, इससे उसकी बडाई होतीहै और लोकोंमे हीनता नही होती ॥ ९ ॥

अभिलष्यं स्थिरं पुण्यं ख्यातं सिद्धनिषेवितम् ।
सेवेतसिद्धिमन्विच्छन् श्लाघ्यविन्ध्यमिवेश्वरम्॥१०॥

विख्यात और सिद्धोसे सेवित स्थिरपुण्यकी अभिलाषा करता हुआ सिद्धिकी इच्छासे विन्ध्यकी समान अपने श्लाघनीय ईश्वरकी सेवा करै १०

दुरापमपि लोकेऽस्मिन् यद्यद्वस्त्वभिवाञ्छति ।
तत्तदाप्नोपि मेधावी तस्मात्कार्य्यः समुद्यमः ॥ ११ ॥

कठिनतासेभी इस लोकमे प्राप्तहोनेयोग्य जिसजिस वस्तुकी इच्छा करता है, पुरुषार्थसे बुद्धिमान् उस उसको प्राप्त होता है इससे निरन्तर उद्यम करना चाहिये ॥ ११ ॥

आरिराधयिषुः सम्यगनुजीवी महीपतिम् ।
विद्याविनयशिल्पाद्यैरात्मानमुपपादयेत् ॥ १२ ॥

अनुजीवीवर्ग अपने राजाके आराधनकी भलीप्रकारसे इच्छा करता हुआ विद्या, विनय और शिल्पादिसे अपने आत्माको भूषित करै ॥ १२ ॥

कुलविद्याश्रुतौदार्य्यशीलविक्रमधैर्य्यवान् ।
वपुः सत्वबलारोग्यस्थैर्य्यशौचदयान्वितः ॥ १३ ॥

कुल, विद्या, शास्त्र, उदारता, शील, विक्रम, धैर्य, सत्व, बल, आरोग्य, स्थिरतायुक्त शरीर तथा शौच और दयासे सयुक्त होकर ॥ १३ ॥

पैशुन्यद्रोहसम्भेदशाठ्यलौल्यानृतातिगः ।
स्तम्भचापलहीनश्च सेवनं कर्त्तुमर्हति ॥ १४ ॥

और चुगली, द्रोह, भेदकराना, शठता, चचलता, असत्यता, स्तम्भता, चपलता, इनसे रहित होकरही राजाकी सेवा होसकतीहै ॥ १४ ॥

दक्षता भद्रता दार्ढ्यं क्षान्तिः क्लेशसहिष्णुता ।
सन्तोषः शीलमुत्साहो मण्डयन्त्यनुजीविनम् ॥ १५ ॥

चतुराई सभ्यता दृढता, क्षमाशीलता क्लेशमें सहनशीलता सन्तोष शील और उत्साह यह अनुजीवियोंको शोभित करते हैं ॥ १५ ॥

अर्थशौचपरो नित्यं गुणैरेतैः समन्वितः ।
भूतये भूतिसम्पन्नं साधु विश्वासयेन्नृपम् ॥ १६ ॥

नित्य अर्थशुद्धिमें तत्पर इन गुणोंसे सम्पन्न हुआ साधुसेवक ऐश्वर्य और कल्याणके निमित्त ऐश्वर्यसम्पन्न राजाको विश्वास दिलावे ॥ १६ ॥

प्रविश्य सम्यगुचिते स्थाने तिष्ठन् स वेषवान् ।
यथाकालमुपासीत राजानं विनयान्वितः ॥ १७ ॥

नम्र वेषधारण किये वा जैसा वेष उस अधिकारीका नियत है उस वेष धारण किये राजस्थानमें प्रवेशकर उचित स्थानमें स्थित होकर विनयपूर्वक यथासमय राजाकी सेवा करे ॥ १७ ॥

परस्थानासनं क्रौर्य्यमौद्धत्यं मत्सरं त्यजेत् ।
विगृह्य कथनञ्चैव न कुर्य्याज्ज्यायसा सह ॥ १८ ॥

दूसरेका स्थान, आसन, क्रूरता, उद्धतपन और मत्सरका त्याग करे कथनको ग्रहण कर अधिक बड़ोंसे वाद न करे ॥ १८ ॥

विप्रलम्भञ्च मायाञ्च दम्भं स्तेयञ्च वर्जयेत् ।
पुत्रेभ्यश्च नमस्कुर्य्याद्दल्लभेभ्यश्च भूपतेः ॥ १९ ॥

उपालम्भके वचन, माया, दम्भ और चोरीको न करे राजाके पुत्र और राजाके प्रियजनोंसेभी प्रणाम करे ॥ १९ ॥

न नर्म्मसचिवैः सार्द्धं किञ्चिदप्यप्रियं वदेत् ।
ते हि मर्म्माण्यभिन्दन्ति महासेनापि संसदि ॥ २० ॥

परिहास मन्त्रियोंसे कुछभी अप्रिय न कहे, वेही सभामें हास्यपूर्वक मर्ममें प्रहार करते है ॥ २० ॥

भर्तुरन्यासने तिष्ठन् दृष्टिं नान्यत्र विक्षिपेत् ।
कुर्य्यात्किमयमित्यस्य तिष्ठेच्चास्यं विलोकयन् ॥ २१ ॥

स्वामीके पीछे निर्दिष्ट आसनपर स्थित हुआ इधर उधर दृष्टिको चलायमान न करे, और यह क्या कहेंगे इसप्रकार उस स्वामीकेही मुखकी ओर देखता हुआ स्थित रहे ॥ २१ ॥

कोऽत्रेत्यहमिति ब्रूयात्सम्यगाज्ञापयेति च ।
आज्ञां चावितथीकुर्य्याद्यथाशक्त्याऽविलम्बितम् ॥ २२ ॥

कौन है ऐसा कहनेपर मैं हूं क्या आज्ञा है ऐसा कहे और यथाशक्ति शीघ्रही उस आज्ञाको सम्पादन करे विफल न करे ॥ २२ ॥

उच्चैःप्रहसनं कासं ष्ठीवनं कुत्सनंतथा ।
जृम्भणं गात्रभङ्गञ्च पर्वास्फोटञ्च वर्जयेत् ॥ २३ ॥

ऊँचे स्वरसे हँसना, बहुत खाँसना खँकारना, कुत्सन (निन्दा) जभाई लेना, अगडाई लेना, ऊगली चटकाना इतनी बाते राजसभामें कभी न करनी चाहिये ॥ २३ ॥

प्रविश्य सानुरागस्य चित्तं चित्तज्ञसम्मतः ।
समर्थयंश्च तत्पक्षं साधु भाषेत भाषितः ॥ २४ ॥

सभामें प्रवेश करके प्रेमपूर्वक स्वामीके चित्तकी वृत्तिको देखकर उनके पक्षकोही समर्थन करताहुआ पूँछनेपर शुभवचन बोले ॥ २४ ॥

तन्नियोगेन वा ब्रूयादर्थं सुपरिनिश्चितम् ।
सुखप्रवृद्धगोष्ठीषु विवादे वादिनां मतम् ॥ २५ ॥

अथवा स्वामीके आज्ञा देनेपर निश्चित अर्थको बोले और जब सुखवृद्धिकारी गोष्ठी होरहीहो तब उस विवादमें वादियोंके मतको ॥ २५ ॥

विजानन्नपि न ब्रूयाद्भर्तुः क्षिप्रोत्तरं वचः ।
प्रवीणोऽपि हि मेधावी वर्जयेदभिमानिताम् ॥ २६ ॥

जानकरभी न कहे, स्वामीके पूछे विना कभी शीघ्र उत्तर न दे, प्रवीणता और बुद्धिमत्ताका अभिमान न करे ॥ २६ ॥

यदभ्युपैर्विजानीयान्नीचैस्तदपि कीर्त्तयेत् ।
कर्म्मणा तस्य वैशिष्ट्यं कथयेद्विनयान्वितः ॥२७॥

जो बात विशेषतासेभी जानीगई हो उसेभी शनैःशनैः नम्रतासे कथन करे विनययुक्त होकर कर्मसेही उसकी श्रेष्ठता सम्पादन करे ॥ २७ ॥

आपद्युन्मार्गगमने कार्य्यकालात्ययेषु च ।
अपृष्टोऽपि हितान्वेषी ब्रूयात्कल्याणभाषितम् ॥ २८ ॥

स्वामीको आपदग्रस्त होते, कुमार्गमें चलते तथा कार्यका काल व्यतीत होता देखे तो हितकी इच्छावाला कल्याणकारक वचनोंको विनापूछे भी कहे २८

प्रियं तथ्यञ्च पथ्यञ्च वदेद्धर्मार्थमेव च ।
अश्रद्धेयमसत्यञ्च परोक्षे कटु चोत्सृजेत् ॥ २९ ॥

प्यारे सत्य हितकारी धर्मअर्थयुक्त वचन बोले तथा अश्रद्धेय अमान्य असत्यवचन और परोक्षमें कटुवचनोंका त्यागे ॥ २९ ॥

परार्थं देशकालज्ञो देशे काले च साधयेत् ।
स्वार्थञ्च स्वार्थकुशलः कुशलेनानुकारिणा ॥ ३० ॥

देशकालका जाननेवाला यथाविधि देशकालमें परार्थको साधन कर और स्वार्थकुशल कुशल अर्थात भले कार्योंको करता हुआ देशकालानुसार अपना स्वार्थभी साधे ॥ ३० ॥

गुह्यं कर्म्म च मन्त्रञ्च न भर्त्तुः सम्प्रकाशयेत् ।
विद्विष्टिञ्च विनाशञ्च मनसापि न चिन्तयेत् ॥ ३१ ॥

स्वामीके गुप्त कर्म और मन्त्रको किसीप्रकारभी प्रकाशित न करे, और विद्वेष तथा विनाशको मनसेभी न विचारे ॥ ३१ ॥

स्त्रीभिस्तद्दर्शिभिः पापैर्वैरिदूतैर्निराकृतैः ।
एकार्थचर्य्या साहित्यं संसर्गञ्च विवर्जयेत् ॥ ३२ ॥

स्त्रीजन तथा उनके देखनेवाले पापीजन तथा वैरीके दूत, वा जिनका तिरस्कार कियाहो, एकही प्रयोजनवालोंका संसर्ग और साहित्यका निरन्तर सेवन, इनका त्यागन करदे ॥ ३२ ॥

वेषभाषानुकरणं न कुर्य्यात्पृथिवीपतेः ।
सम्पन्नोऽपि हि मेधावी स्पर्द्धेत न च तद्गुणैः ॥ ३३ ॥

राजाके वेष तथा बोलीका अनुकरण न करे, सम्पन्न होकरभी बुद्धिमान् उसके गुणोकी स्पर्धा न करे ॥ ३३ ॥

रागापरागौ जानीयाद्भर्तुः कुशलकर्म्मकृत् ।
इङ्गिताकारलिङ्गाभ्यामिङ्गिताकारतत्त्ववित् ॥ ३४ ॥

चतुर कार्यका करनेवाला स्वामीकी प्रसन्नता और अप्रसन्नताको जाने, इन्द्रियोकी चेष्टा और आकारके तत्त्वका जाननेवाला, इन्द्रियोके आकार और चेष्टाओंको जाने ॥ ३४ ॥

दृष्ट्वा प्रसन्नो भवति वाक्यं गृण्हाति चादरात् ।
दिशत्यासनमभ्यासे कुशलं परिपृच्छति ॥ ३५ ॥

जो देखतेही प्रसन्न होताहै, आदरसे उसके वाक्यको ग्रहण करताहै, समीप आसन देकर कुशल पूँछताहै ॥ ३५ ॥

विविक्तदर्शनस्थाने रहस्ये च न शङ्कते ।
तदर्थो तत्कृतामुच्चैराकर्णयति सत्कथाम् ॥ ३६ ॥

एकान्तदर्शन स्थान और रहस्य कथनमें जो शंका नहीं करताहै,

सेवकके अर्थ तथा उसके कर्तव्यको जो प्रगट होकर सुनताहै, उसके बारे प्रको मन लगाकर सुनताहै ॥ ३६ ॥

श्लाघते श्लाघनीयेषु श्लाघ्यमानञ्च नन्दति ।
कथान्तरेषु स्मरति प्रहृष्टः कीर्त्तयेद्गुणान् ॥ ३७ ॥

जो तारीफ करनेयोग्योंमें बड़ाई करताहै जो उसकी बड़ाई करै उससे प्रसन्न होताहै, दूसरी वार्ताओंमें उसको स्मरण करताहै और प्रसन्न होकर गुणोंको कीर्तन करताहै ॥ ३७ ॥

सहते पथ्यमप्युक्तं न निन्दामनुमन्यते ।
करोति वाक्यं तत्प्रोक्तं तद्वचो बहु मन्यते ॥ ३८ ॥

सेवकके युक्त तथा पथ्यवचनकोभी सहलेना और उसकी निन्दाको न मानना उसके कहेहुए वचनको करना और उसके वचनको बहुत मानना यह तो स्वामीकी प्रसन्नताके लक्षण हैं ॥ ३८ ॥

उपकारेषु माध्यस्थ्यं दर्शयत्यद्भुतेष्वपि ।
तत्कृतं कर्म्म चान्येन स्कृतमित्यभिधीयते ॥ ३९ ॥

और अद्भुत उपकारोंमेंभी मध्यस्थता दिखानी और उसके कियेहुए कर्मको दूसरका कियाहुआ बताना ॥ ३९ ॥

विपक्षमुत्थापयति विनाशं चाप्युपेक्षते ।
कार्य्यं समन्वयत्याशां फले च कुरुतेऽन्यथा ॥ ४० ॥

उसके विपक्षको उठाना और विनाशकी उपेक्षा करनी उसके कार्यपर आशा बढानी और उसका फल न देना ॥ ४० ॥

यद्वाक्यं मधुरं किञ्चित्तदप्यर्थेननिष्ठुरम् ।
आचरत्यात्मरशासु परिवादञ्च केवलम् ॥ ४१ ॥

जो सेवकका वाक्य मधुर हो ताभी अर्थसे उसको निष्ठुर मानलेना, और अपनी रक्षामें सेवककी केवल निन्दाही करना ॥ ४१ ॥

अकोपोऽपि सकोपाभः प्रसन्नश्चापि निष्फलः ।
वदत्यकस्माद्व्रजति रूक्षश्च मुहुरीक्षते ॥ ४२ ॥

उसके क्रोधरहित होनेपरभी क्रोध मानलेना, वा स्वय क्रोधरहित नेपरभी उसके सन्मुख क्रोधकी आभा प्रगट करनी, प्रसन्न होनेपरभी ळ न देना, उसके कथन करतेहुए भी अकस्मात् उठकर चलदेना, और खेपनसे वारवार देखना ॥ ४२ ॥

आघट्टयति मन्त्राणि ब्रुवन् हास्यं प्रपद्यते ।
सम्भावयति दोषेण वृत्तिच्छेदं करोति च ॥ ४३ ॥

उसके गुप्तभेदको खोल देना, उसके बोलनेपर हँसदेना, सेवकपर दोषा- ापण करना तथा उसकी आजीविकाका विच्छेद करदेना [जुरमाना तन- वाह घटानी, वा मुअत्तल करदेना] ॥ ४३ ॥

साधूक्तमपि तद्वाक्यं समर्थयति चान्यथा ।
अपर्वणि कथाभङ्गं करोति विरसीभवन् ॥ ४४ ॥

ःसके अच्छे कथनकोभी अन्यथा समझना, विना पर्वकेभी कथाभङ्ग करदेना ाथा विरस रहना ॥ ४४ ॥

उपास्यमानः शयने सुप्तलक्ष्येण तिष्ठति ।
बलेन बोध्यमानोऽपि सुप्तवच्च विचेष्टते ॥ ४५ ॥

सोते समयसे वा देखनेकी सेजपर जागतेहुए सोनेकेसा आकार किये रहना और बलपूर्वक जगानेपरभी सोतेहुएकी समान रहना, यह विरक्त स्वामीके लक्षणहै ॥ ४५ ॥

इत्यादि ह्यनुरक्तस्य विरक्तस्य च लक्षणम् ।
रक्ताद्वृत्ति समीहेत विरक्तस्य विवर्जयेत् ॥ ४६ ॥

इसप्रकार यह स्वामीके अनुरक्त और विरक्तके लक्षण कहे, अनुरक्त स्वामीसे वृत्तिकी इच्छा करे और विरक्तको त्यागदे ॥ ४६ ॥

निर्गुण स्वाविमर्चारमापत्सु न परित्यजेत् ।
तत परवरो नास्ति य आपत्सूपतिष्ठति ॥ ४७ ॥

निर्गुणस्वामीकोभी आपत्तिके समय नहीं त्यागना चाहिये जो आपत्तिमे समय सहायता करताहै उससे अधिक और कोई नहीं है ॥ ४७ ॥

सुस्थवृत्तेषु सत्वाया नैव यान्त्यभिलक्ष्यताम् ।
विपत्सु धर्म्मधुर्य्याणा तेषां नामातिरिच्यते ॥ ४८ ॥

स्वस्थवृत्तिमें सत्वमादिकी परीक्षा नहीं होसक्ती विपत्तिकालमें धर्मकी धुर धारणकरनेवालेकि नामही रहजातेहैं ॥ ४८ ॥

श्लाघ्या चानन्दनीया च महतामुपकारिता ।
काले कल्याणमाधत्ते स्वल्पापि सुमहोदयम् ॥४९॥

बडे पुरुषोंकी उपकारिता श्लाघनीय और आनन्दनीय होतीहै और यह थोडाभी उपकार समयपर कल्याण और महान् उदय करताहै ॥ ४९ ॥

अकार्य्ये प्रतिषेधश्च कार्ये चैवानुवर्त्तनम् ।
सक्षेपादिति सद्वृत्त बन्धुमित्रानुजीविनाम् ॥ ५० ॥

अकार्यमे प्रवृत्त होनेपर निषेध करना और सुकार्यमें प्रवृत्ति करना, बन्धु मित्र और अनुजीवियोकी यह सक्षेपसे सद्वृत्तिहै ॥ ५० ॥

पानस्त्रीद्यूतगोष्ठीषु राजानमभितश्चराः ।
बोधयेयु प्रमाद्यन्तमुपायैर्नाडिकादिभि ॥ ५१ ॥

चरसेवक मद्यपान स्त्री द्यूत गोष्ठीमें प्रमादको प्राप्तहुए राजाको नाडिकादि [अब इतना समय बीता] इसप्रकार घडीक संकेतादि उपायोंसे सावधान करें ॥ ५१ ॥

राजान येऽभ्युपेक्षन्ते सम्भ्रमान विवर्त्मसु ।
ते गच्छन्त्यपरस्तात्मानः सह तेन पराभवम् ॥ ५२ ॥

जो कुमार्गमे पडते हुए राजाकी उपेक्षा करतेहै वह अकृतात्मा उस स्वामीके सहित तिरस्कारको प्राप्त होतेहै ॥ ५२ ॥

जयाज्ञापय जीवेति नाथ देवेति चादरात् ।
आज्ञामस्य प्रतीक्षन्तो भृत्याः कुर्युरुपासनम् ॥ ५३ ॥

जो भृत्य जय, आज्ञादीजिये, जय जीव, नाथ, देव, इसप्रकारसे स्वामीकी आज्ञा प्रतीक्षा करतेहुए उपासना करतेहै ॥ ५३ ॥

भर्तुश्चित्तानुवृत्तित्वं सद्वृत्तमनुजीविनाम् ।
रक्षांस्यपि हि गृह्यन्ते नित्यं च्छन्दानुवर्त्तिभिः॥५४॥

तथा स्वामीके चित्तके अनुसार वर्तते है यह अनुजीवियोकी सद्वृत्ति है, मनुष्यकी तो बातही क्याहै नित्यकी सेवासे राक्षसभी ग्रहण करलिये जाते है ॥ ५४ ॥

धीसत्वोद्योगयुक्तानां किं दुरापं महात्मनाम् ।
छन्दानुवर्त्तिनां लोके कः परः प्रियवादिनाम् ॥ ५५ ॥

बुद्धि, बल और उद्योगसे युक्त महात्माओको कौन वस्तु दुर्लभहै, तथा वशीभूत रहनेवाले और प्रियवादियोंका कौन दूसराहै कोई नही सब अपनेही है ॥ ५५ ॥

अलसस्याल्पतोपस्य निर्विद्यस्याकृतात्मनः ।
प्रदानकाले भवति मातापि हि पराङ्मुखी ॥ ५६ ॥

आलसी, थोडेहीमे सन्तोप करनेवाले, विद्यारहित अकृतात्मा पुरुषको दुग्धादि देनेमें माताभी पराङ्मुख होती है औरकी तो कौन कहे ॥५६॥

ये शूरा येऽपि विद्वांसो ये च सेवाविपश्चितः ।
तेपामेव विकाशिन्यो भोग्या नृपतिसम्पदः ॥ ५७ ॥

जो शूर, जो विद्वान और जो सेवाकरनेमें पडितहै उन्हीको राजाकी सम्पत्ति भोगके लिये प्राप्त होतीहै ॥ ५७ ॥

अप्रियाऽपि हि पथ्य स्यादितिवृद्धानुशासनम् ।
वृद्धानुशासने तिष्ठन् प्रियतामधिगच्छति ॥ ५८

वृद्धोंने यह बात कहीहै कि अप्रियवचनभी हितकारी होताहै, वृद्धोंकी आज्ञामें चलताहै यह प्रियताको प्राप्त होताहै ॥ ५८ ॥

आजीव्य सर्वभूतानां राजा पर्जन्यवद्भुवि ।
निराजीव्य त्यजन्त्येन शुष्कवृक्षमिवाण्डजा ॥५९

राजा मेघोंकी समान भूमिमें सब प्राणियोंको आजीविका देनेवाला होहै और जो आजीविका नहीं देता उसको सबकोई इसप्रकार त्यागकर जाते हैं जिसप्रकार पक्षी सूखे पेड़का त्यागदेते हैं ॥ ५९ ॥

कुल वृत्तञ्च शौर्य्यञ्च सर्व्वमेतन्न गण्यते ।
दुर्वृत्तेऽप्यकुलीनेऽपि जना दातारि रज्यते ॥ ६० ॥

कुल चरित्र, शूरता उसमें यह कुछभी नहीं गिनीजाती दुश्चरित्र और अकुलीन दाताममी यह प्राणी अनुराग करते हैं ॥ ६० ॥

लक्ष्मीरेवान्वयो लोके न लक्ष्म्या परतोऽन्वय ।
यस्मिन् कोपो यलक्ष्मीव तस्मिँल्लोकोऽनुगच्छति॥६१॥

लोकमें लक्ष्मीही वंश है लक्ष्मीके परत्व वंश नहीं है जिसमें कोप और लक्ष्मी है यह लोक उसीमें अनुराग करताहै ॥ ६१ ॥

उत्थिता एव पूज्यन्ते जना कार्य्यार्थिभिर्नरैः ।
शत्रुवत् पतित कोऽनुमन्यते मानवं पुन ॥ ६२ ॥

कार्यअभिलाषी पुरुषोंद्वारा उदयका प्राप्तहुए पुरुष पूजेजाते हैं और शत्रुकी समान पतितमनुष्यकी कौन सन्मना करताहै ॥ ६२ ॥

अर्थार्थी जीवलोकोऽय ज्वलन्तमुपसर्पति ।
क्षीणक्षीरां निराजीव्यां वत्सस्त्यजति मातरम् ॥६३॥

धनकी इच्छाकरनेवाला यह लोक मज्वलित पुरुषकीभी सेवा करताहै और दुग्धहीन जीविका न देनेवाली माताको बछडाभी त्यागदेताहै ॥ ६३ ॥

अहापयन्नृपः कालं भृत्यानामनुजीविनाम् ।
कर्म्मणामानुरूप्येण वृत्तिं समनुकल्पयेत् ॥ ६४ ॥

राजाको उचितहै कि, सेवक अनुजीवियोकी वृत्ति दानका समय न व्यतीत करै उनके कर्मके समान वृत्तिकी कल्पना न करै ॥ ६४ ॥

काले स्थाने च पात्रे च नहि वृत्तिं विलोपयेत् ।
एतद्वृत्तिविलोपेन राजा भवति गर्हितः ॥ ६५ ॥

काल स्थान और पात्रमे वृत्तिका कभी लोप नकरै इस वृत्तिके लोपसे राजा की निन्दा होतीहै ॥ ६५ ॥

अपात्रवर्षणं जातु न कुर्य्यात्सद्भिर्गर्हितम् ।
अपात्रवर्षणादन्यत्किं स्यात्कोषक्षयादृते ॥ ६६ ॥

सत्पुरुषोसे निन्दित अपात्रमे राजा कभी दान न करै, अपात्रमें दान करनेसे कोशक्षयके सिवाय और क्या लाभहै ॥ ६६ ॥

कुलं विद्यां श्रुतं शौर्य्यं सौशील्यं भूतपूर्वताम् ।
वयोऽवस्थाश्च संप्रेक्ष्य आद्रियेत महात्मवान् ॥ ६७ ॥

कुल, विद्या, शास्त्र, शूरता, सुशलिता उसके पूर्व चारित्र वा कुल, वय, अवस्थाको देखकर महात्माको आदर करना चाहिये ॥ ६७ ॥

कुलीनान्नावमन्येत सम्यग्वृत्तान्मनस्विनः ।
त्यजन्त्येतेवमन्तारं घ्नन्ति वा मानहेतुना ॥ ६८ ॥

बुद्धिमान्को उचितहै कि, भलीवृत्तिवाले कुलीनपुरुषोका कभी तिरस्कार न करै यह तिरस्कार करनेवालेको त्यागदेते है वा मानके कारण मार-डालतेहै ॥ ६८ ॥

गुणैरुदारैः सयुक्तान् योजयेन्मध्यमाधमान् ।
महत्त्वं प्राप्नुवन्तस्ते वर्द्धयन्ति नरेश्वरम् ॥ ६९

उदारगुणसे संयुक्त मध्यम और अधम पुरुषोंकी उन्नति चाहिये यह महत्त्वको प्राप्तहोकर राजाकी वृद्धि करते हैं ॥ ६९ ॥

उत्तमाभिजनोपेतान् न नीचैः सह वर्द्धयेत् ।
कृशोऽपि हि विवेकज्ञो याति सश्रयणीयताम् ॥ ७०

उत्तमगणवालोंकी नीचगुणवालेजनोंकेसाथ वृद्धि नकरे, कृशताको प्राप्तभी विवेकीपुरुष राजाके आश्रयको प्राप्तहोताहै इसमें सन्देह नहीं॥

निरालोके हि लोकेऽस्मिन्नासते तत्र पण्डिताः ।
जात्यस्य हि मणेर्यत्र काचेन समता मता ॥ ७

अन्धकारवाले अज्ञानीके समीप पण्डितजन स्थिति नहीं करते हैं जातिसहमणि और कांचका समान वर्तान किया जाता है ॥ ७१ ॥

विश्राम्यन्ति महात्मानो यत्र कल्पतराविव ।
स श्लाघ्य जीवति श्रीमान् सत्य भोगफला श्रिय ॥ ७

जिस राजामें सज्जनपुरुष कल्पवृक्षके समान विश्राम पाते हैं वह मान् राजा बड़ाईको प्राप्त होता हुआ जीताहै और उसे सत्यस्वरूप भोग्यपफलकी करनेवाली होतीहै ॥ ७२ ॥

लक्ष्म्या लक्ष्मीवतां लोके विकासिन्या च किन्तय
बन्धुभिश्च सुहृद्भिश्च विश्रब्धं या न भुज्यते ॥ ७

संसारमें उस लक्ष्मीवालेकी प्रकाशित लक्ष्मीसे क्या फल है जि बन्धु और सुहृज्जन निष्कण्टक भोगनहींसकते ॥ ७३ ॥

आपद्द्वारेषु सर्वेषु कुर्य्यादाप्तान् परीक्षितान् ।
आददीत धनं तेभ्यो भास्वानस्रैरिवोदकम् ॥ ७४

जाको उचित है कि, सम्पूर्ण आपत्तिके द्वारमें परीक्षा किये आप्त
को नियुक्त करै, और जिसप्रकार सूर्य अपनी किरणोंसे जल ग्रहण
ा है, इसप्रकार उनसे थोडा थोडा धन ग्रहण करै ॥ ७४ ॥

अभ्यस्तकर्म्मणस्तज्ज्ञान् शुचीन् सुज्ञानसम्मतान् ।
कुर्य्यादुद्योगसम्पन्नानध्यक्षान् सर्वकर्म्मसु ॥ ७५ ॥

सम्पूर्ण राजकाजमे उस २ कर्मके अभ्यासी उसको विशेष जाननेवाले शुचि
रहित अच्छे ज्ञानमे सम्मत उद्योगसे सम्पन्न अध्यक्षोको नियत करै ७५॥

यो यद्वस्तु विजानाति तं तत्र विनियोजयेत् ।
अशेषविषयप्राप्ताविन्द्रियार्थ इवेन्द्रियम् ॥ ७६ ॥

जो जिस कार्यको जानताहो उसको उसी कार्यमें नियुक्त करै सम्पूर्णवि-
को प्राप्तहोनेवाली इन्द्रिया जैसे अपने २ विषयकोही प्राप्त होतीहै ॥७६॥

कोष्ठागारेऽभियुक्तः स्यात्तदायत्तं हि जीवितम् ।
नात्ययश्च व्ययं कुर्य्यात्प्रत्यवेक्षेत चान्वहम् ॥७७॥

जो कोष्ठागार (खजाना) मे नियुक्त है जीवन उसीके अधीनहै उस-
ो निरन्तर परीक्षा करतारहै और अधिक व्यय न करै ॥ ७७ ॥

कृषिर्वणिक्पथो दुर्गं सेतुः कुञ्जरबन्धनम् ।
खन्याकरधनादानं शून्यानाञ्च निवेशनम् ॥ ७८ ॥

कृषि, व्यापारमार्ग, किला सेतु हस्तिबन्धनस्थान, खानसे मणिरत्नधनका
आगम, शून्यस्थानोंका वसाना ॥ ७८ ॥

अष्टवर्गमिमं साधुस्वच्छवृत्तो विवर्द्धयेत् ।
जीवनार्थमिहाजीव्यैः कर्त्तव्यः करणाधिकैः ॥७९॥

इन आठ वर्गोको साधुतापूर्वक स्वच्छ वृत्तिसे बढावे और सेवक आदिके
आजीवनके निमित्त अनेक कार्यालय कल्पना करै ॥ ७९ ॥

तथा यया प्रवर्त्तेत वृत्त्या क्षीणोऽपि पार्थिवः ।

तस्या तस्या न सरोध कुर्य्यात्पण्योपजीविनाम्॥ ८०

क्षीमभनवाला भी राजा इस प्रकारकी वृत्तिसे वर्ते कि व्यापारसे भाग विकावालोंका उस उस कार्यमें किसीप्रकार विघ्न न हो ॥ ८० ॥

यथा रक्षेन्न निपुण सस्य कण्टकिशाखया ।

फलाय लगुड कार्य्यस्तद्वद्भोग्यमिदं जगत् ॥ ८१

जिसप्रकार चतुर पुरुष कांटोंकी बाढसे खेतीकी रक्षा करताहै और फलप्राप्तिके निमित्त एक लकड़ी रखताहै इसप्रकार राजाको इस जगत्‌की रक्षा और भोग करना चाहिये ॥ ८१ ॥

आयुक्तकेभ्यश्चौरेभ्य परेभ्यो राजवल्लभात् ।

पृथिवीपतिलोभाच्च प्रजाना पञ्चधा भयम् ॥ ८२ ॥

राजकर्मचारी चोर, शत्रु राजाके प्रियवर्ग और लोभीराजा इन पांचोंसे प्रजाको भय रहताहै ॥ ८२ ॥

पञ्चप्रकारमप्येवदपोह्य नृपतेर्भयम् ।

आददीत धन काले त्रिवर्गपरिवृद्धये ॥ ८३ ॥

राजाको यह पांचों प्रकारका भय दूर करना चाहिये और धर्म अर्थ कामकी वृद्धिके लिये समयपर प्रजासे धनग्रहण करना चाहिये ॥ ८३ ॥

यथा गौः पाल्यते काले दुह्यते च तथा प्रजा ।

सिच्यते चीयते चैव लता पुष्पफलार्थिना ॥ ८४ ॥

जैसे गौ पाली जातीहै और समयपर दूध देतीहै इसीप्रकार पालित हुई प्रजा समयपर धन देतीहै जैसे पुष्पफलकी इच्छावाले लताको सींचते बढाते पीछे समयपर फल फूल पातेहैं ॥ ८४ ॥

आस्वादयद्रुपचितान् साधु दुष्टव्रणानिव ।

आयुक्तास्ते च वर्त्तेरन् वह्नाविव महीपतौ ॥ ८५ ॥

दुष्टव्रणोंकी समान पकेहुए धनसे समृद्ध पुरुषोंको निचोडके अन्यथ

दुष्टस्वभाववाले अग्निके समान राजामे वर्ताव करते है ॥ ८५ ॥

स्वल्पमप्यपकुर्वन्ति ये पापाः पृथिवीपतौ ।
ते वह्नाविव दह्यन्ते पतङ्गा मूढचेतसः ॥ ८६ ॥

जो पापात्मा राजाका थोडा भी अपकार करते हैं वे मूढबुद्धि अग्निमे तङ्के समान भस्म होजातेहै ॥ ८६ ॥

संवर्द्धयेत्सदा कोषमाप्तैस्तज्ज्ञैरधिष्ठितम् ।
काले चास्य व्ययं कुर्य्यात्त्रिवर्गपरिवृद्धये ॥ ८७ ॥

आप्त तथा उस कार्यके ज्ञाता पुरुषोंसे खजानेकी सदा वृद्धि करै और र्म अर्थ कामकी वृद्धिके लिये समयपर व्यय करै ॥ ८७ ॥

धर्म्मार्थे क्षीणकोषस्य कृशत्वमपि शोभते ।
सुरैः पीतावशेषस्य शरद्धिमरुचेरिव ॥ ८८ ॥

यदि धर्मके निमित्त कोष क्षीण होगया हो तो उस क्षीणकोषकी भी शोभा है जिसप्रकार शरद्में देवताओसे अमृत पीलिये जानेसे भी क्षीण हुए चन्द्रमाकी शोभा होतीहै ॥ ८८ ॥

बृहस्पतेरविश्वासा इति शास्त्रार्थनिश्चयः ।
अविश्वासी तथा च स्याद्यथाच व्यवहारवान् ॥ ८९ ॥

बृहस्पतिका भी विश्वास न करै यह शास्त्रके अर्थका निश्चय है पर इतना अविश्वासी हो जितना कि, व्यवहारवाले पुरुष होतेहै ॥ ८९ ॥

विश्वासयेदविश्वस्तान् विश्वस्तान्नातिविश्वसेत् ।
यस्मिन्विश्वासमायाति विभूतेः पात्रमेव सः ॥ ९० ॥

अविश्वासी पुरुषोको विश्वास दिलावै और विश्वासियोपर भी अधिक विश्वास न करै जिसपर राजाका विश्वास होजाताहै वही ऐश्वर्यका पात्र हो जाताहै ॥ ९० ॥

प्रादुर्भवन्त्यर्थसमं यस्माच्चित्तान्यनुक्षणम् ।

तस्माद्योगीव सततं तानि पश्येत्समाहित ॥ ९१ ॥

जिसकारण कि अर्थके साथही निरन्तर सिद्धोंका नवीन प्रादुर्भाव होता है इसकारण योगीके समान सावधान होकर निरन्तर चित्तके विकारोंको देखता रहे ॥ ९१ ॥

अनुगतपरितोषितानुजीवीमधुरवचभ्मरितानुरक्तलोक ।
सुनिपुणपरमाप्तसक्तमन्त्रोमभवतिनृप सुचिरंस्वीमरश्मि ९२

इति श्रीकामन्दकीये नीतिसारे स्वाम्यनुजीविवृत्तं नाम पञ्चम सर्ग ॥ ५ ॥

जिसने अनुगामी और अनुजीवियोंको सन्तुष्ट करदियाहै तथा मधुर वचनोंसे लोकोंको रंजित कियाहै और चतुर तथा आप्तपुरुषोंकी आज्ञा मानी है वह राजा सूर्यके समान प्रभावशाली होकर चिरकालतक राज्य करताहै ॥९२॥

इति श्रीकामन्दकीय नीतिसार भाषाटीकायां स्वाम्यनुजीविवृत्तं नाम पञ्चम सर्ग ॥ ५ ॥

षष्ठ सर्ग ६

लोके वेदे च कुशल कुशलै परिवारित ।
आद्दतश्चिन्तयेद्राज्य स बाह्याभ्यन्तर तथा ॥ १ ॥

लोक और वेदमें कुशल कुशलजनोंसे परिवारित हुआ तथा आदरको प्राप्तहुआ राजा बाहर और भीतर राज्यकी चिन्ता रक्खे ॥ १ ॥

आभ्यन्तर शरीर स्वं बाह्य राष्ट्रमुदाहृतम् ।
अन्योन्याधारसम्बन्धादेकमेवदमिष्यते ॥ २ ॥

इसमें आभ्यन्तर अपना शरीरहै और बाहरी राज्य कहाहै परस्पर आधारके सम्बन्धसे यह दोनों एकही कहे हैं ॥ २ ॥

राज्याङ्गनान्तु सर्वेषां राष्ट्राद्भवति सम्भवः ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन राजा राष्ट्रं प्रसाधयेत् ॥ ३ ॥

राज्यसेंही सम्पूर्ण राज्यके अगोका सम्भव होताहै, इससे सब प्रकारके ासे राजा राज्यकी रक्षाकरे ॥ ३ ॥

लोकानुग्रहमन्विच्छन् शरीरमनुपालयेत् ।
राज्ञः संशरणं धाम शरीरं धर्म्मसाधनम् ॥ ४ ॥

और लोकके अनुग्रहकी इच्छा करताहुआ अपने शरीरकी रक्षाकरै, ा राजाके आश्रयका स्थान और धर्मका साधन शरीर है ॥ ४ ॥

धर्म्यामारेभिरे हिंसामृषिकल्पा महीभुजः ।
तस्मादसाधून् पापिष्ठान्निघ्नन्पापैर्न लिप्यते ॥ ५ ॥

ऋषितुल्य राजाओंने धर्मसम्बन्धिनी हिंसामें दोष नहीं कहाहै, इस रण असाधु पापात्माओंके दण्ड देनेसे राजा पापमें लिप्त नहीं होताहै॥५॥

धर्म्मसंरक्षणपरो धर्म्मेणार्थं विवर्द्धयन् ।
ये ये प्रजा प्रबाधेरंस्ताञ्छिंष्याच्च महीपतिः ॥ ६ ॥

धर्मकी रक्षामें तत्पर धर्मसे ही अर्थको बढातेहुए राजाको उचित है के, जो जो प्रजामें बाध दे उन उनका उच्छेद वा शिक्षा करे ॥ ६ ॥

यमार्य्याः क्रियमाणं हि शंसन्त्यागमवेदिनः ।
स धर्म्मोयं विगर्हन्ति तमधर्म्मं प्रचक्षते ॥ ७ ॥

शास्त्रके ज्ञाता श्रेष्ठपुरुष जिस कर्मकी बडाई करतेहै, वह धर्म है और जिसकी निन्दा करते है वह अधर्म है ॥ ७ ॥

धर्म्माधर्म्मौ विजानन् हि शासनेऽभिरतः सताम् ।
प्रजां रक्षेन्नृपः साधु हन्याच्च परिपन्थिनः ॥ ८ ॥

राजा धर्म अधर्मको जानताहुआ सत्पुरुषोंके मार्गमें स्थितहुआ, भली-प्रकार प्रजाकी रक्षाकरे और विद्रोहियोंको नष्टकरै ॥ ८ ॥

राज्योपघातं कुर्वाणा ये पापा राजवल्लभाः ।
एकैकशः संहता वा दूष्यांस्तान् परिचक्षते ॥ ९ ॥

जो पापी राजप्रियपुरुष राज्यका घात करतेहैं एक २ वा मिलेहुए उन सबको दूषणीय कहाहै ॥ ९ ॥

दूष्यानुपांशु दण्डेन हन्याद्राजाऽविलम्बितम् ।
अदृश्य वा प्रकाशं वा लोकविद्वेषमागतान् ॥ १० ॥

राजा शीघ्रही ऐसे दूष्यपुरुषोंको दण्डसे नष्ट करे और प्रगट वा अप्रगट लोकोंका विद्वेष करनेवाले ॥ १० ॥

राजा रहसि दूष्यं हि दर्शनायोपमन्त्रयेत् ।
गूढशस्त्रा विशेयुस्तत्पश्चादासन्निता नराः ॥ ११ ॥

दूष्यपुरुषोंको राजा एकान्तमें देखनेकी इच्छाकरे और उनके देखनेवाले पुरुष शस्त्र छिपाकर उनके पीछे गमन करें और उनकी परीक्षा करें ॥ ११ ॥

विश्वस्तांस्तान्विचिन्वीयुर्वा रथ्या कक्षान्तरं गतान् ।
तं शस्त्रग्राहका ब्रूयुः प्रयुक्ता स्म इति स्फुटम् ॥ १२ ॥

और विश्वास दिखाकर उनको खोजकरें और दूसरे स्थानमें युद्धस्थलमें स्थित होकर वे शस्त्रके ग्रहण करनेवाले कहैं कि हम तुम्हारे नाशकरनेको नियुक्त हुए हैं तुम्हारा यह अपराध है इसप्रकार प्रगट कहैं ॥ १२ ॥

इति दूष्यांस्तु सदूष्य प्रजानामभिवृद्धये ।
विनयन् प्रियउत्कर्षं राजशल्यं समुद्धरेत् ॥ १३ ॥

इसप्रकार प्रजाकी वृद्धिके निमित्त दूषित पुरुषोंके दोषकी घोषणा करके नष्ट करे और विनीत प्रियजनकी उत्कर्षता साधन करताहुआ राज्यके कण्टकोंका नाश करै ॥ १३ ॥

यथा बीजाङ्कुरः सूक्ष्मः परिपुष्टोऽभिरक्षितः ।
काले फलाय भवति साधु तद्वदपि प्रजा ॥ १४ ॥

जैसे सूक्ष्म बीजांकुरभी रक्षाकरनेसे पुष्ट होजाता है और समयपर फल देता है इसीप्रकार रक्षित प्रजाभी समयपर फल देती है ॥ १४ ॥

उद्वेजयति तीक्ष्णेन मृदुना परिभूयते ।
तस्माद्यथार्हतो दण्डं नयेत्पक्षमनाश्रितः ॥ १५ ॥

इति श्रीकामन्दकीये नीतिसारे कण्टकशोधनं नाम
षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

तीक्ष्ण दण्डसे प्रजा उद्वेगको प्राप्त होती है मृदुदण्डसे तिरस्कार करनेलगती है, इसकारण यथा अपराध मध्यमा वृत्तिसे किसीका पक्ष न लेता हुआ राजा दण्डविधान करै ॥ १५ ॥

इति श्रीकामन्दकीये नीतिसारे भाषाटीकायां कण्टकशोधनं नाम
षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः ७



प्रजात्मश्रेयसे राजा कुर्वीतात्मजरक्षणम् ।
लोलुभ्यमानास्तेऽर्थेषु हन्युरेनमरक्षिताः ॥ १ ॥

प्रजा और अपने कल्याणके निमित्त राजा अपने पुत्रकी रक्षा करै, यदि वे पुत्रादि रक्षित नरक्खेजाँय तो वही अर्थोंमें लुब्ध होकर राजाको मारदेते है ॥ १ ॥

राजपुत्रा मदोन्मत्ता गजा इव निरङ्कुशाः ।
भ्रातरं वा विनिघ्नन्ति पितरं वाऽभिमानिनः ॥ २ ॥

मदोन्मत्त हुए राजपुत्र निरंकुश हाथीके समान अभिमानी होकर भ्राता वा पिताको मारडालतेहै ॥ २ ॥

राजपुत्रैर्मदोपेतैः प्रार्थ्यमानमितस्ततः ।
दुःखेन रक्ष्यते राज्यं व्याघ्राघ्रातमिवामिषम् ॥ ३ ॥

मदोन्मत्त राजपुत्रोंकी अनेक विषयोंकी प्रार्थनासे राज्यकी रक्षा व कठिनाईसे होती है जैसे व्याघ्रसे सूंघे मांसकी व्यापक होते रक्षा न होसकती ॥ ३ ॥

रक्ष्यमाणा यदि च्छिद्रं कथञ्चित् प्राप्नुवन्ति ते ।
सिंहशावा इव घ्नन्ति रक्षितारमसंशयम् ॥ ४ ॥

रक्षित हुएभी वे यदि किसीप्रकारसे किसी छिद्रको देखलेते हैं सिंहके बच्चेकी समान निःसन्देह अपने रक्षकको भी मारडालतेहैं ॥ ४

विनयोपग्रहान्भूत्यै कुर्व्वीत नृपतिः सुतान् ।
अविनीतकुमारं हि कुलमाशु विनश्यति ॥ ५ ॥

राजाको उचित है कि अपने भर्त्योंद्वारा राजपुत्रोंको विनय सिखावै यदि कुमार विनीत न होगा तो वह कुल शीघ्रही नष्ट होजायगा ॥ ५

विनीतमौरसं पुत्रं यौवराज्येऽभिषेचयेत् ।
दुष्टं गजमिवोद्वृत्तं कुर्व्वीत सुखबन्धनम् ॥ ६ ॥

जब अपने औरस पुत्रको जो सवर्ण भार्यासे उत्पन्न हुआ हो राज युवराजमें अभिषेक करै यदि दुर्विनीतहो तो जिसप्रकार दुष्टहाथीको बन्धनमें करतेहैं इसप्रकार उसको सुखबन्धनमें डाले जिससे कठिनाई न माने ६॥

राजपुत्रं सुदुर्वृत्तं परित्यागं हि नार्हति ।
क्लिश्यमानः स पितरं परानाश्रित्य हन्ति हि ॥ ७ ॥

दुर्वृत्तिवाले राजपुत्रका भी त्याग नहीं करना चाहिये यदि उसे निकालाजायगा तो वह क्लेशित हो शत्रुका आश्रय कर पिताको मारदेगा ॥७॥

व्यसने सज्जमानं हि क्लेशयेद्व्यसनाश्रयैः ।
तथा च क्लेशयेदेनं यथा स्यात्पितृगोचरः ॥ ८ ॥

जब वह व्यसनमें पड़ा हो तो व्यसनके आश्रयीभूत पुरुषोंद्वारा इसको क्लेशितकरावे और इसको इसप्रकारसे क्लेश दे जिसप्रकार यह पिताकी

दृष्टिगोचर हो अर्थात् पिताकी सहायता क्लेश दूर होनेको चाहै ॥ ८ ॥

यानै शय्यासने पाने भोज्ये वस्त्रे विभूषणे ।
सर्व्वत्रैवाप्रमत्तः स्याद्वर्ज्जेत विषदूषितम् ॥ ९ ॥

सवारी, शय्या, आसन, पान, भोजन, वस्त्र, भूषण इतनी वस्तुओंके व्यवहारमे राजा सदा अप्रमत्त रहै । इनमे विष मिलादियाजाताहै इसलिये पहँचानकर विषदूषितको त्यागदे ॥ ९ ॥

विषघ्नैरुदकैः स्नातो विषघ्नमणिभूषितः ।
परीक्षितं समश्नीयाज्जाङ्गलविद्भिषग्वृतः ॥ १० ॥

विषके दूरकरनेवाले जलोसे प्रतिदिन स्नानकरे विषघ्नमणिसे भूषित हुआ राजा जाङ्गलविषके जाननेवाले वैद्योंसे युक्तहुआ परीक्षा करके भोजन करे ॥ १० ॥

भृङ्गराजः शुकश्चैव शारिका चेति पक्षिणः ।
क्रोशन्ति भृशमुद्विग्ना विषपन्नगदर्शनात् ॥ ११ ॥

भृङ्गराज (पक्षिविशेष) तोता,मैना यह पक्षी विष और सर्पको देखकर अत्यन्त उद्विग्न होकर चिल्लाने लगतेहैं ॥ ११ ॥

चकोरस्य विरज्येते नयने विषदर्शनात् ।
सुव्यक्तं माद्यति क्रौञ्चो म्रियते कोकिलःकिल ॥ १२ ॥

विषदर्शनसे चकोरके नेत्र विशेष लाल होजातेहैं, क्रौञ्च प्रगटही मत्त होजाताहै, और कोकिल विषदर्शनसे मरजाताहै ॥ १२ ॥

नित्यं जीवस्य च ग्लानिर्जायते विषदर्शनात् ।
एषामन्यतमेनापि समश्नीयात्परीक्षितम् ॥ १३ ॥

और नित्यही विषदर्शनसे जीवमात्रको ग्लानि होजातीहै, इनके सिवाय अन्य उपायोंसेभी परीक्षा करके भोजन करे ॥ १३ ॥

मयूरपृषतोत्सर्गे न भवन्ति भुजङ्गमाः ।

तस्मान्मयूरपृषतो भवने नित्यमुत्सृजेत् ॥ १४ ॥

मोरकी पीठके पख डालनेसे घरमें सर्प नहीं रहते इससे घरमें नि मोरपख पड रहने चाहिये ॥ १४ ॥

भोज्यमन्न परीक्षार्थं प्रदद्यात्पूर्वमग्नये ।
वयोभ्यश्च ततो दद्यात्तत्र लिङ्गानि लक्षयेत् ॥ १५

भोजनयोग्य अन्नकी परीक्षा करनेके निमित्त पहले अग्निको दे, और फि पक्षियोंको देकर उनकी चेष्टा देखे ॥ १५ ॥

धूमार्चिर्नीलता वह्नेः शब्दस्फोटश्च जायते ।
अन्नेन विषदिग्धेन वयसां मरणम्भवेत् ॥ १६ ॥

यदि आगसे नीला धुआँ निकले और फूटनेके समान शब्दहो भी विषदग्ध अन्नसे पक्षी मरजाँय तो विषदग्ध अन्न जाने ॥ १६ ॥

अस्विन्नता मादकत्वमाशु शल्य विवर्णता ।
अन्नस्य विषदिग्धस्य सयोष्मा स्निग्धमेचक ॥१७॥

विषदूषित अन्नमें विरसता मादकता तत्काल शल्यका करदना, विव र्णता गरमी स्याहीलिये चिकनाई होतीहै ॥ १७ ॥

व्यञ्जनस्याशु शुष्कत्व क्वथने श्यामफेनता ।
गन्धस्पर्शरसाश्चैव नश्यन्ति विषदूषणात् ॥ १८ ॥

व्यञ्जनका शीघ्रही सूखजाना, पकानेमें काले फेन उठना गन्ध स्पर्श, रस यह समही विषदूषित अन्नके नष्ट होजातेहैं ॥ १८ ॥

छायाअतिरिक्ता हीना वा स्यादन्ने विषदूषिते ।
दृश्यते राजिरूर्ध्वा च फेनमण्डलमेव च ॥ १९ ॥

विषदूषित अन्नकी छाया भार अतिरिक्त वा हीन होती है उसकी छाया ऊर्ध्वगामिनी होतीहै और फेन बहुत उत्पन्न है ॥ १९ ॥

:य नीला पयसश्च ताम्रा मद्यस्य तोयस्य च कोकिलाभा ।
सासरन्ध्राविपदूषितस्य मध्ये भवत्यूर्ध्वगता च लेखा॥ २०॥

विपदूषितरसकी लेखा नीली, दूधकी ताम्रवर्णकी, मद्य और जलकी केलाके वर्णकी, तथा श्यामवर्णकी मध्यमे छिद्रवाली ऊर्ध्वगामिनी ा होतीहै ॥ २० ॥

र्द्रस्य सर्वस्य भवेत्तु सद्यः प्रम्लानभावो विपदूषितस्य ।
कं विना क्राथविनीतभावःसश्यामता चेतिवदन्तितज्ज्ञाः २१

विपदूषित सम्पूर्ण आर्द्रवस्तु शीघ्रही मलीन होजातीहै, और इसके जा- नवाले कहतेहै कि, पाकके विनाही वह क्राथके समान सिकुडजाती है, र उन वस्तुओमे श्यामता आजाती है ॥ २१ ॥

ुष्कस्य सर्वस्य विपोपदेहाद्विशीर्णता वाऽशुचिवर्णता च ।
रं मृदु स्यान्मृदुनः खरत्वं वदन्ति के चाल्पकजन्तुघातम् २२

और सम्पूर्ण सूखी वस्तु विषके प्रयोगसे बिखरजाती वा अपवित्र रग- ाली अर्थात् कुरगकी कठिन तीक्ष्णवस्तु कोमल होजाती और मृदु वस्तुमें कठिनता आतीहै, और जलमेंके छोटे २ जीव मरजातेहै ॥ २२ ॥

प्रावारास्तरणानाञ्च श्याममण्डलकीर्णता ।
तन्तूनां पक्ष्मणां लोम्नां स्याद्ध्वंसश्च विषाश्रयात्॥ २३॥

ओढने बिछौनेके कपडोमें विषप्रयोग होनेसे उसमे काले काले मण्डल धोरे २ होजातेहै, तथा तन्तुडोरे पख और ऊनमे विषप्रयोग होनेसे यह ध्वस होजातेहै ॥ २३ ॥

लोहानाञ्च मणीनाञ्च मलपङ्कोपदिग्धता ।
प्रभावस्नेहगुरुता वर्णस्पर्शवधस्तथा ॥ २४ ॥

लोह और मणिमे विषप्रयोग होनेसे उनपर मैला पक होजाताहै, तथा प्रभाव, स्नेह, गुरुता, वर्ण और स्पर्श इन सबका नाश होताहै ॥ २४ ॥

मुखस्य श्यामवर्णत्व त्वग्भेदो जृम्भण मुहु ।
स्खलन वेपथु स्वेद आवेगो दिग्विलोकनम् ॥ २५

विप देनवालोंके मुखका शामवर्ण त्वचाभेद, वारवार जैंभाईलेना स्खलि होना पसीना आना शरीर कॉपना, वेग होना इधरउधर दिशाओं देखना ॥ २५ ॥

स्वकर्म्मणि स्वभूमौ स्यादनवस्थानमेव च ।
लिङ्गान्येतानि निपुणो लक्षयेद्विपदायिनाम् ॥ २६

अपन कार्ममें न लगना अपने आसनमें न बैठसकना, वारवार सट यह सब लक्षण विपदेनेवालोंके होते हैं इनको बुद्धिमान् देखले ॥ २६

औपधानि च सर्वाणि पान पानीयमेव च ।
तत्कल्पकैः समास्वाद्य भक्षीयाद्भोजनानि च ॥२७

सम्पूर्ण औषधी पीनेके जल उनके बनानेवालोंको खवाकर फिर भोजन करे ॥ २७ ॥

प्रसाधनादि यत्किंचित्तत्सर्व परिचारिका ।
उपनिन्युर्नरेन्द्राय सुपरीक्षितमुद्रितम् ॥ २८ ॥

और जितने ओढने बिछौना, पहरने धारण करनेकी सामग्रीहैं वह राजाके सेवक परीक्षा करके मुहर करके राजाके निमित्त दें ॥ २८ ॥

परस्मादागत यच्च तत्सर्वञ्च परीक्षयेत् ।
सदा स्वेभ्य परेभ्यश्च रक्ष्यो राजाऽभिरक्षिभि ॥२९

जितनी वस्तु दूसरोंसे आईहों तो उन सबकी परीक्षा करे रक्षा करने वाले पुरुषोंको राजाकी सदा अपने और परायोंसे रक्षा करनी चाहिये॥२९

यान वाहनमारोहेज्ज्ञात ज्ञातोपपादितम् ।
अविज्ञातेन मार्गेण सङ्कुलेन च न व्रजेत् ॥ ३० ॥

अच्छीप्रकार परीक्षा करके और उसके ज्ञाताओंसे परीक्षा कराकर
ारीपर बैठे विना जाने तथा सङ्कटके मार्गकी ओरको गमन न करै॥ ३०॥

दीक्षितादृष्टकर्म्माणमाप्तं वंशक्रमागतम् ।
संविभक्तञ्च कुर्वीत जनमासन्नवर्तिनम् ॥ ३१ ॥

भलीप्रकार शीलस्वभाव देखेहुए तथा कर्मोंमे परीक्षा कियेहुए वंशपर-
ासे आये हुए शोभित जनको अपने समीप रक्खे॥ ३१ ॥

अधार्मिकांश्च क्रूरांश्च दृष्टदोषान्निराकृतान् ।
परेभ्योऽभ्यागतांश्चैव दूरादेतान् विवर्जयेत् ॥ ३२ ॥

अधर्मी, क्रूर, दोष देखकर तिरस्कार कियेहुए, शत्रुओंके समीपसे आये
ुए इन पुरुषोंको दूरसेही त्यागदे ॥ ३२ ॥

महावातसमुद्भूतामपरीक्षितनाविकाम् ।
अन्यनौ प्रतिबद्धां वा नोपेयान्नावमातुराम् ॥ ३३ ॥

जिससमय पवन अधिक चलरहाहो, जब विना परीक्षा वाले नाविक खेने
वाले हों तथा दूसरेकी नौकाके समीप बँधी हुई नावमे आतुर होकर न चढे ३३

परितापिषु वासरेषु पश्यंस्तटलेखास्थितमात्मसैन्यचक्रम् ।
शुचिशोधितनक्रमीनजालंव्यवगाहेतजलंसुहृत्समेतः ॥ ३४ ॥

अधिक गरमीके दिनोंमे किनारेपर अपनी सेनाके लोगोंको नियत करके
उनके देखतेहुए जलाशयको नाके और मच्छोंसे शोधितकर सुहृज्जनोंके
संग नौकापर चढै ॥ ३४ ॥

गहनानि विवर्ज्जयन् विशुद्धं बहिरुद्यानवनं समभ्युपेयात् ।
विहरन्मधुरं वयोऽनुरूपं न च मायोद्विषयोपभोगरागात्॥ ३५॥

गहनस्थानोंको त्यागकर विशुद्ध बगीचोंमें सैरके निमित्त गमन करै और
अपनी वयके समान जनोंमें शनै २ विहार करता हुआ विषय भोग रागरगमें
मत्त न होजाय ॥ ३५ ॥

सुविनीतगुवेगपृष्ठयान सुखगम्याशुचिवाञ्च लक्ष्यसिद्धये ।
सुपरीक्षितरक्षितान्तसीमा लघुकोष्ठस्तु मृगाटवीमुपेयात् ३६

जब मृगयाके निमित्त गमन करे तो बड़ शिक्षित शीघ्रगामी घाड़ आदि चढे जा सुगमसे लगाय और लक्ष्यकी सिद्धिमें चतुरहो उसपर चढ़ गमन करै और जिधर जाना है उसकी सीमाको रक्षित और परीक्षित कर लघु सामर्थ्यके साथ मगयाके निमित्त गमनकरै ॥ ३६ ॥

कारयेद्ब्वनशोधनमादौ मातुरन्तिकमपि प्रविविक्षुः ।
आप्तशस्त्र्यनुगत प्रविशेच्च सकटेषु गहनेषु न विष्ठेत् ॥ ३७

पहली पहल भवनका शोधन कराले चाहें अपनी माताहीके सम जाना हो पीछे आप्त शस्त्रधारी पुरुषोंसे अनुगत हुआ प्रवेशकरै, सं सा गहनस्थानमें स्थिति न करै ॥ ३७ ॥

पाशूत्कराकर्षिणि वाति वाते ससक्तधाराजलदे च मेघे ।
अत्यातपे चापितथाऽन्धकारेस्वस्थरतुसन्नकचिदभ्युपेयात् ३

जिस समय धूरी उठाये हुए पवन चलरही हो और मेघ मूसला जल बरसताहो तथा बड़ी गरमी वा महाअन्धकार हो तो स्वस्थतामें भ ऐसे समय न गमन करै ॥ ३८ ॥

निर्गमे च प्रवेशे च राजमार्गे समन्ततः ।
प्रोत्सारितजन गच्छेत्सम्यगाविष्कृतोन्नति ॥ ३९

जिससमय कहींसे आनाहो वा कहीं जाना हो तो सब ओरसे रा मार्गको स्वच्छ कर मनुष्योंका गमन आगम न रोककर उन्नति (शान) सायमें गमन करै ॥ ३९ ॥

यात्रोत्सवसमाजेषु जलसम्बाधशालिन ।
प्रदेशाश्वावगाहेत नातिवेलञ्च सम्प्लवेत् ॥ ४० ॥

यात्रा उत्सव समाजोंमें तथा जलके समागममें बहुत करके न जा

और न अधिक समय लगावे अथवा कुसमय भ्रमण न करै ॥ ४० ॥

निषेवितो वर्षवरैः कञ्चुकोष्णीषधारिभिः ।
अन्तःपुरे च विचरेत्कुब्जकैरातवामनैः ॥ ४१ ॥

दण्ड हाथमें लिये पगडी और वरदी पहरे कुबडे किरात और बौने पुरुषोसे सेवित हुआ रनिवासमें विचरण करै ॥ ४१ ॥

नीचैरन्तः पुरामात्याः शुचयश्चित्तवेदिनः ।
शस्त्राग्निविषवर्जं हि नर्म्मयेयुर्महीपतिम् ॥ ४२ ॥

अन्त.पुरके पवित्र चरित्रवाले तथा राजाके चित्तकी वृत्ति जाननेवाले आमात्यजन नीचे मुख कियेहुए शस्त्र अग्नि विषके चिन्होसे रहित वे सब राजाको नम्रभाषणसे सम्बोधन करै ॥ ४२ ॥

अन्तर्वंशिकसैन्यश्च सन्नद्धं साधुसम्मतम् ।
रक्षेदायुक्तकुशलमन्तःपुरगतं नृपम् ॥ ४३ ॥

अन्त पुरवाली सेना तयार और सजीहुई अन्त.पुरमे प्राप्त हुए साधु सम्मत कार्यकुशल राजाकी सब प्रकारसे रक्षा करै ॥ ४३ ॥

आशीतिकाश्च पुरुषाः पञ्चाशत्काश्च योषितः ।
वुध्येरन्नवरोधानां शौचमागारिकाश्च ये ॥ ४४ ॥

अस्सी पुरुष और पचास स्त्री रनवासके कार्य कर्ता नियुक्त होने चाहिये तथा स्थान झाडने बुहारने वालेभी इन्हीमेसे हों ॥ ४४ ॥

रूपाजीवाः स्त्रियः स्नाताः परिवर्त्तितवाससः ।
राजानमुपतिष्ठेयुर्विशुद्धस्रग्विभूषणः ॥ ४५ ॥

पवित्र माला गहने तथा धुलेवस्त्र पहरे हुए स्नान किये हुए रूपाजीवा स्त्रियें राजाके साथ रनवासमें रहै ॥ ४५ ॥

कुहकैर्ज्जटिलैश्चैव मुण्डैश्चाभ्यन्तरो जनाः ।

संसर्गं न क्वचिद्गच्छेद्दासैर्दासीजनैः सह ॥ ४६ ॥

अन्तःपुरचारी मनोंसे कुहक (धूर्त) जटाधारी, मुण्डित तथा या फिरनेवाली दासीजनोंका संसर्ग कभी न होना चाहिये ॥ ४६ ॥

निर्गच्छेत्प्रविशेच्चापि सर्वश्चाभ्यन्तरो जनः ।

विज्ञातद्रव्यसञ्चारी कारणेनोपलक्षितः ॥ ४७ ॥

भीतर रहनेवाले सर्वत्र आ जा सकते हैं परवहां जांय तो किसी चिन्ह लेकर जांय और उनके आने जानेका कारण विदित होना चाहिये ४७

न चानुजीविनं पश्येदकल्पं पृथिवीपतिः ।

अन्यत्रात्ययिकाद्रोगात् सर्वस्यैवातुरो गुरुः ॥ ४८ ॥

राजा अनुजीवियोंको कभी वरदी वेशके विना न देखे केवल रोग समय छोड देना कारण कि आतुर तो सबसे विशेष है ॥ ४८ ॥

स्नातोऽनुलिप्तसुरभिः स्रग्वी रुचिरभूषणः ।

स्नातां विशुद्धवसनां गच्छेद्देवीं सुभूषणाम् ॥ ४९ ॥

राजा अपनी महारानीके समीपमें स्नानकर सुगंधि लगाय माला पहरे सुन्दर भूषण धारण किये गमन करे और देवीभी स्नानकर सुन्दर वस्त्र पहरे अच्छे भूषण धारण किये रहे ॥ ४९ ॥

न हि देवीगृहं गच्छेदात्मीयात्तन्निवेशनात् ।

अत्यर्थवल्लभोऽपीह विश्वासं स्त्रीषु न व्रजेत् ॥ ५० ॥

अपनी निजस्थिति करनेके स्थानसे पटरानीके स्थानको गमन न करे कैसीभी प्रियहो परन्तु सर्वथा स्त्रीका विश्वास न करे ॥ ५० ॥

देवीगृहगतं भ्राता भद्रसेनममारयत् ।

मातुः शय्यान्तरे लीनः कारूषश्चौरसः सुतः ॥५१॥

देवीके घरमें प्राप्त हुए भद्रसेन राजाको उसके भ्राताने मारडाला और माताकी सेजमें छिपे हुए और स पुत्रने अपने पिता कारूषको मारडाला ५१॥

लाजान् विषेण संयोज्य मधुनेति विलोभितः ।
देवी तु काशीराजेन्द्रं निजघान रहोगतम् ॥ ५२ ॥

खीलोंमे विष मिलाय मधुका लोभ देकर एकान्तमे उनकी रानीने स्वयं काशीराजको मारडाला ॥ ५२ ॥

विषदिग्धेन सौवीरं मेखलामणिना नृपम् ।
नूपुरेण च वैरन्त्यं जारूपं दर्पणेन च ॥ ५३ ॥

मेखलाकी मणिको विषसयुक्त करके राजा सौवीरको उनकी स्त्रीने मारडाला नूपुरको विषसयुक्त करके वैरन्त्यको और दर्पणसे जारूषकोमारा ५३॥

वेण्यां शस्त्रं समाधाय तथा चापि विदूरथम् ।
अहिवृत्तं परिहरेच्छत्रौ चापि प्रयोजयेत् ॥ ५४ ॥

अपने केशपाशमे शस्त्र छिपाकर राजा विदूरथको उनकी रानीने मारा इससे इनका अधिक विश्वास न करै, सर्पवृत्तको छोडकर केवल अपना आकार दिखायेरहै जिससे वे भयभीतरहै ॥ ५४ ॥

यस्य दाराः सुगुप्ताः स्युः पुरुषैराप्तकारिभिः ।
सर्वभोगान्वितं तस्य हस्ते लोकद्वयं स्थितम् ॥ ५५ ॥

आप्त पुरुषो द्वारा जिसकी स्त्री रक्षित रहतीहै वही सब भोगोसे युक्त है, और उसके हाथमे दोनो लोकहै ॥ ५५ ॥

धर्म्ममिच्छन्नरपतिः सर्व्वान्दारानतुक्रमात् ।
गच्छेदनुनिशं नित्यं वाजीकरणबृंहितः ॥ ५६ ॥

वाजीकरण औषधियोंसे पुष्टहुआ राजा धर्मकी इच्छाकर क्रमसे सब स्त्रियोंके समीप गमन करै ॥ ५६ ॥

विचार्य्य कार्य्यावयवान् दिनक्षये विसृज्य लोकंप्रमदाहृतक्रियः।
आशस्त्रबन्धेनहिसाधुपाणिनास्वपेदसक्तं परमाप्तरक्षितः॥५७॥

सम्पूर्ण कार्यके विभागोंका विचार करके सध्यासमय एक मात्र स्नान पाठ हायसे अधिकारी पुरुषोंका विदाकर ममदागनोंसे सेवित हो महलमें प्रवेशकरै और आप्त पुरुषोंसे रक्षितहुआ प्रसन्नचित्तसे शयनकरै ॥ ५७ ॥

नयेन जाग्रत्यनिश नरेश्वरे सुख स्वपन्तीह निराधय प्रजा
प्रमत्तचित्तेस्वापितीहसयमात्मजागरेणास्य जगत्प्रबुध्यते ॥५८॥

जो राजा निरन्तर नीतिसे जागताहै उसकी प्रजा सुखसे सोतीहै उनको कोई बाधा नहीं होती और जो राजा प्रमत्तचित्तसे सोजाताहै इसकी प्रजाको जागतेही सबेरा होजाताहै ॥ ५८ ॥

इतिस्म पूर्व मुनयो यभापिरे नृपस्य राज्यस्य च साधु लक्षणम्
तदेतदेव परिपालयन्नयान्नरेश्वर पालककल्पता व्रजेव ॥५९॥

इति श्रीकामन्दकीये नीतिसारे पुत्ररक्षणमात्मरक्षणञ्च
नाम सप्तम सर्ग ॥ ७ ॥

इसप्रकार राजा और राजाके लक्षण पूर्वकालमें मुनियोंने कहे हैं सो इस प्रकारसे राजनीतिको पालन करताहुआ राजा प्रजापतिके समान होताहै५९॥

इति श्रीकामन्दकीय नीतिसारे भाषाटीकायां पुत्ररक्षणमात्म
रक्षणञ्च नाम सप्तम सर्ग ॥ ७ ॥

अष्टम सर्ग ८

उपत कोपदण्डाभ्यां सामात्य सह मन्त्रिभि ।
दुर्गस्थश्चिन्तयेत्साधु मण्डल मण्डलाधिप ॥ १ ॥

इसप्रकार कोष और दण्डसे युक्तहुआ मण्डलका अधिपति महाराजा अमात्य और मन्त्रियोंके सहित दुर्गमें स्थिति करके अच्छे राजमण्डलके विषयका विचार करै ॥ १ ॥

रथी विराजते राजा विशुद्धे मण्डले चरन् ।
अशुद्धे मण्डले सर्पन्शीर्यते रथचक्रवत् ॥ २ ॥

विशुद्धमण्डलमे विचरण करताहुआ राजा रथीको समान शोभित होताहै, अशुद्धमण्डलमे गमन करनेसे रथके पहियेकी समान विशीर्णहो जाताहै ॥ २ ॥

रोचते सर्वभूतेभ्यः शशीवाखण्डमण्डलः ।
सम्पूर्णमण्डलस्तस्माद्विजिगीषुः सदा भवेत् ॥ ३ ॥

अखण्डमण्डलवाले चन्द्रमाके समान वह सब प्राणियोसे शोभित होता इसकारण जीतनेकी इच्छावाला सम्पूर्णमण्डलसे युक्त रहे ॥ ३ ॥

अमात्यराष्ट्रदुर्गाणि कोषो दण्डश्च पञ्चमः ।
एताः प्रकृतयस्तज्ज्ञैर्विजिगीषोरुदाहृताः ॥ ४ ॥

अमात्य (मन्त्री) राज्य, किला, कोष और पाचवॉ दण्ड यह राजनी- के जाननेवालेंने जयकी इच्छावाले राजाकी प्रकृति कहीहै ॥ ४ ॥

एताः पञ्च तथा मित्रं सप्तमः पृथिवीपतिः ।
सप्तप्रकृतिकं राज्यमित्युवाच बृहस्पतिः ॥ ५ ॥

पाच यह छठेमित्र और सातवॉ राजा यह सप्तप्रकृतिक सातप्रकृतिवाला ाज्य होताहै ऐसा बृहस्पतिने कहाहै ॥ ५ ॥

सम्पन्नस्तु प्रकृतिभिर्महोत्साहः कृतश्रमः ।
जेतुमेषणशीलश्च विजिगीषुरिति स्मृतः ॥ ६ ॥

इन प्रकृतियोसे सम्पन्नहुआ उत्साहवान् श्रमी राजा जीतनेकी निरन्तर इच्छावाला विजेता कहलाताहै ॥ ६ ॥

कौलीनं वृद्धसेवित्वमुत्साहः स्थूललक्षिता ।
चित्तज्ञता बुद्धिमत्त्वं प्रागल्भ्यं सत्यवादिता ॥ ७ ॥

कुलीनता, वृद्धजनोंकी सेवा, उत्साह, स्थूललक्षिता, विनका। बुद्धिमत्ता प्रगल्भता, सत्यवादिता ॥ ७ ॥

अदीर्घसूत्रताऽक्षौद्र्यमभयं स्वप्रधानता।
देशकालज्ञता शौर्यं सर्वक्लेशसहिष्णुता ॥ ८ ॥

दीर्घसूत्रता नहोनी, अक्षुद्रता, नम्रता रखनी, अपनी प्रधानता रख देशकालका ज्ञान होना, दृढ़ता, सबक्लेशमें सहनशीलता ॥ ८ ॥

सर्वविज्ञानिता दाक्ष्यं सदा संवृतमन्त्रता।
अविसंवादिता शौर्यं भक्तिज्ञत्वं कृतज्ञता ॥ ९ ॥

सब वस्तुको यथार्थ जानना, चतुराई, सदा अपने मन्त्रको गुप्त रख आज्ञाका भंग न करना, शूरता, भक्तिको जानना कि यह पुरुष मुझसे रखता है अथवा कृतज्ञता ॥ ९ ॥

शरणागतवात्सल्यममर्षित्वमचापलम्।
स्वकर्मदृष्टशास्त्रत्वं कृतित्वं दीर्घदर्शिता ॥ १० ॥

शरणमें आयेहुएकी पालना करनी, सहनशीलता, चंचलता न करना, अपना कर्म शास्त्रानुसार करना, कार्यकुशलता, दूरदर्शिता ॥ १० ॥

जितश्रमित्वं धर्मित्वमक्रूरपरिवारता।
प्रकृतिस्फीतता चेति विजिगीषुगुणाः स्मृताः ॥ ११ ॥

श्रमका सहना धर्मात्मा होना, क्रूरजनोंसे रहित होना, प्रजाकी उन्नति सत्परता यह जयशील राजाके गुण हैं ॥ ११ ॥

सर्वैर्गुणैर्विहीनोऽपि स राजा यः प्रतापवान्।
प्रतापयुक्ता त्रस्यन्ति परान्सिंहा मृगानिव ॥ १२ ॥

सम्पूर्ण गुणोंसे हीन भी होपर जो प्रतापी है वही राजा है, प्रतापवा राजाही शत्रुओंको नष्ट करसक्ता है जैसे सिंह मृगोंको ॥ १२ ॥

प्रतापसिद्धो नृपतिः प्राप्नोति महतीं श्रियम्।

तस्मादुत्थानयोगेन प्रतापं जनयेत्परम् ॥ १३ ॥

प्रतापसिद्ध राजा महालक्ष्मीको प्राप्त होता है, इससे चढाई करनेकी इच्छावाला प्रथम शत्रुको प्रताप दिखलावै ॥ १३ ॥

एकार्थाभिनिवेशित्वमविलक्षणमुच्यते ।
दारुणस्तु स्मृतः शत्रुर्विजिगीषुगुणान्वितः ॥ १४ ॥

एकही अर्थमे लगा हुआ जो दोनोका प्रयोजन हो वह हानिकर अविलक्षण कहाता है गुणवान् जयशील राजा दारुण शत्रु कहागया है ॥ १४ ॥

लुब्धः क्रूरोऽलसोऽसत्यः प्रमादी भीरुरस्थिरः ।
मूढो योधाऽवमन्ता च सुखच्छेद्यो रिपुःस्मृतः ॥ १५ ॥

लोभी, क्रूर, आलसी, असत्यवादी, प्रमादी, भीरु, अस्थिर, मूढ, योधाओंका तिरस्कार करनेवाला शत्रु शीघ्रही सुखसे जीतलिया जाता है ॥ १५ ॥

अरिर्मित्रमरेर्मित्रं मित्रमित्रमतः परम् ।
तथारिमित्रमित्रञ्च विजिगीषोः पुरःस्थिताः ॥ १६ ॥

शत्रु और मित्र, शत्रुका मित्र, मित्रका मित्र, शत्रुके मित्रका मित्र, जयशील राजा इनको अपनी दृष्टिके सन्मुख रक्खै अर्थात् इनमे शत्रु, शत्रुका मित्र, शत्रुके मित्रका मित्र शत्रु है शेष मित्रहैं ॥ १६ ॥

पार्ष्णिग्राहः स्मृतः पश्चादाक्रन्दस्तदनन्तरम् ।
आसारावनयोश्चैव विजिगीषोस्तु मण्डलम् ॥ १७ ॥

पश्चात् पार्ष्णिग्राह उसके पीछे आक्रन्द ' निन्दापूर्वक योधाओंके पुकारनेवाले' यह दोनो ओर इन दोनोंका आसार भारढोनेकी सामग्री आदि यह जीतनेकी इच्छा करनेवालेका मण्डल है ॥ १७ ॥

अरेस्तु विजिगीषोस्तु मध्यमो भूम्यनन्तरः ।
अनुग्रहे संहतयोः समर्थो व्यस्तयोर्वधे ॥ १८ ॥

विजेता और शत्रु इनके मेल होने और अनुग्रहमें मध्यम समर्थ है और इनकी पृथक् होनेपर इनके मारनेमें मध्यमही समर्थ होता है॥१८

मण्डलत्वे हि चैतेषामुदासीनो बलाधिक ।
अनुग्रहे संहतानां व्यस्तानाञ्च वधे प्रभु ॥ १९

इनके मण्डल होनेमें अधिक बली उदासीनवृत्ति रहनेवाला मण्डलयुक्तोंके मेल होनेपर अनुग्रहकरनेमें और विरुद्ध होनेपर इन और विजेताके संहारमें समर्थ होताहै ॥ १९ ॥

मूलप्रकृतयस्त्वेताश्चतस्र परिकीर्तिता ।
आहैव मन्त्रकुशलश्चतुष्कं मण्डलं मयः ॥ २० ॥

यही चारो मूल प्रकृति कही गई हैं मंत्रकुशल मयने इसीको मण्डल चतुष्क कहा है ॥ २० ॥

विजिगीषुररिर्मित्रं पार्ष्णिग्राहोऽथ मध्यम ।
उदासीन पुलोमेन्द्रौ षट्कं मण्डलमूचतु ॥ २१

विजेता नृपति शत्रु मित्र पार्ष्णिग्राह (दोनो ओर या पृष्ठभागके रक्ष मध्यम और उदासीन इनको पुलोमा और इन्द्रने मण्डल षट्क कहाहै२१

उदासीनो मध्यमश्च विजिगीषोस्तु मण्डलम् ।
उशना मण्डलमिदं प्राह द्वादशराजकम् ॥ २२ ॥

उदासीन मध्यमवृत्तिवाला विजेताका यह बारह राजा संयुक्त मण शुक्राचार्यने कहा है ॥ २२ ॥

द्वादशानां नरेन्द्राणामरिमित्रे पृथक् पृथक् ।
षड्विंशत्कमिदं प्राहुस्ते च ते च पुनर्मय ॥ २३ ।

इस बारह राजोंमेंही शत्रु और मित्रोंके पृथक् पृथक् भेदसे मयने कोही २६ मण्डल मानाहै अर्थात् १२ शत्रु १२ मित्र २ उदासीन मध्यम ॥ २३ ॥

द्वादशानां नरेन्द्राणां पञ्च पञ्च पृथक् पृथक् ।
अमात्याद्याश्च प्रकृतीरामनन्तीह मानवाः ॥ २४ ॥

इन बारह राजोंकी पृथक् पृथक् अमात्य आदि प्रकृतियें भी शास्त्रज्ञोंने वर्णनकी है ॥ २४ ॥

मौला द्वादश यास्त्वेता ह्यमात्याद्यास्तथा च याः ।
सप्ततिश्चाधिका ह्येताः सर्वं प्रकृतिमण्डलम् ॥ २५ ॥

इनमे बारह राजा मुख्य और मन्त्री आदि पाच प्रकृति यह भी सब तरसे अधिक ७२ होतीहै ॥ २५ ॥

संयुक्तस्त्वरिमित्राभ्यामुभयारिस्तथा सुहृत् ।
मौला द्वादश राजान इत्यष्टादशकं गुरुः ॥ २६ ॥

शत्रु और मित्रसे सयुक्त, तथा दोनों ओर शत्रु वा दोनो ओर मित्र कुटमणि बारह राजा यह बृहस्पतिने अष्टादशक मण्डल कहाहै ॥२६॥

अष्टादशानामित्येषाममात्याद्याः पृथक् पृथक् ।
अष्टोत्तरशतं त्वेतन्मण्डलं कवयो विदुः ॥ २७ ॥

इनही अठारहमे मन्त्री आदि पाच प्रकृति मिलकर यह १८+६ एकसौ आठका मण्डल होजाताहै ॥ २७ ॥

अष्टादशानामेतेषां मित्रं शत्रुः पृथक् पृथक् ।
चतुःपञ्चाशत्कमिति विशालाक्षः प्रभाषते ॥ २८ ॥

और इन्ही अठारहका शत्रुमित्र भेद पृथक् करके विशालाक्षने ५४ प्रकारका मण्डल कहाहै अठारह तिगुना ५४ होता है शत्रु मित्र और उदासीन ॥ २८ ॥

चतुःपञ्चाशतां राज्ञाममात्याद्याः पृथक् पृथक् ।
चतुर्विंशतिसंयुक्तं मण्डलं त्रिशतं स्मृतम् ॥ २९ ॥

इन ५५ राजा और अमात्यादिक स्वभावको पृथक् पृथक् वर्णन विचारकर अर्थात् यहाँ स्वभाव मिलानेसे ३२५ का मण्डल कहाहै॥२९

सप्तप्रकृतिक युक्त विजिगीषोररेश्च यत् ।
चतुर्दशकमेवैतन्मण्डल परिचक्षते ॥ ३० ॥

सात प्रकृतियोंसे युक्त विजयशील शत्रुका जो चतुर्दशक मण्डल कहाहै३

मण्डलत्रिकमित्याहुर्विजिगीष्वरिमध्यमा ।
मित्रयुक्ता' पृथक् चैते पट्कमित्यपरे जगु ॥ ३१ ॥

जयकी इच्छावाले शत्रु और मध्य इनका मण्डल त्रिक वर्णन कियां और यहीं पृथक् मित्रभी होनसे छ' प्रकारके मण्डल षट्क कहातेहैं ॥३१

अमात्याद्या प्रकृतय एकैकस्यैव भूपते ।
मण्डल मण्डलविद षट्त्रिंशत्क प्रचक्षते ॥ ३२ ॥

राजाकी एक एक अमात्यादि प्रकृतियें छ' छ' मानसे मण्डलके गा नेवालोंने ३६ प्रकार सहतिक मण्डल कहाहै ॥ ३२ ॥

सप्तप्रकृतिका' सर्व्वे विजिगीष्वरिमध्यमा ।
एकविंशतकमित्याहु परे च नयवादिनः ॥ ३३ ॥

सब जयशील, शत्रु और मध्य यह सातप्रकृतिसे संयुक्त हुए नीति ज्ञाताओंने एकविंशतक २१ मण्डल कहाहै ॥ ३३ ॥

चत्वार पार्थिवा मौला पृथङ्मित्रै सहाष्टकम् ।
अमात्यादिभिरेतैश्च अगत्यष्टरसमितम् ॥ ३४ ॥

चार राजा अपने मंत्री मित्रोंसहित अष्टकमण्डल कहातेहैं, यह अम त्यादिके सहित मिलकर ४८ भेदवाले मण्डलसंज्ञक होतेहैं ॥ ३४ ॥

विजिगीषो पुरस्ताच्च ये पश्चाच्च प्रकीर्तिता' ।
दशक मण्डलमिद मण्डलज्ञा प्रचक्षते ॥ ३५ ॥

जो जयशील राजाके आगे और जो पीछे चलनेवाले कहे है इनन्हीको ण्डलके जाननेवालोंने मण्डलदशक कहाहै ॥ २५ ॥

दशानां भूमिपालानाममात्याद्याः पृथक् पृथक् ।
मण्डलं मण्डलविदः षष्टिसंज्ञं प्रचक्षते ॥ ३६ ॥

इन दशराजाओंके अमात्यादि छः छ भेद पृथक् २ करनेसे मण्डल ज्ञाताओंने षष्टि ६० सज्ञक मण्डल कहाहै ॥ ३६ ॥

अरिमित्रे पुरो नेतुः पश्चिमे चेति पञ्चकम् ।
अमात्याद्याः पृथक् तेषां त्रिशत्कं परिचक्षते ॥ ३७॥

शत्रु और मित्र यह नेताके आगे और पीछे पॉच अमात्यादि पचक, यह मण्डलके जाननेवालेने त्रिशत्कमण्डल कहाहै ॥ ३७ ॥

अरेरप्येवमेवेति दृष्टं दृष्टिमतां वरैः ।
पञ्चकं मण्डलं योज्यं त्रिशत्याञ्च मनीषिभिः ॥ ३८॥

बुद्धिमानोंने शत्रुओंमे ऐसे सब भाव देखेहै तब उनमें भी यह पॉचों मन्त्री आदि युक्त करनेसे त्रिशत्कमण्डल होताहै ऐसा बुद्धिमान् कहतेहै ३८

द्वे एव प्रकृती न्याय्ये इत्युवाच पराशरः ।
अभियोक्ता प्रधानः स्यात्तथा न्याय्योऽभियुज्यते ॥ ३९॥

पराशरने कहा है कि, यथार्थमे दोही प्रकृति हे इनका अभियुक्त करनेवाला प्रधान कहाता है और वह न्यायसे युक्त होना चाहिये ॥ ३९ ॥

परस्पराभियोगेन विजिगीषोररेस्तथा ।
अरित्वे विजिगीषुत्वे एका प्रकृतिरिष्यते ॥ ४० ॥

शत्रु और जयशीलके परस्पर अभियोग होनेसे अरिपन और जयशीलतामे एकही प्रकृति कही है ॥ ४० ॥

इति प्रकारं बहुधा मण्डलं परिचक्षते ।

सर्वलोकप्रतीतं तु स्फुटं द्वादशराजकम् ॥ ४१ ॥

इसभाँति बहुतप्रकारका मण्डल कहागयाहै और सब लोकोंमें प्रतीत तो बारह राजोंका मण्डल कहा है ॥ ४१ ॥

अष्टशाखं चतुर्मूलं षट्पत्रं द्वयस्थितम् ।

षट्पुष्पं त्रिफलं वृक्षं यो जानाति स नीतिवित् ॥ ४२ ॥

आठशाखा चार मूल छःपत्ते, दो प्रकारसे स्थित छः पुष्प, तीन फलवाले राजनीतिके वृक्षको जो भलीभाँतिसे जानता है वही नीतिका जाननेवाला है * ॥ ४२ ॥

पार्ष्णिग्राहस्तथाऽऽसारः शत्रुमित्रे प्रकीर्त्तिते ।

आक्रन्दोऽथ तदासारो विजिगीषोरुदाहृते ॥ ४३ ॥

पार्ष्णिग्राह इधर उधरके चलनेवाले सेनाका फैलाव यह शत्रुमित्रमें कहे हैं सेनाको निन्दित सम्बोधन करनेवाले और सेनाके फैलाव जयशीलमें कहे हैं ॥ ४३ ॥

पुरो यायाद्विगृह्यैव मित्राभ्यां पश्चिमावरी ।

पश्चिमाविव पूर्वाभ्यामरिं तन्मित्रमेव च ॥ ४४ ॥

विग्रहवालेको भागकरके चले मित्रोंसे युक्त सेना पश्चिमभागमें पश्चिमके समान पूर्वमें अरि और उसके मित्रको रक्खे ॥ ४४ ॥

अरिमित्रस्य मित्रन्तु कृतकृत्येन भूभुजा ।

सन्तम्भ्योभयमित्रेण पश्चाद्गच्छेन्नरेश्वरः ॥ ४५ ॥

शत्रुके मित्रके मित्रको लिये स्वयं बलादिसे कृतकृत्य होकर दोनों और मित्रमण्डलकी स्थिति किये पीछेसे राजा गमन करे ॥ ४५ ॥

---

* आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीति यह मूल हैं दो प्रकृति अभियोक्ता और अभिमित्र इनमें स्थितिहै धर्म अर्थ काम यह तीन फल हैं महाराजा सेनापति आदि यह शाखा हैं छः गुणवाले सन्धिविग्रह आदि छः पुष्प हैं और १२ राजगुण १६ प्रकारकी संधि १२ राजमण्डल इन सबके पत्ते हैं।

आक्रन्देनात्मना चैव पार्ष्णिग्राहं प्रपीडयेत् ।
आक्रन्देन तदासारमाक्रन्दासारभाजिना ॥ ४६ ॥

अपनी फट्कारसे पार्ष्णिग्राहोको पीडित करै फैलीहुई सेनाके प्रधान आक्रन्दन फट्कारसे उत्साही होते है ॥ ४६ ॥

मित्रेणैवात्मना चैव कुर्वीतोद्धरणं रिपोः ।
मित्रेण हि समित्रेण रिपुमित्रं प्रपीडयेत् ॥ ४७ ॥

मित्रोंके द्वारा वा स्वय शत्रुको उच्छेदकरे, ग्रहण करै मित्रद्वारा वा मि- मित्रद्वारा शत्रुके मित्रको पीडित करे ॥ ४७ ॥

अरिमित्रस्य मित्रस्य पीडनं पृथिवीपतिः ।
कुर्वीतोभयमित्रेण मित्रामित्रेण चैव हि ॥ ४८ ॥

राजा शत्रुके मित्रका वा शत्रुके मित्रके मित्रका पीडन अपने मित्र वा त्रके मित्रसे करावे ॥ ४८ ॥

अनेन क्रमयोगेन विजिगीषुः सदोत्थितः ।
पीडयेदहितं शत्रुं मित्राणामन्तरन्तराम् ॥ ४९ ॥

इसक्रमसे सदा उन्नतिको प्राप्तहुआ राजा मित्रोंकी अन्तरासे अहित- ारी शत्रुको पीडितकरै ॥ ४९ ॥

पीड्यमानो ह्युभयतः सदोद्युक्तैर्मनीषिभिः ।
रिपुरुच्छेदमायाति तद्वशे चावतिष्ठते ॥ ५० ॥

सदा उद्युक्तहुए बुद्धिमानोसे दोनो ओरसे पीडितहुआ शत्रु नाशको ाप्तहोताहै और जयशीलके वशमें होजाताहै ॥ ५० ॥

सर्वोपायेन कुर्वीत सामान्यं मित्रमात्मसात् ।
भवन्ति मित्रादुच्छिन्नाः सुखच्छेद्याहि शत्रवः॥५१॥

सब उपायोंसे शत्रुके सामान्य मित्रोंको अपने वशीभूत करे मित्रवर्गोसे रहित हुए शत्रु सुखसे नाश होसकतेहै ॥ ५१ ॥

सर्वलोकप्रतीतं तु स्फुटं द्वादशराजकम् ॥ ४१ ॥

इसभाँति बहुतप्रकारका मण्डल कहागयाहै और सब लोगोंकी तिमें तो बारह राजोंका मण्डल कहा है ॥ ४१ ॥

अष्टशाखं चतुर्मूलं षष्टिपत्रं द्वये स्थितम् ।
षट्पुष्पं त्रिफलं वृक्षं यो जानाति स नीतिवित् ॥ ४२

आठशाखा, चार मूल, साठपत्ते, दो प्रकारसे स्थित छः पुष्प, तीन वाले राजनीतिके वृक्षको जो भलीभाँतिसे जानता है वही नीतिका ज्ञाता है * ॥ ४२ ॥

पार्ष्णिग्राहस्तथाऽऽसारः शत्रुमित्रे प्रकीर्त्तिते ।
आक्रन्दोऽथ तदासारो विजिगीषोरुदाहृते ॥ ४३

पार्ष्णिग्राह इधर उधरके चलनेवाले सेनाका फैलाव यह शत्रु मित्रमें हैं सेनाको निन्दित सम्बोधन करनेवाले और सेनाके फैलाव जयशी कहे हैं ॥ ४३ ॥

पुरो यायाद्विगृह्णैव मित्राभ्यां पश्चिमावरी ।
पश्चिमावपि पूर्वाभ्यामरिं तन्मित्रमेव च ॥ ४४ ॥

विग्रहवालेको आगेकरके चले मित्रोंसे युक्त सेना पश्चिमभाग पश्चिमके समान पूर्वमें अरि और उसके मित्रको रक्खे ॥ ४४ ॥

अरिमित्रस्य मित्रन्तु छलकृत्येन भूयसा ।
सस्वाभ्योभयमित्रेण पश्चाद्व छन्नरेश्वर ॥ ४५ ॥

शत्रुके मित्रके मित्रको छिपे स्वयं बलादिसे कृतकृत्य होकर दोनों मित्रमण्डलकी स्थिति किये पीछेसे राजा गमन करे ॥ ४५ ॥

* [illegible] नदी [illegible] इसभाँति यह मूल है, दो प्रकार अभियोग और अभि [illegible] इनमें स्थिति [illegible] अर्थ काम यह [illegible] हैं [illegible] सेनाकी पत्र [illegible] यह [illegible] यह [illegible] ज्ञाता हैं [illegible] मुण्डाके [illegible] पुष्प हैं और ११ [illegible] गुण ११ प्रकारकी संधि ११ राजमण्डल इस [illegible] कहे हैं ।

आक्रन्देनात्मना चैव पार्ष्णिग्राहं प्रपीडयेत् ।
आक्रन्देन तदासारमाक्रन्दासारभाजिना ॥ ४६ ॥

अपनी फट्टकारसे पार्ष्णिग्राहोंको पीडित करे फैलीहुई सेनाके प्रधान उस आक्रन्दन फट्टकारसे उत्साही होते हैं ॥ ४६ ॥

मित्रेणैवात्मना चैव कुर्वीतोद्धरणं रिपोः ।
मित्रेण हि समित्रेण रिपुमित्रं प्रपीडयेत् ॥ ४७ ॥

मित्रोंके द्वारा वा स्वय शत्रुको उच्छेदकरे, ग्रहण करे मित्रद्वारा वा मित्रके मित्रद्वारा शत्रुके मित्रको पीडित करे ॥ ४७ ॥

अरिमित्रस्य मित्रस्य पीडनं पृथिवीपतिः ।
कुर्वीतोभयमित्रेण मित्रामित्रेण चैव हि ॥ ४८ ॥

राजा शत्रुके मित्रका वा शत्रुके मित्रके मित्रका पीडन अपने मित्र वा मित्रके मित्रसे करावे ॥ ४८ ॥

अनेन क्रमयोगेन विजिगीषुः सदोत्थितः ।
पीडयेदहितं शत्रुं मित्राणामन्तरन्तराम् ॥ ४९ ॥

इसक्रमसे सदा उन्नतिको प्राप्तहुआ राजा मित्रोंकी अन्तरासे अहितकारी शत्रुको पीडितकरै ॥ ४९ ॥

पीड्यमानो ह्युभयतः सदोद्युक्तैर्मनीषिभिः ।
रिपुरुच्छेदमायाति तद्वशे चावतिष्ठते ॥ ५० ॥

सदा उद्युक्तहुए बुद्धिमानोंसे दोनो ओरसे पीडितहुआ शत्रु नाशको प्राप्तहोताहै और जयशीलके वशमें होजाताहै ॥ ५० ॥

सर्वोपायेन कुर्वीत सामान्यं मित्रमात्मसात् ।
भवन्ति मित्रादुच्छिन्नाः सुखच्छेद्याहि शत्रवः॥५१॥

व उपायोंसे शत्रुके सामान्य मित्रोंको अपने वशीभूत करे मित्रवर्गोंसे हुए शत्रु सुखसे नाश होसकतेहै ॥ ५१ ॥

सर्वलोकमतीव तु स्फुट द्वादशराजकम् ॥ ४१ ॥

इसभाँति बहुतप्रकारका मण्डल कहागयाहै और सब लोगोंकी म
तिमें सो बारह राजोंका मण्डल कहा है ॥ ४१ ॥

अष्टशाख चतुर्मूल षष्टिपत्र द्वये स्थितम् ।
षट्पुष्प त्रिफल वृक्ष यो जानाति स नीतिवित् ॥४२

आठशाखा चार मूल, साठपत्ते, दो प्रकारसे स्थित छ: पुष्प तीन फ
वाले राजनीतिके वृक्षको जो भलीभाँतिसे जानता है वही नीतिका ज
नाता है * ॥ ४२ ॥

पार्ष्णिग्राहस्तथाऽऽसार शत्रुमित्रे प्रकीर्त्तिते ।
आक्रन्दोऽथ सदासारो विजिगीषोरुदाहृते ॥ ४३ ॥

पार्ष्णिग्राह इधर उधरके चलनेवाले सेनाका फैलाव यह शत्रु मित्रमें
हैं सेनाको निन्दित सम्बोधन करनेवाले और सेनाके फैलाव जयशील
कहे हैं ॥ ४३ ॥

पुरो यायादिगृह्णीयान्मित्राभ्यां पश्चिमावरी ।
पश्चिमाविव पूर्वाभ्यामरिं तन्मित्रमेव च ॥ ४४ ॥

विग्रहवालेको आगेकरके चले मित्रोंसे युक्त सेना पश्चिमभाग
पश्चिमके समान पूर्वमें अरि और उसके मित्रको रक्खे ॥ ४४ ॥

अरिमित्रस्य मित्रन्तु कृतकृत्येन भूयसा ।
संस्तभ्योभयमित्रेण पश्चाद्गच्छेन्नरेश्वर ॥ ४५ ॥

शत्रुके मित्रके मित्रको छिप स्वयं बलादिसे कृतकृत्य होकर दोनोंमें
मित्रमण्डलकी स्थिति किये पीछेसे राजा गमन करे ॥ ४५ ॥

* साम्नीतिकी मंत्री प्रभौ उत्साहशक्ति यह मूल हैं दो प्रकृति अभियोग और अभि
षण इनमें स्थिति है धर्म अर्थ काम यह तीन फल हैं महाराजा सेनापति शत्रु दुर्ग, को
ष सुहृद् यह आठ शाखा हैं छः गुणरूपी सन्धोंके कराव छ पुष्प हैं और ११ ०
गुण १६ प्रकारकी संधि १२ राजमण्डल इन सबके पत्ते हैं ।

आक्रन्देनात्मना चैव पार्ष्णिग्राहं प्रपीडयेत् ।
आक्रन्देन तदासारमाक्रन्दासारभाजिना ॥ ४६ ॥

अपनी फटकारसे पार्ष्णिग्राहोको पीडित करै फैलीहुई सेनाके प्रधान । आक्रन्दन फटकारसे उत्साही होते है ॥ ४६ ॥

मित्रेणैवात्मना चैव कुर्वीतोद्धरणं रिपोः ।
मित्रेण हि समित्रेण रिपुमित्रं प्रपीडयेत् ॥ ४७ ॥

मित्रोके द्वारा वा स्वय शत्रुको उच्छेदकरे, ग्रहण करै मित्रद्वारा वा मित्र मित्रद्वारा शत्रुके मित्रको पीडित करे ॥ ४७ ॥

अरिमित्रस्य मित्रस्य पीडनं पृथिवीपतिः ।
कुर्वीतोभयमित्रेण मित्रामित्रेण चैव हि ॥ ४८ ॥

राजा शत्रुके मित्रका वा शत्रुके मित्रके मित्रका पीडन अपने मित्र वा मित्रके मित्रसे करावे ॥ ४८ ॥

अनेन क्रमयोगेन विजिगीषुः सदोत्थितः ।
पीडयेदहितं शत्रुं मित्राणामन्तरन्तराम् ॥ ४९ ॥

इसक्रमसे सदा उन्नतिको प्राप्तहुआ राजा मित्रोकी अन्तरासे अहितकारी शत्रुको पीडितकरै ॥ ४९ ॥

पीड्यमानो ह्युभयतः सदोद्युक्तैर्मनीषिभिः ।
रिपुरुच्छेदमायाति तद्वशे चावतिष्ठते ॥ ५० ॥

सदा उद्युक्तहुए बुद्धिमानोसे दोनों ओरसे पीडितहुआ शत्रु नाशको प्राप्तहोताहै और जयशीलके वशमें होजाताहै ॥ ५० ॥

सर्वोपायेन कुर्वीत सामान्यं मित्रमात्मसात् ।
भवन्ति मित्रादुच्छिन्नाः सुखच्छेद्याहि शत्रवः ॥ ५१ ॥

सब उपायोंसे शत्रुके सामान्य मित्रोंको अपने वशीभूत करे मित्रवर्गोसे रहित हुए शत्रु सुखसे नाश होसकतेहै ॥ ५१ ॥

सर्वलोकप्रतीतं तु स्फुटं द्वादशराजकम् ॥ ४१ ॥

इसभाँति प्रकृतमकारका मण्डल कहागयाहै और सब लोकोंकी प्रतीतिमें तो बारह राजोंका मण्डल कहा है ॥ ४१ ॥

अष्टशाखं चतुर्मूलं षष्टिपत्रं द्वये स्थितम् ।

षट्पुष्पं त्रिफलं वृक्षं यो जानाति स नीतिवित् ॥४२

आठशाखा चार मूल साठपत्ते, दो प्रकारसे स्थित छः पुष्प तीन फलवाले राजनीतिके वृक्षको जो भलीभाँतिसे जानता है वही नीतिका जाननेवाला है * ॥ ४२ ॥

पार्ष्णिग्राहस्तथाऽऽसारः शत्रुमित्रे प्रकीर्त्तिते ।

आक्रन्दोऽप्य तदासारो विजिगीषोरुदाहृते ॥ ४३ ॥

पार्ष्णिग्राह इधर उधरके पकड़नेवाले सेनाका फैलाव यह शत्रु मित्रमें कहे और सेनाको निन्दित सन्धान्धन करनेवाले और सेनाके फैलाव जयवादीके कहे हैं ॥ ४३ ॥

पुरो यायाद्विगृह्णीयान्मित्राभ्यां पश्चिमापरौ ।

पश्चिमाविव पूर्वाभ्यामरिं तन्मित्रमेव च ॥ ४४ ॥

विग्रहवालेको आगेकरके चले मित्रोंसे युक्त सेना पश्चिमभागमें पश्चिमके समान पूर्वमें अरि और उसके मित्रका रक्खे ॥ ४४ ॥

अरिमित्रस्य मित्रन्तु कृतकृत्येन भूयसा ।

सस्ताभ्योभयमित्रेण पश्चाद्गच्छेन्नरेश्वरः ॥ ४५ ॥

शत्रुके मित्रके मित्रको लिये स्वयं मलादिसे कृतकृत्य होकर दोनोंके मित्रमण्डलकी स्थिति किये पीछेसे राजा गमन करे ॥ ४५ ॥

* मार्गादिककी चारी शाखा राजनीति वह मूल है दो प्रकृति अभियोग और अभियोग इनमें स्थिति है धर्म अर्थ काम यह तीन फल हैं महाराजा सेनादि पत्र हैं, चार बल सुहृद् यह चार शाखा हैं छः गुणपाले सन्धाके समय छः पुष्प हैं और ११ पुष्प ११ प्रकारकी कंध ११ राजमण्डल इस वृक्षके पत्ते हैं ।

उच्छेद, अपचय (हरणकरना) समयपर पीडा देनी और कर्षण यह
ग्रनोंने चारमकारकी शत्रुकी स्थिति कहीहै ॥ ५७ ॥

रेचनं कोषदण्डाभ्यां महामात्यवधस्तथा ।
एतत्कर्षणमित्याहुराचार्याः पीडनं परम् ॥ ५८ ॥

कोष और दण्डसे रहित करदेना, प्रधानमंत्रीको मारडालना, आचा-
र्योंने इसका नाम कर्षण कहाहै इसके पीछे पीडनकरै ॥ ५८ ॥

समाश्रयविहीनो वा दुर्बलं वा समाश्रितः ।
शक्योऽरिः सम्पदा युक्त उच्छेत्तुं भूम्यनन्तरः॥५९॥

जो किलेसे विहीन हो अथवा दुर्बल किलेसे युक्तहो ऐसा शत्रु सम्पदा-
युक्त भी उच्छेदित होसक्ताहै ॥ ५९ ॥

कर्षणं पीडनं काले कुर्वीताश्रयमानिनः ।
समाश्रयं दुर्गमाहुर्मित्रं वा साधुसम्मतम् ॥ ६० ॥

किलेमे स्थितहुएका समयपर कर्षण और पीडन करे समाश्रयही दुर्गमें
रहनेका नामहै, और मित्रवर्गका अर्थ यह कि, साधुसम्मत हों ॥ ६० ॥

विभीषणस्य सोदर्यस्तथा सूर्यसुतस्य च ।
सर्वतन्त्रापहारित्वात्तथोच्छेद्यो निजो रिपुः ॥ ६१ ॥

विभीषणके सगे भ्राताका तथा सूर्यपुत्रके सगेभ्राता, युधिष्ठिरका सब-
कार्य नीतिप्रयोग हरण होनेसे जैसे विनाश हुआ, इसीप्रकार सर्व तन्त्रके
हरणसे शत्रु सहजमेंही विनाश होसकताहै ॥ ६१ ॥

छिद्रं कर्म्म च वित्तञ्च विजानाति निजो रिपुः ।
दहत्यन्तर्गतश्चैव शुष्कवृक्षमिवानलः ॥ ६२ ॥

जो शत्रु अपना छिद्रकर्म और धन जानताहै वह सूखे वृक्षको जैसे भी-
तर भीतर अग्नि जलातीहै इसप्रकार जलता रहताहै ॥ ६२ ॥

वर्त्तते पक्षपातेन मित्रं यदुभयात्मकम् ।

कारणेनैव जायन्ते मित्राणि रिपवस्तथा ।
रिपवो येन जायन्ते कारणं तत्परित्यजेत् ॥ ५२ ॥

कारणसेही मित्र और शत्रु होजातेहैं, जिसकारणसे शत्रु बने वह कारण त्यागदे ॥ ५२ ॥

प्राधान्येन हि सर्वत्र सर्वाः संसर्जयेत्प्रजाः ।
तासां संसर्जनाच्छजा सर्वाङ्गी श्रियमश्नुते ॥ ५३ ॥

प्रधानतासे सर्वत्र प्रजाओंका संगठित करे प्रजाओंकी हमदर्दीसे राजा सबप्रकार लक्ष्मीको प्राप्तहोताहै ॥ ५३ ॥

दूरेचरान्माण्डलिकान्स्थानदुर्गनिवासिनः ।
मित्रीकुर्वीत तत्प्राणाः साधयन्तीह मण्डलम् ॥५४॥

स्थान और दुर्गमें दूर रहनेवाले माण्डलिक राजोंको अपना मित्र द्वारा करे वही इसके प्राणरूप होकर इसकी मण्डलकी साधना करतेहैं ॥

बलेत्तदोर्भिर्वमलो मध्यमो विजिगीषया ।
एकीभूयारिणा तिष्ठेदशक्तः सन्धिमाचरेत् ॥ ५५ ॥

उनसे अपना बल बढाकर जीतनेकी इच्छा करनेवाला मध्यमें रहे और मित्रोंके साथ एकत्र हो शत्रुसे संग्रामकरे यदि असमर्थ हो तो समयपर सन्धि करले ॥ ५५ ॥

सहजः कार्यजश्चैव द्विविधः शत्रुरुच्यते ।
सहजः स्वकुलोत्पन्न इतरः कार्यजः स्मृतः ॥५६॥

एक स्वाभाविक एक कार्यसे यह दोप्रकारके शत्रु होतेहैं, स्वाभाविक शत्रु अपने कुलमें उत्पन्नहुआ होताहै दूसरा कार्यसे उत्पन्न होताहै॥५६॥

उच्छेदापचयौ काले पीडनं कर्षणन्तथा ।
इति विद्याविदः प्राहुः शत्रौ वृत्तं चतुर्विधम् ॥ ५७ ॥

उच्छेद, अपचय (हरणकरना) समयपर पीडा देनी और कर्षण यह
र्योंने चारप्रकारकी शत्रुकी स्थिति कहीहै ॥ ५७ ॥

रेचनं कोपदण्डाभ्यां महामात्यवधस्तथा ।
एतत्कर्षणमित्याहुराचार्याः पीडनं परम् ॥ ५८ ॥

कोष और दण्डसे रहित करदेना, प्रधानमंत्रीको मारडालना, आचा-
र्य इसका नाम कर्षण कहाहै इसके पीछे पीडनकरै ॥ ५८ ॥

समाश्रयविहीनो वा दुर्बलं वा समाश्रितः ।
शक्योऽरिः सम्पदा युक्त उच्छेत्तुं भूम्यनन्तरः ॥ ५९ ॥

जो किलेसे विहीन हो अथवा दुर्बल किलेसे युक्तहो ऐसा शत्रु सम्पदा-
क भी उच्छेदित होसक्ताहै ॥ ५९ ॥

कर्षणं पीडनं काले कुर्वीताश्रयमानिनः ।
समाश्रयं दुर्गमाहुर्मित्रं वा साधुसम्मतम् ॥ ६० ॥

किलेमे स्थितहुएका समयपर कर्षण और पीडन करै समाश्रयही दुर्गमें
हनेका नामहै, और मित्रवर्गका अर्थ यह कि, साधुसम्मत हों ॥ ६० ॥

विभीषणस्य सोदर्यस्तथा सूर्यसुतस्य च ।
सर्वतन्त्रापहारित्वात्तथोच्छेद्यो निजो रिपुः ॥ ६१ ॥

विभीषणके सगे भ्राताका तथा सूर्यपुत्रके सगेभ्राता, युधिष्ठिरका सब-
कार्य नीतिप्रयोग हरण होनेसे जैसे विनाश हुआ, इसीप्रकार सर्व तन्त्रके
हरणसे शत्रु सहजमेही विनाश होसकताहै ॥ ६१ ॥

छिद्रं कर्म्म च वित्तञ्च विजानाति निजो रिपुः ।
दहत्यन्तर्गतश्चैव शुष्कवृक्षमिवानलः ॥ ६२ ॥

जो शत्रु अपना छिद्रकर्म और धन जानताहै वह सूखे वृक्षको जैसे भी-
तर भीतर अग्नि जलातीहै इसप्रकार जलता रहताहै ॥ ६२ ॥

वर्त्तते पक्षपातेन मित्रं यदुभयात्मकम् ।

यज्ञीय हि त्रिशिरस तद्रुच्छिन्नात्स्ववत्वर ॥ ६३ ॥

मा मित्र पक्षपातस दोनाभार मर्तताहै उसका शीमही नहकर नाहिय जिसप्रकार इन्द्रने दैत्योंकी ओर भी मिलहुए और इन्द्रका भा करतहुए विश्वरूपका मारडाला, इसने गुपकसे इस यज्ञमें दैत्योंमे आहुति दी थी ॥ ६३ ॥

बलिना विगृहीतस्य द्विषत कृच्छ्रवर्तिन ।
कुर्वीतापचय शत्रोरात्मोच्छित्तिविशङ्कया ॥ ६४ ॥

जब बलवान् शत्रुसे निग्रह उपस्थित हुआहो तो कष्टमें पडे शत्रुका अ उच्छेदकी शंकासे धनादि हरण करे, वा उसीको अपहरण करे ॥ ६४ ॥

यस्मिन्नुच्छिद्यमाने तु रिपुरन्य प्रवर्तते ।
न तस्योच्छित्तिमन्विच्छेत्कुर्वीतैनं स्वगोचरम् ॥६५॥

जिसके उच्छेद करनेसे कोई दूसरा शत्रु उठ खडा हो तो उसका न करे अपने नेत्रगोचर रक्खै अर्थात् आधीन रक्खे ॥ ६५ ॥

यथागतो रिपुर्यस्तु विचलेद्दूरवग्रहः ।
तस्य संशमनायाशु तत्कुलीन समुन्नयेत् ॥ ६६ ॥

जो शत्रु पराक्रमसे मासहुआ हो तो वह यदि विग्रह करनेको उपस्थित ता शीघ्र उसके शान्त करनेके निमित्त किसी कुलीनकोही सम्बद्ध करे॥६६

विष विषेण व्यथते वज्र वज्रेण भिद्यते ।
गजेन्द्रो दृष्टसारेण गजेन्द्रेणैव बध्यते ॥ ६७ ॥

विषकी औषधी विषहीहै वज्र वज्रसेही अर्थात् हीरा हीरेसेही तो जाता है गजराज मत्तहाथियोंसेही बँधाजाता है ॥ ६७ ॥

मत्स्यो मत्स्य समादत्ते ज्ञातिर्ज्ञातिमसशयम् ।
रावणोच्छित्तये रामो विभीषणमपूजयत् ॥ ६८ ॥

मत्स्यही मत्स्यको ग्रहणकर खाजाताहै, इसीप्रकार ज्ञाति जातिको खाजाती है रावणके नाशके निमित्त रामचन्द्रने विभीषणका सत्कार किया था॥६८॥

यस्मिन्मण्डलसङ्क्षोभः कृते भवति कर्म्मणि ।
न तत्कुर्यात्तु मेधावी प्रकृतीरनुरञ्जयेत् ॥ ६९ ॥

जिस कर्मके करनेसे प्रजा मण्डलका सक्षोभहो, बुद्धिमान्को उचितहै कि, उस कार्यको न करके प्रजाका चित्त प्रसन्न करे ॥ ६९ ॥

साम्ना दानेन मानेन प्रकृतीरनुरञ्जयेत् ।
आत्मीया भेददण्डाभ्यां परकीयाश्च दारयेत् ॥ ७० ॥

साम, दान और मानसे प्रकृतिको प्रसन्न करै, अपने भेद और दण्डोंके उपायोंसे शत्रुओंको विदीर्ण करै ॥ ७० ॥

आकीर्णं मण्डलं सर्व्वं मित्रैररिभिरेव च ।
सर्वः स्वार्थपरो लोकः कुतो मध्यस्थता क्वचित्॥७१॥

सबही मण्डल शत्रु और मित्रोंसे भराहुआ है, सभी लोग स्वार्थपर है, मध्यस्थता कहां है ॥ ७१ ॥

भोगप्राप्तं विकुर्वाणं मित्रमप्युपपीडयेत् ।
अत्यन्तं विकृतं हन्यात्स पापीयान् रिपुर्मतः ॥७२॥

यदि भोगको प्राप्तहुआ मित्रभी कुछ अपकार करे तो उसको भी पीडित करे जो अत्यन्त अपकारी हो तो उसको नष्ट करे कारण कि, वह पापी शत्रुरूप है ॥ ७२ ॥

अमित्राण्यपि कुर्व्वीत मित्राण्युपचयावहान् ।
अहिते वर्त्तमानानि मित्राण्यपि परित्यजेत् ॥ ७३ ॥

यदि अपना हित करते हो तो शत्रुकोभी मित्र करे, और यदि मित्र अहित कार्य करते हो तो उनको भी त्यागदे ॥ ७३ ॥

स बन्धुर्योऽनुबध्नाति हितेऽर्थे वा हितादरः ।

अनुरक्तं विरक्तं वा तन्मित्रमुपकारि यत् ॥ ७४ ।

वही बन्धु है जो अपने प्रयोजनमें हितकारी हो तथा हितपूर्वक आ करताहै अनुरक्त होवाहै विरक्त जो उपकार करै वही बन्धु है ॥ ७४

मित्रं विचार्य बहुशो ज्ञातदोषं परित्यजेत् ।
त्यजन्भूतदोषं हि धर्म्मार्थावुपहन्ति हि ॥ ७५ ॥

मित्रके प्रति बहुतसा विचार करे जब उसमें दोष विदित होजायँ त उसको त्यागदे यदि उस बहुत दोषवालेका त्याग न करे तो उसके ध और अर्थ नष्ट होते हैं ॥ ७५ ॥

स्वयं दोषगुणान्वेषी भवेत्सर्वत्र सर्वदा ।
स्वयं ज्ञातेषु दोषेषु शस्यते दण्डपातनम् ॥ ७६ ॥

और सर्वत्र सदा स्वयही गुण दोषोंकी परीक्षा करता रहै, स्वयं दो जानकर दण्ड देनेमें बड़ाई होती है ॥ ७६ ॥

न ह्यविज्ञाय तत्त्वेन कोपं कुर्यात्कदाचन ।
भुजङ्गमिव मन्यन्ते निर्दोषक्रोधनं जनाः ॥ ७७ ॥

विना ठीक अपराधके जाने कभी क्रोध न करे जो राजा विना कारणके क्रोध करते हैं मनुष्लोग उनको सर्पके समान जानते हैं ॥ ७७ ॥

मित्राणामन्तरं विद्यान्मध्यज्यायःकनीयसाम् ।
मध्यज्याय कनीयांसि कर्माणि च पृथक्पृथक्॥७८॥

मध्य, बड़े और छोटे मित्रोंका अन्तर जानता रहै, इन मध्य ज्येष्ठ और कनिष्ठोंके पृथक् पृथक् कार्मोंको जाने ॥ ७८ ॥

न हि मिथ्याऽभियुञ्जीत शृणुयाच्चापि तद्विधम् ।
मित्रभेदन्तु ये कुर्युस्तान्सर्वांस्तु परित्यजेत् ॥ ७९ ॥

इनपर मिथ्या अभियोग न करे और इसप्रकारके मिथ्या अभियोगोंको भी न करे, जो मित्रका भेद करावे उन सबका त्याग देना चाहिये ॥७९॥

प्रायोगिकं मात्सरिकं माध्यस्थं पाक्षपातिकम् ।
सोपन्यासश्च जानीयाद्वचः संशयितं तथा ॥ ८० ॥

प्रयोग करनेवाले, मत्सरी, मध्यवृत्तिमे रहनेवाले, पक्षपाती, वाक्यका उपक्रम करनेवाले इनके शकित वचनोको जानना चाहिये ॥ ८० ॥

प्रकाशपक्षग्रहणं न कुर्यात्सुहृदां स्वयम् ।
अन्योन्यमत्सरश्चैषां स्वयमेवाशु धारयेत् ॥ ८१ ॥

सुहृदोंका पक्ष प्रकाशरूपसे स्वय ग्रहण न करना चाहिये, और इनके परस्पर मत्सरको स्वयही धारण करे ॥ ८१ ॥

कार्यस्य हि गरीयस्त्वान्नीचानामपि कालवित् ।
सतोऽपि दोषान् प्रच्छाद्य गुणानप्यसतो वदेत् ॥८२॥

कार्यके अधिक होनेसे समयका जाननेवाला नीचकेभी दोषोको छिपा-कर असत् भी गुणोंका उल्लेख करे चाहै उसमे दोषभी हों पर अपने कार्यके निमित्त गुणोका उल्लेख करै ॥ ८२ ॥

प्रायो मित्राणि कुर्वीत सर्वावस्थानि भूपतिः ।
बहुमित्रो हि शक्नोति वशे स्थापयितुं रिपून् ॥८३ ॥

राजा सब अवस्थामें प्राय मित्रही करतारहै बहुत मित्रवालाही शत्रु-ओको अपने वशमे करसकताहै ॥ ८३ ॥

न तत्र तिष्ठति भ्राता न पिताऽन्योऽपि वा जनः ।
पुंसामापत्प्रतीकारे सन्मित्रमं यत्र तिष्ठति ॥ ८४ ॥

जहा पुरुषोंके आपात्ति आनेपर उसके दूरकरनेमे सन्मित्र उपस्थित रहताहै उस स्थानमें भ्राता, पिता वा और कोई जन उपस्थित नही होसकता॥ ८४॥

अमित्राण्यवतो मित्रैर्न गृण्हीयाद्दृढव्रतैः ।
इति मण्डलवृत्तं हि मण्डलज्ञाः प्रचक्षते ॥ ८५ ॥

दृढमतिवाला मित्रोंसे अमित्रोंकी रक्षा करताहुआ उनका प्रहण कर इसप्रकारसे मण्डलक जाननेवालोंने मण्डलवृत्त वर्णन कियाहै ॥ ८'

मित्रोदासीनरिपव एतन्मात्र हि मण्डलम् ।
सम्यक्छोधनमेतेषामिति मण्डलशोधनम् ॥ ८६ ।

मित्र उदासीन और शत्रु यही मण्डलहैं इनकी भलीप्रकार त्याग रख मण्डलका शोध कहाताहै ॥ ८६ ॥

इति स्म राजा नयवर्त्मना व्रजन् समुद्यमी मण्डलशुद्धिमाचरन्
विराजते साधुविशुद्धमण्डलः शरच्छशीवप्रतिनन्दयन्प्रजा ८
इति का० नी० मण्डलयोनिमण्डलचरितञ्चाष्टम सर्ग ८

इसप्रकारसे राजा नीतिके मार्गमें चलताहुआ उद्योगसे मण्डल शुद्धि करताहुआ महात्माओंके विशुद्धमण्डलमें विराजमान होताहै मैं शरदके चन्द्रमाकी समान प्रजाको प्रसन्न करताहै ॥ ८७ ॥

इति कामन्दकीये नीतिसारे भाषाटीकायां मण्डलयोनिमण्डल चरितञ्चाष्टम सर्ग ॥ ८ ॥

नवम सर्ग ९



बलीयसाभियुक्तस्तु नृपोऽनन्यप्रतिक्रिय ।
आपन्न सन्धिमन्विच्छेत्कुर्वाण कालयापनाम् ॥ १ ।

जब राजा बलीशत्रुसे आक्रान्त होजाय और कोई उपाय न सूझे त विपदग्रस्त हो काल व्यतीत करता हुआ सन्धि करले ॥ १ ॥

कपाल उपहारश्च सन्तान सङ्गतस्तथा ।
उपन्यास प्रतीकार सयोग पुरुषान्तर ॥ २ ॥

कपाल उपहार, सन्तान सगत उपन्यास प्रतीकार सयोग पुरुषान्तर ?

अदृष्टनर आदिष्ट आत्मामिष उपग्रहः ।
परिक्रयस्तथोच्छिन्नस्तथा च परिभूषणः ॥ ३ ॥

अदृष्टनर, आदिष्ट, आत्मामिष, उपग्रह, परिक्रय, उच्छिन्न, परिभूषण ॥ ३ ॥

स्कन्धोपनेयः सन्धिश्च षोडशः परिकीर्त्तितः ।
इति षोडशकं प्राहुः सन्धि सन्धिविचक्षणाः ॥ ४ ॥

और स्कन्धोपनेय सन्धि कार्य कुशलपुरुषोंने यह सोलह प्रकारकी सधिकही है ४

कपालसन्धिर्विज्ञेयः केवलं समसन्धितः ।
सम्प्रदानाद्भवति य उपहारः स उच्यते ॥ ५ ॥

बराबरवालेसे मेलकरनेका नाम कपालसधिहै, जो द्रव्यदेनेसे होती है वह उपहारसधि कहातीहै ॥ ५ ॥

सन्तानसन्धिर्विज्ञेयो दारिकादानपूर्वकः ।
सद्भिः सङ्गतसन्धिस्तु मैत्रीपूर्व उदाहृतः ॥ ६ ॥

कन्यादान करनेसे सतानसधि कहाती है, श्रेष्ठोंके साथ मित्रता करनेसे सगतसधि होती है ॥ ६ ॥

यावदायुःप्रमाणस्तु समानार्थप्रयोजनः ।
सम्पत्तौ च विपत्तौ च कारणैर्यो न भिद्यते ॥ ७ ॥

जबतक जियेंगे तबतक तुल्य अर्थके प्रयोजन वाली सम्पत्ति विपत्तिमें जो किसी कारणसे भी नहीं टूटैगी ॥ ७ ॥

सङ्गतः सन्धिरेवैष प्रकृष्टत्वात्सुवर्णवत् ।
सोऽपरैः सन्धिकुशलैः काञ्चनः परिकीर्त्तितः ॥८॥

यह सगतसधि अत्युत्तम होनेसे सुवर्णके समान है और दूसरे सन्धिके जाननेवालोंने इसको काचनसधि कहाहै ॥ ८ ॥

भव्यामेकार्थसंसिद्धिं समुद्दिश्य क्रियेत यः ।

स उपन्यासकुशलैरुपन्यास उदाहृतः ॥ ९ ॥

जो किसी श्रेष्ठ कार्यके सिद्धिके लिये सधि की जाती है उसको न्यासज्ञाताओंने उपन्याससधि कहा है ॥ ९ ॥

मयास्योपकृतं पूर्वं ममाप्येष करिष्यति ।

इति य क्रियते सन्धि प्रतीकार स उच्यते॥१०

मैंने पहले इसका उपकार किया है यहभी मेरा उपकार करेगा इ निमित्त जो सधि कीजाती है उसे प्रतीकारसंधि कहते हैं ॥ १० ॥

उपकार करोम्यस्य ममाप्येष करिष्यति ।

अयञ्चापि प्रतीकारो रामसुग्रीवयोरिव ॥ ११ ॥

मैं इसका उपकार करता हूं यह भी मेरा उपकार करैगा राम सुग्रीव समान यहभी प्रतीकारसंधि कहाती है ॥ ११ ॥

एकार्थां सम्यगुद्दिश्य क्रिया यत्राभिगच्छतः ।

स संहितप्रयाणस्तु सन्धि संयोग उच्यते ॥ १२ ॥

एक अर्थको भलीप्रकारसे उद्देश करके जहां अच्छेप्रकार गमन क हुए संधि होतीहै वह संहितप्रयाणवाली संयोगसंधि कहाती है ॥ १२

आवयोर्योधमुख्याभ्यां मदर्थं साध्य इत्यपि ।

यस्मिन् पण प्रक्रियते स सन्धिः पुरुषान्तर ॥१३

हम दोनोंके मुख्य योधाओंसे हमारा प्रयोजन सिद्ध हो ऐसा जिसमें किया जाता है वह पुरुषान्तरसंधि है ॥ १३ ॥

त्वयैकेन मदीयार्थं सम्प्रसाध्यस्त्वसाविति ।

यत्र शत्रु पण कुर्यात्सोऽदृष्टपुरुष स्मृत ॥ १४ ॥

तुम इकलेही इस मेरे प्रयोजनको भलीप्रकारसे सिद्ध करो जिसमें श ऐसा प्रण करे वह अदृष्टपुरुषसंधि है ॥ १४ ॥

यत्र भूम्येकदेशेन पणेन रिपुर्वर्जितः ।
सन्धीयते सन्धिविद्भिरादिष्टः सन्धिरुच्यते ॥ १५ ॥

जहाँ पृथ्वीका कुछ अंश देकर मेल किया जाताहै उसे संधिज्ञाताओंने आदिष्टसंधि कहाहै ॥ १५ ॥

स्वसैन्येन तु सन्धानमात्मामिष इति स्मृतः ।
क्रियते प्राणरक्षार्थे सर्वदानादुपग्रहः ॥ १६ ॥

अपनी सेनासे जो संधि की जाती है, वह आत्मामिषहै, और जो प्राणरक्षाके लिये सर्वस्व दान करना है वह उपग्रहसंधि है ॥ १६ ॥

कोपांशेनाथ कुप्येन सर्वकोपेण वा पुनः ।
शेषप्रकृतिरक्षार्थे परिक्रय उदाहृतः ॥ १७ ॥

जो कुछ कोशके अंशसे वा सब कोश देकर शेष प्रजाकी रक्षाके लिये संधि कीजाती है उसका नाम परिक्रय संधि कहा है ॥ १७ ॥

भुवां सारवतीनान्तु दानादुच्छिन्न उच्यते ।
सर्वभूम्युत्थितफलादानेन परिभूषणः ॥ १८ ॥

सारवाली उपजाऊ भूमिके देनेसे मेल करनेको उच्छिन्नसंधि कहतेहैं, पृथ्वीसे उत्पन्न सब अन्न फलादिके देनेसे परिभूषणसंधि कहाती है ॥ १८ ॥

परिच्छिन्नं फलं यत्र स्कन्धः स्कन्धेन दीयते ।
स्कन्धोपनेयं तं प्राहुः सन्धिं सन्धिविदोजनाः ॥ १९ ॥

जहां थोडे फलादि थालीमें रख कन्धेपर लेजाकर भृत्यजन देतेहैं, संधि जाननेवालोंने उसको स्कन्धोपनेयसंधि कहाहै ॥ १९ ॥

परस्परोपकारश्च मैत्रं सम्बन्धजस्तथा ।
उपहारश्च विज्ञेयाश्चत्वारस्ते च सन्धयः ॥ २० ॥

परस्पर उपकार, मित्रता, सम्बन्ध और भेंट यह चार संधि विशेष रूपसे कही है ॥ २० ॥

एक एवोपहारस्तु सन्धिरेतन्मतं हि न ।
उपहारस्य भेदास्तु सर्वेऽन्ये मैत्रवर्जिता' ॥ २१ ॥

हमारे मतमें एक उपहारसंधिही भेद और सब उपहारके भेद हैं वे मित्रतामें वर्जित हैं ॥ २१ ॥

अभियोक्ता बली यस्मादलब्ध्वा न निवर्त्तते ।
उपहारादृते तस्मात्सन्धिरन्यो न विद्यते ॥ २२ ॥

बली चढाई करनेवाला विना लोभके निवृत्त नहीं होता, उससे उपहारके सिवाय दूसरी सन्धि है ही नहीं ॥ २२ ॥

बालो वृद्धो दीर्घरोगस्तथा ज्ञातिबहिष्कृत ।
भीरुको भीरुकजनो लुब्धो लुब्धजनस्तथा ॥ २३ ॥

बालक बूढा दीर्घकालका रोगी, ज्ञातिसे बाहर डरपोक, डरपोक मनुष्य लोभी लुब्धजन ॥ २३ ॥

विरक्तप्रकृतिश्चैव विषयेष्वतिशक्तिमान् ।
अनेकचित्तमन्त्रस्तु देवब्राह्मणनिन्दक' ॥ २४ ॥

विरक्तस्वभाववाला विषयोंमें अतितत्पर, अनेक चित्तोंके साथ मन्त्र सम्मति करनेवाला, देवता और ब्राह्मणोंकी निन्दा करनेवाला ॥ २४ ॥

दैवोपहतकश्चैव दैवचिन्तक एव च ।
दुर्भिक्षव्यसनोपेतो बलव्यसन सङ्कुल ॥ २५ ॥

तथा दैवसे हतहुआ और प्रारब्धपरही भरोसा करनेवाला दुर्भिक्षव्यसनमें लगाहुआ सेनाकी आपत्तिसे युक्त ॥ २५ ॥

अदेशस्थो बहुरिपुर्युक्त कालेन यश्च न ।
सत्यधर्मव्यपेतश्च विंशतिः पुरुषा अमी ॥ २६ ॥

कदेशमें वा दूसरोंके देशमें स्थित बहुत शत्रुवाला जो समयपर प्रतिज्ञाकर

स्थित नही रहना, और सत्यधर्मसे रहित यह वीस प्रकारके पुरुषहै ॥२६॥

एतैः सन्धि न कुर्वीत विगृण्हीयाच्च केवलम् ।
एते विगृह्यमाना हि क्षिप्रं यान्ति रिपोर्वशम् ॥ २७ ॥

इनसे सधि न करै, केवल विग्रहही करै यह विग्रहको प्राप्त होकर शीघ्रही शत्रुके वशमे होजाते है ॥ २७ ॥

बालस्य ह्यप्रभावत्वान्न लोको योद्धुमिच्छति ।
योद्धु स्वप्रयशक्तस्य परार्थेकोहि युद्ध्यते ॥ २८ ॥

बालक तौ प्रभावशील नहिहोता इसकारण उससे कोई युद्धकीइच्छा नही करता जो स्वय असमर्थ है दूसरेके निमित्त उससे कौन युद्धकरेगा ॥२८॥

उत्साहशक्तिहीनत्वाद्वृद्धो दीर्घामयस्तथा ।
स्वैरेव परिभूयेते द्वावप्येतावसंशयम् ॥ २९ ॥

वृद्ध और दीर्घरोगी उत्साह तथा शक्तिहीन होनेसे यह दोनों स्वयही तिरस्कृत रहतेहै ॥ २९ ॥

सुखोच्छेद्यस्तु भवति सर्वज्ञातिबहिष्कृतः ।
त एवैनं विनिघ्नन्ति ज्ञातयः स्वार्थसत्कृताः ॥ ३० ॥

और सब जातियोंसे बाहर कियाहुआ सुखसे छेदन करनेके योग्य होताहै और वे ज्ञातिके लोग अपने स्वार्थके वश होकर स्वयही इसको मारतेहै ३०॥

भीरुर्युद्धपरित्यागात्स्वयमेवावसीदति ।
धीरोऽप्यवीरपुरुषैः संग्रामे तैर्विमुच्यते ॥ ३१ ॥

डरपोक युद्धके त्यागसे स्वयही नष्ट होताहै, धीरपुरुष भी कायरपुरुषोंके साथ हो तो सग्राममे उनके सहित उसको निवृत्त होना पडताहै ३१॥

लुब्धस्यासंविभागित्वान्न युद्ध्यन्तेऽनुजीविनः ।
लुब्धानुजीवितैरेव दानभिन्नैर्निहन्यते ॥ ३२ ॥

लोभीके धन न देनेके कारण अनुजीवी युद्ध नहीं करते हैं, और वा लोभी दानके न करनेसे उन अनुजीवियोंसेही मारदिया जाताहै ॥ ३२ ॥

सन्त्यज्यते प्रकृतिभिर्विरक्तप्रकृतिर्युधि ।
सुखाभियोज्यो भवति विषयेऽप्यतिसक्तिमान् ॥ ३३ ॥

और विरक्तप्रकृतिवाले राजाको युद्धमेंही उसकी सेना त्याग देतीहै और विषयोंमें अतिआसक्त पुरुष सुखसे जीतलिया जाताहै ॥ ३३ ॥

अनेकचित्तमन्त्रस्तु द्वेष्यो भवति मन्त्रिणाम् ।
अनवस्थितचित्तत्वात्कार्य्ये ते स उपेक्ष्यते ॥ ३४ ॥

अनेकोंके साथ सम्मतिवाला मन्त्रियोंसे दूषित होजाताहै और अनवस्थित [चंचल] चित्त होनेसे कार्यमें वे मन्त्री उसकी उपेक्षा करदेतेहैं ॥ ३४ ॥

सदा धर्म्मबलीयस्त्वाद्देवब्राह्मणनिन्दका ।
विशीर्य्यन्ते स्वयञ्चैव दैवोपहतकास्तथा ॥ ३५ ॥

और देवब्राह्मणकी निन्दा करनेवाला अधर्मी होनसे निर्बल होताहै और धर्मही सदा बली है इसकारण वह पराजित होताहै और दैवसे हतहुए स्वयंही नष्ट होजातेहैं ॥ ३५ ॥

सम्पत्तेश्च विपत्तेश्च दैवमेव हि कारणम् ।
इति दैवपरो ध्यायन्नात्मना न विचेष्टते ॥ ३६ ॥

सम्पत्ति और विपत्तिमें दैवही कारणहै इसप्रकार दैवको प्रधान माननेवाला स्वयं कुछ चेष्टा नहीं करता ॥ ३६ ॥

दुर्भिक्षव्यसनी चैव स्वयमेवावसीदति ।
बलव्यसनसक्तस्य योद्धुं शक्तिर्न जायते ॥ ३७ ॥

दुर्भिक्ष और आपत्तिग्रस्त स्वयंही नष्ट हुआहै और सेनाके व्यसनको प्राप्तहुआ राजा युद्धकी शक्तिही नहीं रखता ॥ ३७ ॥

अदशस्थो हि रिपुणा स्वल्पकेनापि हन्यते ।

ग्राहोऽल्पीयानपि जले गजेन्द्रमपकर्षति ॥ ३८ ॥

अदेशमे स्थित राजा छोटे शत्रुसेभी परास्त होजाताहै थोडे जलमें स्थित
।। भी ग्राह हाथीको खैचलेताहै ॥ ३८ ॥

बहुमित्रस्तु सन्त्रस्तः श्येनमध्ये कपोतवत् ।
येनैव गच्छति पथा तेनैवाशु विनश्यति ॥ ३९ ॥

बहुत शत्रुओंसे भयभीत हुआ राजा गृद्धोंके मध्यमें कबूतरकी समान
।स मार्गमे गमन करे उसीमे शीघ्र नष्ट होताहै ॥ ३९ ॥

अकालयुक्तसैन्यस्तु हन्यते कालयोधिना ।
कौशिकेन हतज्योतिर्निशीथ इव वायसः ॥ ४० ॥

अकालमें सेनाके उपयोग करनेवालेको समयपर युद्धकरनेवाला मारताहै, जैसे रातमे ज्योतिहत होजानेसे कौएको उल्लू मारतेहै ॥ ४० ॥

सत्यधर्मव्यपेतेन न सन्दध्यात्कथञ्चन ।
स सन्धितोऽप्यसाधुत्वादचिराद्याति विक्रियाम् ॥ ४१ ॥

सत्य, धर्मसे रहितके साथ कभी सन्धि न करे, वह सन्धित होनेसे भी असाधुताके कारण शीघ्रही विकारको प्राप्त होताहै ॥ ४१ ॥

सत्यार्यधार्मिकानार्यभ्रातृसङ्घातवान् बली ।
अनेकविजयी चेति सन्धेयाः सप्त कीर्त्तिताः ॥ ४२ ॥

सत्यवादी, आर्य, श्रेष्ठ धर्मके अनुष्ठाता, अनार्य बन्धुओंसे युक्त, बलवान्, अनेकोको जीतनेवाले यह सात प्रकारके पुरुष सन्धि करनेके योग्य है ४२

सत्यञ्च पालयन्सत्यसन्धितो नेति विक्रियाम् ।
प्राणबाधेष्वपि व्यक्तमार्यो नो यात्यनार्यताम् ॥ ४३ ॥

सत्यसंधपुरुष सत्यका पालन करताहुआ कभी विकारको प्राप्त नहीं होता चाहै प्राणबाधाभी उपस्थित होजाय, पर आर्य्यपुरुष कभी अनार्यपनको प्राप्त नही होता ॥ ४३ ॥

धार्मिकस्याभियुक्तस्य सर्व एव हि युध्यते ।
प्रजानुरागधर्म्माभ्यां दुःसच्छेद्यो हि धार्मिकः ॥ ४४

धर्म्मात्मापर विपत्ति आनेसे सबही युद्ध करते हैं प्रजाका अनुराग धर्म होनेसे वह बड़ी कठिनाईसे जीता जाता है ॥ ४४ ॥

सन्धिं कार्योऽप्यनार्येण सम्प्राप्योत्सादयेद्धि स ।
रेणुकाया सुत इव मूलेष्वपि न तिष्ठति ॥ ४५ ।

अनार्यके साथ भी सन्धि करै । कारण कि, वह मालकर सबही प्र करदेता है वह रेणुका पुत्र परशुरामके समान अपने मूलमें भी ति नहीं रहता ॥ ४५ ॥

सङ्घातवान्यथा वेणुर्निबिडः कण्टकैर्वृतः ।
न शक्यते समुच्छेत्तुं भ्रातृसङ्घातवांस्तथा ॥ ४६

जिसप्रकारसे घने मिलेहुए बाँस घनिष्ठ और काँटोंसे युक्त होजाते और वह अच्छेद्य होजाते हैं इसीप्रकार कुटुम्बी पुरुष सहजमें नहीं कियाजाता ॥ ४६ ॥

समाक्रान्तस्य बलिना सर्व्वयत्नवतोऽपि हि ।
हरिणस्येव सिंहेन शरणं नेह विद्यते ॥ ४७ ॥

सम्पूर्ण यत्न करनेवाला भी बली पुरुषोंसे आक्रान्त होकर सिंहसे हरिणकी समान शरणको प्राप्त नहीं करसकता ॥ ४७ ॥

ईषदाच्छिद्यमानो हि सिंहो मत्तमिव द्विपम् ।
हिनस्ति बलवांस्तस्मात्सन्धेयः शिवमिच्छता ॥ ४८

थोड़ासा छेदा हुआ भी सिंह मतवाले हाथीको मारदेता है इसका बलवानको न छेड़े उससे सन्धि रक्खै ॥ ४८ ॥

बलिना सह योद्धव्यमिति नास्ति निदर्शनम् ।
प्रतिवातम् हि घनः कदाचिदुपसर्पति ॥ ४९ ॥

बलिके साथ निर्बलको युद्ध करना चाहिये, ऐसा कोई दृष्टान्त नहीं कभी भी मेघ पवनके प्रतिकूल नहीं चलता है ॥ ४९ ॥

बलीयसि प्रणमतां काले विक्रमतामपि ।
सम्पदो नापसर्पन्ति प्रतीपमिव निम्नगाः ॥ ५० ॥

समयपर पराक्रम करनेवाले तथा नम्र होनेवाले बलवान् पुरुषकी सम्पत्ति नी नहीं जाती जैसे नीचानकी ओर बहनेवाली नदियें कभी नीचानकी र आना नहीं छोडती ॥ ५० ॥

जमदग्नेः सुतस्येव सर्वः सर्वत्र सर्वदा ।
अनेकयुद्धजयिनः प्रतापादेव भुज्यते ॥ ५१ ॥

जमदग्निके पुत्र परशुरामकी समान सबही सर्वत्र सब जगह अनेक युद्ध जीतनेवाले अपने प्रतापसेही भोग करते हैं ॥ ५१ ॥

अनेकयुद्धविजयी सन्धानं यस्य गच्छति ।
तत्प्रतापेन तस्याशु वशं गच्छन्ति शत्रवः ॥ ५२ ॥

अनेक युद्धोंके जीतनेवालेकी जिसके साथ संधि होजाती है उसके प्रतासे शीघ्रही उसके शत्रु उसके वशीभूत होजाते हैं ॥ ५२ ॥

न जातु गच्छेद्विश्वासं सन्धितोऽपि हि बुद्धिमान् ।
अद्रोहसमयं कृत्वा वृत्रमिन्द्रः पुराऽवधीत् ॥ ५३ ॥

सन्धि करके भी बुद्धिमान् किसीका विश्वास न करै मैं फिर वैर न करूंगा यह कहकर भी इन्द्रने वृत्र असुरको मारडाला ॥ ५३ ॥

विकारं याति पुत्रो हि राज्यान्नीचः पिता तथा ।
तल्लोकवृत्तान्नृपतेरन्यद्वृत्तं प्रचक्षते ॥ ५४ ॥

१ जब एक समय वृत्रासुरका प्रताप अधिक बढा और वह इन्द्रलोकको तपसे जय करने लगा, और इन्द्रसे युद्धकी आकांक्षा की, तब इन्द्रने उसे विश्वास दिलाया कि, हम तुमसे शत्रुता न करेंगे पीछे उस तप करते हुएको अस्त्रसे संहार किया।

जिस बतावसे पुत्र निश्चय विकारी होजाता (बिगड़जाता) है जिस बर्तावसे राजा 'पिता' नीच विकारी होजाता है राजाका यह ॥ ८ रम्यवहारसे भिन्न कहाजाता है अर्थात् विरुद्ध है ॥ ५४ ॥

अभियुक्तो बलवता तिष्ठन्दुर्गे प्रयत्नवान् ।
तद्बलीयस्तराह्वान कुर्वीतात्मविमुक्तये ॥ ५५ ॥

जब राजा बलवान्की चढ़ाईसे अभियुक्त हो तो यत्नपूर्वक दुर्गमें रहे और अपने छुटकारेके निमित्त शत्रुसे अधिक बलीका आह्वान करे ॥

स्वोत्साहशक्तिमुद्वीक्ष्य विगृण्हीया महच्चरम् ।
कसरीव द्विपमिति भारद्वाज प्रभाषते ॥ ५६ ॥

अपनी उत्साहशक्तिको देखकर महान् पुरुषके साथ विग्रह करे सिंह हाथीपर झपटता है यह भरद्वाजने कहा है ॥ ५६ ॥

एकोऽपि सिंह साहस्रं यूथ मथ्नाति दन्तिन ।
तस्मात्सिंह इवोदममात्मान वीक्ष्य सम्पतेत् ॥ ५७

एक सिंहभी सहस्रों हाथियोंके यूथको मथ डालता है इसकारण इकी समान अपनेको उदम देखकर आक्रमण करे ॥ ५७ ॥

ज्यायांस हि ससैन्यस्य यलाद्विक्रम्य निघ्नत ।
प्रतापसिद्धो सर्वत्र भवन्ति रिपवोऽपरे ॥ ५८ ॥

बलपूर्वक सेनाको लिये बड़े शत्रुकोभी मारता हुआ प्रतापसे बढता प्रताप सिद्धिमें सर्वत्र दूसरे शत्रु होते हैं ॥ ५८ ॥

सन्धिमिच्छेत्समेनापि सन्दिग्धो विजयो युधि ।
न हि सशयित कुर्यादित्युवाच बृहस्पति ॥ ५९

जो युद्धमें सन्देह हो तो समानके साथ भी सन्धि करे, सन्दिग्ध न करे ऐसा बृहस्पतिने कहा है ॥ ५९ ॥

तत्सम्भवृद्धेरतिवृद्धिकामः समेन सन्धानमिहोपगच्छेत् ।
अपक्वयोर्वा घटयोरवश्यमन्योन्यभेदीसमसन्निपातः॥६०॥

उसकी वृद्धिसे अपनी वृद्धिकी इच्छा करता हुआ समान पुरुषके साथ साधि करे, यदि दोनो घडे कच्चे हो तो उनके परस्पर भेदसे अवश्य उनका नाश होजाताहै ॥ ६० ॥

नाशो भवति युद्धेन कदाचिदुभयोरपि ।
सुन्दोपसुन्दावन्योन्यं समवीर्यौ हतौ न किम्॥ ६१ ॥

और कदाचित् युद्धमे दोनोकाही नाश होजाताहै क्या युद्धमें सुन्द और उपसुन्द दोनोंही परस्पर नहीं मारेगये "यह दोनों भ्राता एक स्त्री पर मोहित होगये उसस्त्रीने कहा तुम दोनोंमें जो वली होगा उसे वरूगी यह दोनों परस्पर युद्ध करते २ मरगये इसप्रकार मायासे दोनों अजेय निशाचर मारेगये" ॥ ६१ ॥

विहीनोऽपि सुसन्धोऽपि व्यसने रिपुरागतः ।
पतन्दुनोति हिमवत्तोयबिन्दुरिव क्षितौ ॥ ६२ ॥

जनोसे विहीन तथा भलीप्रकार सन्धानको प्राप्त हुआ भी व्यसनमें प्राप्त होकर आयाहुआ शत्रु पृथ्वीमें पतित हुए जलबिन्दुके समान गिरकर दुःखी होताहै अथवा जैसे हिमबिन्दु पृथ्वीमे गिरकर शीर्ण होताहै तैसे वह राजा दुःखी होताहै ॥ ६२ ॥

न सन्धिमिच्छेद्धीनैश्च तत्र हेतुरसंशयः ।
तस्य विश्रम्भमालभ्य प्रहरेत्तं गतस्पृहः ॥ ६३ ॥

हीनपुरुषके साथ कभी सन्धि न करे इसमें सन्देह नही कि,उसके साथ विश्वासपूर्वक वातचीत करनेसे वह अवसर पाकर अवश्य प्रहार करैगा ६३

वलीयसाभिसन्धाय तं प्रविश्य प्रतापवान् ।
तथा साध्वनुगन्तव्यो यथा विश्रम्भमाप्नुयात् ॥६४॥

बलवान्के साथ सन्धि करके तथा उसके हृदयमें प्रवेश करके प्रधान पुरुष उसका इसप्रकार अनुगमन करे जिससे वह विश्वासको प्राप्त होजाय ६४

विश्रम्भी नित्यमुपयुक्तो निगूढाकारचेष्टितः ।

प्रियाण्येवाभिभाषेत यत्कार्यं कार्य्यमेव तत् ॥ ६५ ॥

विश्वासको प्राप्तकरताहुआ नित्य उद्योगी अपना आकार और चेष्टा छिपाये हुए प्रियवचन बोलता हुआ कार्यको साधताहै ॥ ६५ ॥

विश्रम्भात्प्रियतामेति विश्रम्भात्कार्यमृच्छति ।

विश्रम्भेण हि देवेन्द्रो दितेर्गर्भमपातयत् ॥ ६६ ॥

विश्वाससेही प्रियताको प्राप्त होताहै, विश्वाससेही कार्यकी सफलताको प्राप्त होताहै देखो विश्वाससेही इन्द्रने दितिका गर्भ नष्ट करदियाथा× ॥ ६६ ॥

युवराजेन सन्धाय प्रधानपुरुषेण वा ।

तत्र प्रकोपं जनयेदमियोक्तुः स्थिरात्मनः ॥ ६७ ॥

युवराज वा प्रधानपुरुषसे मेलकरके पीछे चढाई करनेको स्थिरमतिवाले पर क्रोध करे ॥ ६७ ॥

अथोत्सर्गेण महता लेखैश्चाप्यात्मसहितैः ।

प्रधानपुरुषस्येह प्रकुर्वीतात्मदूषणम् ॥ ६८ ॥

विशेष धनादिक दानसे अपनी ओरके लेखोंसे तथा प्रधानपुरुषोंसे इस शत्रुको दूषित करावे अथवा इस शत्रुराजाके प्रधानपुरुषको दूषित करावे ६८

× एक समय इन्द्रपुत्रा दितिने कश्यपजीको प्रसन्नकर यह बरमांगा कि मेरे ऐसा पुत्र हो जो इन्द्रको मारे उन्होंने तथास्तु कह एक व्रत बताया और कहा यावत्के प्रसव होनेतक सर्वथा शुद्ध रहना यह कह उसको आलिंगनकर कश्यपजी चलेगये दिति गर्भ धारणकर शुद्धतासे रहने लगी इन्द्र इस मर्मको जानकर दितिकी सेवा करने लगे एकदिन दिति अशुचि मुखसे शयनकरी और मुखपर चोटी या देखकर इन्द्र वज्र ले दितिके उदरमें प्रवेश कर गये और गर्भके ४९ खण्ड करडाले और इन्द्र उन सबके साथ बाहर आये येही सब मरुत कहाये ।

दूषिते हि महामात्रे रिपुरुग्रोऽपि धीमता ।
स्वपक्षे यस्य विश्वास इत्थं भूतश्च निष्क्रियः ॥ ६९ ॥

जिस समय प्रधानपुरुष दूषित होजाय तो बुद्धिमान् उग्र शत्रुभी अपने पक्षमें जिसका विश्वास हो उसेही नियत करे यह निश्चयहै ॥ ६९ ॥

अरेरमात्यान्सन्धाय तदवस्थं समुन्नयेत् ।
भिषग्भेदेन वा शत्रुं रसदानेन साधयेत् ॥ ७० ॥

शत्रुके अमात्योंसि मेलकर उस राजाको अपने वशीभूत करे अथवा किसी वैद्यसे मिलकर कोई रस दिवाय शत्रुको साधे ॥ ७० ॥

अरेः सर्वप्रयत्नेन पश्चात्कोपं प्रकल्पयेत् ।
पश्चात्कोपमथातिष्ठन्ननुस्मृत्य प्रसाधयेत् ॥ ७१ ॥

सब प्रयत्नसे शत्रुको वशीभूत करके पीछे उसपर क्रोध दिखावे और उसके कार्योंको स्मरणकर क्रोधको प्राप्त हो अपना कार्य साधे ॥ ७१ ॥

उद्देशकृतसंवासैश्चरैर्नैमित्तिकैररेः ।
उपोढव्यसनादेशं कारयेत्साधुलक्षणैः ॥ ७२ ॥

किसी बहानेसे उसके देशमें अपने पुरुषोंका निवास कराकर तथा नैमित्तिक कार्यवश अपने दूतोंको भेजकर जो अच्छे लक्षणवाले हो उनसे राजाके देशको व्यसनसयुक्त करे ॥ ७२ ॥

क्षयव्ययायासवधादिदोषं व्यपेक्षयावेक्षितसाधुकृत्यः ।
कामात्तुपीडामपिकाञ्चिदिच्छेन्न विग्रहं तत्प्रभवा हिदोषाः ७३

क्षय, विशेपखर्च, श्रम और वधादि दोषको विचारता हुआ अथवा साधुकृत्य दिखाता हुआ किसी कामनासे वृथा पीडा देनेकी इच्छा न करे न विग्रह करे। कारण कि, विग्रहसेही क्षय, व्यय आदि दोष उत्पन्न होतेहै ॥ ७३ ॥

आत्मा बलं वा सुहृदो धनानि वृथा भवन्तीह निमेषमात्रात् ।

मुहुर्मुहुश्चाकुलितानिवानि तस्मान्न विद्वानतिविग्रही स्यात् ७४

अपना शरीर, बल सुहृद्वर्ग और धन यह एक पलकमात्रमें दूसरे होजाते हैं और वे सब वारवार व्याकुल होते हैं इसकारण विद्वानको अतिविग्रह नहीं करना चाहिये ॥ ७४ ॥

सुहृद्धनं तथा राज्यमात्मानं कीर्त्तिमेव च ।

युधि सन्देहदोलास्थं कोहि कुर्यादबालिशः ॥ ७५ ॥

अपने सुहृद्, धन, राज्य, आत्मा और कीर्ति यह युद्धकी तराजूमें स्थित होजाते हैं जाने किधरका पल्ला भारी होजाय तो ऐसी मूर्खताका कामको कौन करै ॥ ७५ ॥

साम्ना प्रदानेन विभेदनेन सन्तापयेत्साध्वभियुज्यमानः ।

सन्धित्सुरेवास्य चसेत यावन्न सीमान्त्वमायान्तमपेतसन्धिम् ७६

चढ़ाईवालेसे युक्त हुआ साम, दान और भेदसे शत्रुको सन्तापित करे, और सन्धिकी इच्छावाला जबतक शत्रुकी सेना सीमापर न आस्थित हो तबतक संधिकी इच्छा करै और जब सीमापर आजाय तब सन्धि नहीं है ७६

सुगुप्तिमाधाय सुसंहतेन बलेन धीरो विचरन्नरातिम् ।

सन्तापयेयेन सुसम्पतप्तस्तेन न सन्तापमुपैति तप्तः ॥ ७७ ॥

अपनी सेनाके सहित रक्षामें स्थित होकर धैर्यवान् अपनी सेनाके साथ विचरण करता हुआ शत्रुको सन्तापित करे और स्वय सन्तप्त हो तो भी उसे सन्ताप देनेका उद्योग करे। कारण कि, सन्तप्तसे संतापित होकर दूसरा भी सन्तापको प्राप्त होता है ॥ ७७ ॥

इति स्म सन्धिं खलु सन्धिविच्चमा बभाषिरे पूर्वतरा महर्षयः ।

सदेशदेशं विजयन्नरेश्वरः समीक्ष्य कार्यं गुरु चेति सद्विधा ७८

इति श्रीकामन्दकीये नीतिसारे सन्धिविकल्पो नाम

नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

सन्धिके जाननेवाले पूर्वकालीन महर्षियोने इसप्रकारसे सन्धिका विस्तार कथन किया है, सो राजा इसप्रकारसे देखभालकर विचारसे कार्य करताहुआ विजयको प्राप्तहोता है और इसप्रकारके ज्ञाता श्रेष्ठ होते है ॥७८॥

इति श्रीकामन्दकीये नीतिसारे भाषाटीकाया सन्धिविकल्पो नाम नवम सर्ग ॥ ९ ॥

दशमः सर्गः १०.



अमर्षोपगृहीतानां मन्युसन्तप्तचेतसाम् ।
परस्परापकारेण पुंसां भवति विग्रहः ॥ १ ॥

दोनोओर क्रोधको ग्रहण किये हुए क्रोधसेही सन्तप्त चित्तवाले परस्पर अपकारको प्राप्तहुए पुरुषोका विग्रह उपस्थित होता है ॥ १ ॥

आत्मनोऽभ्युदयाकाङ्क्षी पीड्यमानः परेण वा ।
देशकालबलोपेतः प्रारभेत हि विग्रहम् ॥ २ ॥

अपने अभ्युदयकी इच्छा करनेवाला, अथवा शत्रुसे पीडित हुआ अच्छे देशकाल और सेनासे युक्त होकर विग्रह आरम्भ करै ॥ २ ॥

राज्यस्त्रीस्थानदेशानां यानस्य च धनस्य च ।
अपहारो मदो मानः पीडा वैषयिकी तथा ॥ ३ ॥

राज्य, स्त्री, स्थान, देश, देशको पीडित सवारी, धन इनका हरणकर लेना, मद मान होना, करना ॥ ३ ॥

ज्ञानार्थधर्मशक्तीनां विघातो दैवमेव च ।
मित्रार्थश्चापमानश्च तथा बन्धुविनाशनम् ॥ ४ ॥

अपनी धर्मशक्तिके ज्ञानके निमित्त अथवा दैवके रुष्ट होनेसे, मित्रके निमित्त, वा अपमान होनेसे तथा बन्धुविनाशके कारणसे ॥ ४ ॥

भूतानुग्रहविच्छेदस्तथा मण्डलदूषणम् ।
एकार्थाभिनिवेशित्वमिति विग्रहयोनय ॥ ५ ॥

प्राणियोंके अनुग्रहके बिगडनेसे, वा मण्डलके दूषित करनेसे तथा प्रयोजनमें दोनोंके लगनेसे विग्रह उपस्थित होता है ॥ ५ ॥

राज्यस्त्रीस्थानदेशानां दानेन च मदेन च ।
विग्रहस्य तु युक्तिज्ञैरिति प्रशमन स्मृतम् ॥ ६ ॥

युक्तिके जाननेवालोंने राज्य स्त्री, स्थान और देशोंके निमित्त विग्रह उपस्थित हुआ है उसकी शान्ति उसके लौटादेनेसे कही है, प्रकारसे उसकी शान्ति करे ॥ ६ ॥

एतदेव तु विज्ञेय स्वार्थधर्मविघातजे ।
विपयध्वसजे शत्रोर्विषयप्रतिपीडनम् ॥ ७ ॥

यही बात अपने स्वार्थ और धर्मके विघात हुए विग्रहमें जान जिसने अपना देशध्वस कियाहो उस शत्रुका देश पीडित करनेसे वह वि ह शान्त होता है ॥ ७ ॥

यानापहारसम्भूते ज्ञानशक्तिविघातजे ।
समस्तवदर्थश्वाक्षेन क्षान्त्या चोपेक्षणेन च ॥ ८ ॥

जो सवारी आदिके हरणसे विग्रह उपस्थितहो वा ज्ञान और ज्ञानशक्ति विघातसे उत्पन्न हुए विग्रहमें छेडीहुई वस्तुके फेर देनेमें ज्ञानशक्ति घातकी उपेक्षा करनेसे विग्रह शान्त होताहै या दोनों प्रकारके विग्रह स सहिष्णुतासे शान्त होजाते हैं ॥ ८ ॥

अधर्मद्रोहसम्पृक्ते मित्रजात उपेक्षणम् ।
आत्मवान्मित्रवर्गे तु प्राणानपि परित्यजेत् ॥ ९ ॥

अधर्म द्रोहसे विग्रह होनेमें तथा मित्रके साथ किसीने बिगाड कि

तो वह अपेक्षासे शान्त होजाता है, परन्तु बुद्धिमान मित्रवर्गके विरोधी साथ विग्रह करके प्राणभी समर्पण करदे ॥ ९ ॥

अपमानात्तु सम्भूतं मानेन प्रशमं नयेत् ।
सामपूर्व उपायो वा प्रणामो वाभिमानजे ॥ १० ॥

जो अपमानसे विग्रह उपस्थित हुआहो उसको मान देकर शान्त करै ो अभिमानसे उत्पन्न हुआ हो उसको सामपूर्वक उपाय और प्रणामसे ान्त करै ॥ १० ॥

विग्रहं नाशयेद्वीरो बन्धुनाशसमुद्भवम् ।
येन पीडा न जायेत तादृशं सुविचक्षणः ॥ ११ ॥

जो विग्रह बन्धुके नाशसे उत्पन्न हुआहो इसमे बुद्धिमान् वह उपाय करे जिसमें शत्रुको घोर पीडा उपस्थित हो इसका यही उपाय है ॥ ११ ॥

कुर्यादर्थपरित्यागमेकार्थाभिनिवेशजे ।
धनापचारजाते तन्निरोधं न समाचरेत् ॥ १२ ॥

जो एकही प्रयोजनके निमित्त विग्रह उपस्थित हुआ हो उन दोनोमेसे एकको अपना प्रयोजन त्याग देना चाहिये जो धनके अपचारसे हुआ हो फिर उसका निरोध न करनेसे वह विग्रह शान्त होजाता है ॥ १२ ॥

कदाचिद्विग्रहे पुंसां सर्वनाशस्तु जायते ।
महाजनसमुत्पन्नं भेदेन प्रशमं नयेत् ॥ १३ ॥

कारण कि, विग्रह करनेमे पुरुषोंका कभी २ सर्वनाश होजाता है, और महाजनोंद्वारा उत्पन्न विग्रहको भेदसे शान्त करै ॥ १३ ॥

भूतानुग्रहविच्छेदजाते तत्र वदेत्प्रियम् ।
दैवमेव तु दैवोत्थे शमनं साधुसम्मतम् ॥ १४ ॥

जो प्राणियोके अनुग्रहविच्छेदसे विग्रह हुआहो प्रियवचनसे उसको शांतकरै और जो दैवकोपसे विग्रह हुआ हो तो दैवकी प्रसन्नतासे उसे शान्तकरै १४॥

मण्डलक्षोभसम्भूतमुपाये प्रशम नयेत् ।
सापत्न्य वास्तुज स्त्रीज वाञ्जातमपराधजम् ॥ १५

जो मण्डलके क्षोभसे विग्रह हुआ हो ता उपायोंद्वारा इसे शान्त करे सापत्नतासे उत्पन्न, वस्तुके निमित्तसे स्त्रीके निमित्तसे वा भावाँ ता अपराधसे उत्पन्न ॥ १५ ॥

वैरमभेदनिपुणैर्वैर पञ्चविध स्मृतम् ।
जातं भूम्युपरोधेन तथा शक्तिविघातजम् ॥ १६ ॥

यह पाँच प्रकारके वैर वैरके भेद जाननेवालोंने कहे हैं औ भूमिहरण तथ शक्तिके विघातसे उत्पन्न हो ॥ १६ ॥

भूम्यनन्तरजात तु मण्डलक्षोभजन्तथा ।
चतुर्विध वैरजात बहुदन्तीसुतोऽब्रवीत् ॥ १७ ॥

तथा दूसरी भूमियोंपर तथा मण्डलक्षोभके कारण उत्पन्न हुआहो य चार प्रकारका वैर बहुदन्तीके पुत्रने कहा है ॥ १७ ॥

कुलापराधजे वैते मन्यन्ते द्वे च मानवा ।
किञ्चित्फल निष्फलञ्च सन्दिग्धफलमेव च ॥१८॥

कुछ और अपराधके कारण उत्पन्नहुए वैरोंके दो भेद मनुके मानने व मनुष्योंके होते हैं कुछ फलवाले निष्फल तथा सन्दिग्ध फलवाले॥१८॥

तदात्वे दोषजननमायत्याञ्चैव निष्फलम् ।
अपरिज्ञातवीर्येण दुष्टेन स्तम्भितोऽपि वा ॥ १९ ॥

उसकी भावितमें अर्गल वर्तमानकालमें दोषोंके भगर कारनवाल और आनवालकी सामर्थ्यका जानकर वा दुष्ट बैहकानपर ॥ १९ ॥

परार्थ स्त्रीनिमित्तञ्च दीर्घकाल द्विजोत्तमैः ।
अकाले देवयुक्तन बलोद्धृतसखेन च ॥ २० ॥

दूसरेके निमित्त, स्त्रीके निमित्त, दीर्घकालतक श्रेष्ठ ब्राह्मणोंसे वैरसाधनेसे, कालमे दैवयुक्त होनेसे, बलसे मित्रको उच्छिन्न करनेसे ॥ २० ॥

तदात्वे फलसंयुक्तमायत्यां फलवर्जितम् ।
आयत्यां फलसंयुक्तं तदात्वे निष्फलं तथा ॥ २१ ॥

वर्तमानमें फलकी प्राप्ति दीखनेसे, आगामिकालमें फलप्राप्ति न होनेमे । आगामिकालमें फलकी प्राप्ति होनेमें और वर्तमानमें निष्फल ॥ २१ ॥

इतीमं षोडशविधं न कुर्यादेव विग्रहम् ।
तदात्वायतिसंशुद्धमारभेत विचक्षणः ॥ २२ ॥

इसप्रकार यह सोलहप्रकारके विग्रह न करने चाहिये, जो वर्तमान और आगामिकालमे शुद्धहो उसको बुद्धिमान् आरभ करै ॥ २२ ॥

तदात्वायतिशुद्धानि सर्वकर्म्माणि चिन्तयेत् ।
तदात्वायतिसंशुद्धमातिष्ठन्नैव वाच्यताम् ॥ २३ ॥

वर्तमान और आगामिकालमे शुद्धफल देनेवाले सब कार्योंका आरभ करै इन दोनोंकी शुद्धि विचारनेवालेकी निन्दा नही होती है ॥ २३ ॥

साधु लोकद्वयग्राहि विद्वान् कर्म समाचरेत् ।
परित्यजेदमुं लोकं नार्थलेशोपलोभितः ॥ २४ ॥

जो श्रेष्ठ और दोनोलोकोका हितकारी कर्म हो बुद्धिमान्को उसीका आरभ करना चाहिये, और अर्थके लोभी बनकर केवल इसी लोकके उपयोगी कर्मको न करै ॥ २४ ॥

परलोकविरुद्धानि कुर्वाणं दूरतस्त्यजेत् ।
इत्यागमप्रमाणत्वात्साधुकल्याणमाचरेत् ॥ २५ ॥

परलोकके विरुद्धकर्मोंके करनेवालेको दूरसेही त्यागदे, इसप्रकार शास्त्रके प्रमाणसे साधुकल्याणकारी कर्म करै ॥ २५ ॥

यदा मन्येत मतिमान्हृष्टपुष्टं स्वकं बलम् ।
परस्य विपरीतञ्च तदा विग्रहमाचरेत् ॥ २६ ॥

जब बुद्धिमान् अपनी सेनाको हृष्ट पुष्ट देखे, और शत्रुकी इसके विपरीत देखे तब विग्रह करे ॥ २६ ॥

स्फीतं चाप्यनुरक्तञ्च यदा प्रकृतिमण्डलम् ।
परस्य विपरीतञ्च तदा विग्रहमाचरेत् ॥ २७ ॥

जब अपना प्रकृतिमण्डल भरापुरा और अनुरक्तहो और शत्रुका इसके विपरीतहो तब विग्रह करै ॥ २७ ॥

भूमिर्मित्रं हिरण्यञ्च विग्रहञ्च फलं त्रयम् ।
यदैतन्नियतं भावि तदा विग्रहमाचरेत् ॥ २८ ॥

भूमि मित्र और सुवर्ण विग्रहके यह तीन फलहैं जब यह तीन अवश्य मिलनेकी संभावनाहो तब विग्रह करै ॥ २८ ॥

गुरु वित्तं ततो मित्रं तस्माद्भूमिर्गरीयसी ।
भूमेर्विभूतयः सर्वास्ताभ्यो बन्धुसुहृद्गणाः ॥ २९ ॥

सब वस्तुओंसे धन धनसे मित्र उससे भूमि भूमिसे ऐश्वर्य, उससे बन्धु और सुहृद्गण विशेषहैं ॥ २९ ॥

सर्वसम्पत्समे शत्रावुपायान्निक्षिपेद्बुधः ।
उपायैरप्यतिव्यूढे समे दण्डोऽपि शस्यते ॥ ३० ॥

पंडितको उचितहै कि, सबप्रकारसे अपनी सम्पत्तिके समान शत्रुपरही अभिगमन करै और अतिव्यूढ उपायोंसे वशीभूत करै कारण कि बराबरवालेम ही दण्डपातकी सराहनाहै ॥ ३० ॥

आगतं विग्रहं विद्वानुपायैः प्रशमं नयेत् ।
विजयस्य ह्यनित्यत्वाद्रभसेन न सम्पतेत् ॥ ३१ ॥

विद्वान्‌को उचितहै कि, प्राप्तहुए उपायोंसे विग्रहको शान्तकरै, कारण कि वैजयकी प्राप्ति अचल नहीं है, एकाएकी किसीके ऊपर प्रहार न करै॥ २१॥

समाक्रान्तो बलवता काङ्क्षन्नभ्रंशिनीं श्रियम् ।
आश्रयेद्वैतसीं वृत्तिं न भौजङ्गीं कथञ्चन ॥ ३२ ॥

बलवान्‌से आक्रान्त हुआ अचल लक्ष्मीको प्राप्तकरता हुआ वेतके समान वृत्तिका आश्रय करै कि जैसे पवन आदिके वेग आनेसे वेत झुकजातेहै सर्पकी वृत्ति (कि छूतेही फण उठाकर काटनेको उद्यत होताहै) का आश्रय कभी न करै ॥ ३२ ॥

क्रमाद्वैतसवृत्तिः सन्प्राप्नोति विपुलां श्रियम् ।
भुजङ्गवृत्तिराप्नोति वधमेव तु केवलम् ॥ ३३ ॥

क्रमसे वेतसम्बन्धी वृत्तिका आश्रय करनेवाला बडी लक्ष्मीको प्राप्त होताहै, और सर्पवृत्तिवाला केवल वधकोही प्राप्त होताहै ॥ ३३ ॥

मत्तप्रमत्तवत् स्थित्वा ग्रसेदुत्प्लुत्य पण्डितः ।
अपरिभ्रश्यमानं हि क्रमप्राप्ते मृगेन्द्रवत् ॥ ३४ ॥

मत्त और प्रमत्तके समान बाहरी दिखावसे स्थितहुआ कूदकर बुद्धिमान् आक्रमणकरै, जैसे कि सिंह ऐसा कूदकर प्रहार करताहै कि वह खाली नहीं जाता ॥ ३४ ॥

कौर्मं सङ्कोचमास्थाय प्रहारमपि मर्षयेत् ।
काले प्राप्ते तु मतिमानुत्तिष्ठेत्क्रूरसर्पवत् ॥ ३५ ॥

और कछुएके समान अंग संकोचकर शत्रुका प्रहारभी सहन करै, और बुद्धिमान् फिर समय देखकर क्रूरसर्पके समान उठै ॥ ३५ ॥

काले सहिष्णुर्गिरिवदसहिष्णुश्च वह्निवत् ।
स्कन्धेनापि वहेच्छत्रून्प्रियाणि समुदाहरन् ॥ ३६ ॥

समयपर पर्वतकेसमान सहनशील हो और अग्निकेसमान असहनशील

हो और समयपर प्रियवचन कहताहुआ कभेपरभी शत्रुको उठावै ॥ ३६ ॥

प्रसादवृत्त्या हितलोकवृत्तया प्रविश्य शत्रोर्हृदय निरन्तरम् ।
नयाग्रहस्तेनहिकालउच्छ्रित प्रसह्यकुर्वीतकचग्रहंश्रिय ॥ ३७

प्रसन्नताकी वृत्तिसे लोककी हितकारीवृत्तिसे शत्रुके हृदयमें निरन्तर मवे करके समयपर नीतिके हाथोंसे बलात्कारसे उसकी लक्ष्मीके केशग्रहण करे ॥

कुलोद्भव सत्यमुदारविक्रम स्थिरं कृतज्ञ धृतिमन्तमूर्जितम् ।
अवीवदावारमुपेतवत्सल सुदु प्रसाध्य प्रवदन्तिविद्विषम् ॥ ३८ ॥

कुलसे मात सत्य और उदारविक्रमवाले, स्थिरमति कृतज्ञ, बुद्धिमा प्रभावशील अतिदानी शरणागतवत्सल शत्रु बडी कठिनाईसे वशीभू होसकताहै ॥ ३८ ॥

असत्यता निष्ठुरता कृतघ्नता भय प्रमादोऽलसता विषादिता ।
वृथाभिमानो ह्यतिदीर्घसूत्रतातथाङ्गनाक्षादिविनाशनश्रिय ३९

असत्यता, निठुराई अकृतज्ञता भय, प्रमाद, आलस्य विषाद, वृथा अभिमान अतिदीर्घसूत्रता तथा निरन्तर स्त्रीसमागम और पासोंका खे यह लक्ष्मीके विनाश करनेवाले हैं ॥ ३९ ॥

इति स्मदोषान्वितमाशुविद्विषंत्रिशक्तियुक्तोभिजिगीषया व्रजेत्
अतोऽन्यथा साधुजनस्यसम्मतकरोतिविधियानुपघातमात्मन ४०

इसप्रकारके दोषयुक्त राजापर जीतनेकी इच्छा करनेवाला तीन शक्ति युक्त होकर चढाई करे, इससे अन्यथा साधुजनसम्मतपर चढाई करने यह अपनाही घात करताहै ॥ ४० ॥

समन्वितो राज्यपदाभिनीपया चरेक्षणैर्वीक्षितमण्डलक्रिय ।
इमनूपोविग्रहमार्गमास्थित स्थिरोपम सम्पदवतसिद्धये ॥ ४१ ॥

इति श्रीकामन्दकीये नीतिसारे विग्रहकल्पो नाम
दशम सर्ग ॥ १० ॥

राज्यपदकी उन्नतिकी इच्छा करताहुआ अपने दूतोंसे मण्डलकी क्रिया देखनेवाला राजा इसप्रकार विग्रहके मार्गमे स्थितहुआ सिद्धिके निमित्त स्थिरतासे उद्यम करे ॥ ४१ ॥

इति श्रीकामन्दकीये नीतिसारे भा०टी० विग्रहकल्पोनामदशम सर्ग ॥१०॥



एकादशः सर्गः ११.

उत्कृष्टबलवीर्यस्य विजिगीषोर्जयैषिणः ।
गुणानुरक्तप्रकृतेर्यात्रायानमिति स्मृतम् ॥ १ ॥

बलवीर्यमें उत्कृष्ट, जीतनेकी इच्छावाले,जयशील,प्रकृतिके गुणोंमे अनुरक्त राजाकी यात्रा यान कहीहै ॥ १ ॥

विगृह्य सन्धाय तथा सम्भूयाथ प्रसङ्गतः ।
उपेक्षा चेति निपुणैर्यानं पञ्चविधं स्मृतम् ॥ २ ॥

लडाईके लिये, मिलकर, इकट्ठा होकर और प्रसगसे, उपेक्षासे यह पाच प्रकारका यान (चढाई) विद्वानोंने कहीहै ॥ २ ॥

विगृह्य याति हि यदा सर्वाञ्छत्रोर्गणान् बलात् ।
विगृह्ययानं यानज्ञास्तदाचार्याः प्रचक्षते ॥ ३ ॥

जब शत्रुओंके गणके ऊपर बलसे लडाई करके गमनकरे, उसको यान के जाननेवाले आचार्य विगृह्ययान कहते है ॥ ३ ॥

अरेर्मित्राणि सर्वाणि स्वमित्रैः सर्वतो बलात् ।
विगृह्य चाभिगमनं विगृह्यगमनं स्मृतम् ॥ ४ ॥

सम्पूर्ण शत्रुके मित्रोंको अपने सब मित्रोंके सग बलसे लडाकर शत्रुपर जो चढनाहै उसको विगृह्ययान कहते है ॥ ४ ॥

सन्धायान्यत्र यात्रायां पार्ष्णिग्राहेण शत्रुणा ।

सन्धायगमन प्रोक्त तज्जिगीषो फलार्थिनः ॥ ५ ।

अन्यपर चढाईके समय पीडक शत्रुके साथ सन्धिकरके गमन कर याळका जीतनके फळके अभिलाषी राजाका संधायगमन कहतेहैं ॥ ५

एकीभूय यदैकत्र सामन्तै साम्परायिके ।
शक्तिशौचयुतैर्यान सम्भूयगमन हि तत् ॥ ६ ॥

जब एकराजा अपने सामंत साथी उन राजाओंके संग मिलकर गम करै जो सामन्त अर्थ और बळसे युक्त हो उसे सम्भूयगमन कहतेहैं ॥६

उभयोरपि यद्यान द्वयो प्रकृतिनाशने ।
सम्भूययान तत्प्रोक्त हनुमत्सूर्ययोरिव ॥ ७ ॥

अथवा जहां दो जने मिलकर शत्रुकी ममानाशके लिये चढते हैं उस का नामभी सम्भूययान है जिसप्रकार हनुमान् सूर्यके समीप साथ चढ कर गमन करतेथ ॥ ७ ॥

अल्पसारानुपादाय प्रतिज्ञाय फलोदयम् ।
गम्यते यत्परक्षेतु सम्भूयगमनं हि तत् ॥ ८ ॥

थाडी सनाछिये फळके उदयकी इच्छा कर जो शत्रुके ऊपर चढाई है उसको सम्भूययान कहते हैं ॥ ८ ॥

अन्यत्र प्रस्थित सङ्गादन्यत्रैव च गच्छति ।
प्रसङ्गयान तत्प्रोक्तमत्र शल्यो निदर्शनम् ॥ ९ ॥

यदि अन्यत्र चढाईके लिये गमन करता हुआ अन्यत्रही चलाजाय तौ यानके ज्ञाता मन्त्रीजन उसे प्रसंगयान कहते है जैसे शल्य एक जगह जाकर दूसरी जगहको चलागया ॥ ९ ॥

रिपु यातस्य बलिन सम्प्राप्याविप्कृत फलम् ।
उपेक्ष्य तन्निमयानमुपेक्षायानमुच्यते ॥ १० ॥

जो बलवान् राजा शत्रुपर गमन करै और वहा विपरीत फल मिले तो सकी उपेक्षा (छोडने) को उपेक्षायान कहते है ॥ १० ॥

निवातकवचान् हित्वा हिरण्यपुरवासिनः ।
उपेक्षायानमास्थाय निजघान धनञ्जयः ॥ ११ ॥

जिसप्रकार अर्जुनने हिरण्यपुरवासी जनोको छोडकर अर्थात् उनकी उपेक्षा करके निवातकवचोंका संहार किया यह कथा भारतमें प्रसिद्धहै ११॥

स्त्रियोऽथ पानं मृगया तथाऽक्षा दैवोपघातश्च बहुप्रकारः ।
इति प्रदिष्टं व्यसनं ह्यनेन समन्वितो यो व्यसनी स गम्यः १२

स्त्रियोंमें अनुरक्त, मद्यपान तथा मृगयामे आसक्त, पासे खेलनेवाले दैवोपघाती, प्रारब्धसे हीनता इत्यादि बहुत प्रकारके व्यसन है, इनसे जो युक्त है वही गमनके योग्य है अर्थात् उसपर चढाई करै ॥ १२ ॥

परस्परस्य सामर्थ्यविघातादासनं स्मृतम् ।
अरेश्च विजिगीषोश्च तत्पञ्चविधमुच्यते ॥ १३ ॥

परस्परकी सामर्थ्यके विघातसे जो युद्धसे बैठ रहनाहै कि,जिसमे शत्रु और जयशीलकी सामर्थ्य नष्ट होती हो उसको नष्ट न करके जो बैठ रहना है उसको आसन कहते है वह पाचप्रकारका है ॥ १३ ॥

अन्योन्याक्रान्तिकरणं निगृह्यासनमुच्यते ।
अरिं विगृह्यावस्थानं विगृह्यासनमुच्यते ॥ १४ ॥

परस्पर एक दूसरेके आक्रमणके निमित्त स्थित होनेको विगृह्यासन कहते है अथवा शत्रुसे विग्रह करके बैठ रहनेको विगृह्यासन कहते है१४

यदा दुर्गस्थितः शत्रुर्ग्रहीतुं नैव शक्यते ।
विगृह्यैनं तदासीत च्छित्त्वास्यासारवीवधान् ॥ १५ ॥

जिससमय दुर्गमे स्थितहुआ शत्रु ग्रहण न कियाजाय तब उससे विग्रह कर उसके सेना सामग्री धान्यादि और मार्गको छेदन कर स्थितहोरहे१५

विच्छिन्नवीवधासारं प्रक्षीणयवसेन्धनम् ।
विगृह्यमानं प्रकृतिं कालेनैव वशन्नयेत् ॥ १६ ॥

शत्रुके मारडालनेकी मैहगी छकडे भुसई धनका नाश करके शत्रुकी मजामें
राजाके संग अनवन तथा युद्ध दरै उससमय शत्रुको वशीभूत करै ॥ १६

अरेश्च विजिगीषोश्च विग्रहे हीयमानयो ।
सन्धाय यदवस्थानं सन्धायासनमुच्यते ॥ १७ ।

जब शत्रु और जीतनेवाला दोनों युद्धमें हीन होजाँय उस समय मि
कर बैठ रहनेको संधायमासन कहते हैं ॥ १७ ॥

निवातकवचैः सार्द्ध रावणः शत्रुरावणः ।
ब्रह्माणमन्तरा कृत्वा सन्धायासनमास्थित ॥ १८

जिसप्रकार शत्रुके रुलानेवाले रावणने निवातकवचोंसे युद्धकर फि
ब्रह्माजीको बीचमें कर संधायमासनसे स्थिति की ॥ १८ ॥

उदासीने मध्यमे च समानप्रविशङ्कया ।
एकीभूय समुत्थानं सम्भूयासनमुच्यते ॥ १९ ॥

उदासीन और मध्यवृत्तिवालेमें अपनी समानताकी शंकासे जो मि
कर स्थितहो समुत्थान करना है उसको सम्भूयमासन कहते हैं ॥१९

उभयाराहि वाञ्छेत विनाशमुभयोरपि ।
सम्भूयेन प्रतिव्यूहेदधिकं तत्त्वधर्मणा ॥ २० ॥

जब दोनोंही दोनोंके नाशकी इच्छा करतेहों तो धर्मका जाननेवाल
सम्भूयासनमें स्थितहुआ सेनाको व्यूहितकरै ॥ २० ॥

यियासोरन्यमन्यत्र प्रसङ्गेनेह केनचित् ।
आसनं यत्तदर्थज्ञै प्रसङ्गासनमुच्यते ॥ २१ ॥

अन्यस्थानमें गमनकी इच्छासे अन्यत्र गमन करके जो स्थिति कर
जानी है उसको प्रसंगासन कहतेहैं ॥ २१ ॥

आस्ते प्रेक्ष्यारिमधिकमुपेक्षासनमुच्यते ।
उपेक्षां कृतवानिन्द्रः पारिजातग्रहं प्रति ॥ २२ ॥

ो शत्रुको अधिक जानकर उसके बलके कारण उपेक्षा करके स्थितहो हे उसको उपेक्षासन कहते है । जैसे जब कृष्णचन्द्रने सत्यभामाके त्त स्वर्गसे कल्पवृक्ष हरण किया तब इन्द्रने अधिक बल जानकर उनके युद्ध न किया उपेक्षा कर बैठरहा ॥ २२ ॥

उपेक्षितस्य चान्यैस्तु कारणेनेह केन चित् ।
आसनं रुक्मिण इव तदुपेक्षासनं स्मृतम् ॥ २३ ॥

ा किसी कारणसे दूसरोसे उपेक्षित होनेसे रुक्मीके समान स्थितहो का नाम उपेक्षासनहै । जिसप्रकार कृष्णसे युद्ध करने उपरान्त रुक्मी- जब किसीने सहायता न दी तब वह उपेक्षाकर बैठरहा ॥ २३ ॥

बलिनोर्द्विषतोर्मध्ये वाचात्मानं समर्पयन् ।
द्वैधीभावेन वर्त्तेत काकाक्षिवदलक्षितः ॥ २४ ॥

बली शत्रुओके मध्यमे वाणीसे अपनेको समर्पण करताहुआ काकके ।की समान कभी किसीको कभी किसीको देखताहुआ द्वैधीभावसे वर्ते किसीको प्रतीति न हो ॥ २४ ॥

यापयेद्यत्नमास्थाय सन्निकृष्टमरि तयोः ।
उभयोरपि सम्पाते सेवेत बलवत्तरम् ॥ २५ ॥

उन दोनो शत्रुओके समीप होनेपर यत्नसे स्थितहो समय वितावे और व दोनोहीकी चढाईहो तो बलवान्का आश्रय करे ॥ २५ ॥

यदा द्वावपि नेच्छेतां संश्लेषं जातसंविदः ।
तदोपगच्छेत्तच्छत्रुमधिकं वापि संश्रयेत् ॥ २६ ॥

और जब क्रोधके कारण वे दोनोही मेलकी इच्छा न करें तब उनके त्रुसे मेलकरे वा उनसे अधिकका आश्रय करे ॥ २६ ॥

द्वैधीभावो द्विधा प्रोक्तः स्वतन्त्रपरतन्त्रया ।
स्वतन्त्र उक्तो ह्यन्यस्तु यः स्यादुभयवेतनः ॥ २७

स्वतंत्र और परतंत्र और भेदसे दो प्रकारका द्वैधीभाव कहाहै, आधीन स्वतंत्र और दूसरेके आश्रयको देखना परतंत्रहै ॥ २७ ॥

उच्छिद्यमानो बलिना निरुपायप्रतिक्रियः ।
कुलोद्भूतं सत्यमार्यमाश्रयेत बलोत्कटम् ॥ २८

जब शत्रु उच्छेद करनेको उद्यत हो और प्रतीकारका कोई उपाय न हो तो कुलमें पैदा सत्यशील बलवान् आर्यपुरुषका आश्रय करे ॥ २८ ॥

तद्दर्शनोपास्तिकता नित्यं तद्भावभाविता ।
तत्कारिता प्रश्रयिता वृत्तं संश्रयिणः स्मृतम् ॥ २९

उसके दर्शनमें प्रीतिहोनी नित्य उसके भावमें भावित रहना, उसीके कार्यमें तत्परता यह आश्रितकी वृत्तिका लक्षणहै ॥ २९ ॥

आशिक्षितनयःसिंहो हन्तीभं केवलं बलात् ।
तच्च धीरो नरस्तेषां शतानि प्रविभाजयेत् ॥ ३०

नीतिको न सीखेहुए सिंह केवल बलसेही मद करताहै और श्रेष्ठ धीरपुरुष अपनी नीतिसे उन सैकड़ोंको मारताहै ॥ ३० ॥

पश्यद्भिर्दूरतोऽपायान्सूपायप्रतिपत्तिभिः ।
भवन्ति हि फलायैव विद्वद्भिश्चिन्तिताः क्रियाः ॥ ३१

दूरसेही विपत्तियोंको आताहुआ देखकर जो विद्वान् पहलेसेही उनकी प्रतिक्रियाको विचारताहै, तो वह उनकी विचारीहुई क्रिया फलवती होतीहै ३१

उपायपूर्वं लिप्सेत कालं वीक्ष्य समुत्पतेत् ।
पश्चात्तापाय निर्दिष्टा विक्रमैकरसज्ञता ॥ ३२ ॥

उपायपूर्वकही किसी वस्तुकी इच्छाकर और समय देखकर आक्रमण करे और केवल विक्रमहीकी रसज्ञता पश्चात्तापके निमित्त कहीगई है ॥ ३२

शक्याशक्यपरिच्छेदं कुर्याद्बुद्ध्या प्रसन्नया ।
केवलं दन्तभङ्गाय दन्तिनः शैलताडनम् ॥ ३३ ॥

अपनी निर्मल बुद्धिसे शक्य और अशक्यका परिच्छेद करना चाहिये
ो विना विचारे कियाजाय तो हाथीका पर्वतपर प्रहार केवल दांतोके भङ्ग-
ही निमित्त होताहै ॥ ३३ ॥

अशक्यारम्भवृत्तीनां कुतः क्लेशादृते फलम् ।
भवन्ति परितापिन्यो व्यक्तं कर्मविपत्तयः ॥ ३४ ॥

जो अशक्य होकर किसीकार्यका आरम्भ करते है, उनको क्लेशके
सेवाय और क्या लाभहै, कर्मोसे आईहुई विपत्ति परिताप देनेवाली होतीहै ३४

बुद्ध्या बोधानुगतया परीयात्सम्पदः पदम् ।
सुविशुद्धपदन्यासः पर्वताग्रमिवोदितम् ॥ ३५ ॥

ज्ञानसम्पन्न बुद्धिसे विचार करनेसे मनुष्य सम्पत्तिके पदको प्राप्तहोता
है, जैसे समझकर चरण रखनेसे मनुष्य पर्वतके ऊपर पहुँचजाताहै ॥ ३५ ॥

दुरारोहं पदं राज्ञां सर्वलोकनमस्कृतम् ।
अल्पेनाप्यपचारेण ब्राह्मण्यमिव दुष्यति ॥ ३६ ॥

सब लोकोके नमस्कार करनेयोग्य राजपदपर आरूढ होना बडा कठिनहै,
वह थोडेहीसे अपचार(दुष्कर्म)से ब्राह्मणताकी समान दूषित होजाताहै ३६ ॥

प्रारब्धानि यथाशास्त्रं कार्याण्यासनबुद्धिभिः ।
वनानीव मनोहारि प्रयच्छन्त्यचिरात्फलम् ॥ ३७ ॥

जो कार्य शास्त्रके अनुसार बुद्धिके आसनपर स्थित होकर किये जाते
है, वह मनोहर वनके समान होकर बहुत शीघ्र फल देनेवाले होतेहै ॥ ३७ ॥

सम्यगारभ्यमानं हि कार्यं यद्यपि निष्फलम् ।
न तत्तथा तापयति यथा मोहसमीहितम् ॥ ३८ ॥

भलीप्रकार आरम्भ किया हुआ कार्य यदि निष्फल भी होजाय तौ इसप्रकार ताप नहीं देता जैसा मोहयुक्त होकर करनेसे ताप देता है ॥ ३८ ॥

यत्तु सम्यगुपक्रान्तं कार्यमेतद्विपर्ययम् ।
पुमांस्तत्रानुपालभ्यो दैवान्तरितपौरुषः ॥ ३९ ॥

जो भलीप्रकारसे आरम्भ किया कार्य विपरीत होजाय तो पुरुष उसमें ताना दना न चाहिये कारण कि उस पुरुषार्थके बिगाड़नेमें दैव कारण है ॥ ३९ ॥

प्रयत्नस्तावदास्थेयः फलायामलबुद्धिना ।
अपवर्गभङ्गनिपुणं शेषं दैवसमाश्रितम् ॥ ४० ॥

निर्मल बुद्धिसे फलके निमित्त प्रयत्न करना चाहिये और यदि कुसमय भंग होजाय तो उसमें दैवही कारण है ॥ ४० ॥

आत्मानञ्च परांश्चैव ज्ञात्वा धीरः समुत्पतेत् ।
एतदेव हि विज्ञानं यदात्मपरवेदनम् ॥ ४१ ॥

बुद्धिमान् अपने और पराये बलको देखकर उसपर प्रहार करै, यही परम विज्ञान है जो अपने और पराये बलकी भलीभांति परीक्षा होजाय ॥ ४१ ॥

निष्फलं क्लेशबहुलं सन्दिग्धफलमेव च ।
न कर्म कुर्यान्मतिमान् महावैरानुबन्धि च ॥ ४२ ॥

जो निष्फल बहुत क्लेश सम्पन्न तथा संदिग्ध फलवाला और विशेष वैर अनुबन्धी हो बुद्धिमानको वह कर्म न करना चाहिये ॥ ४२ ॥

तदात्वायतिसंशुद्धं शुचि शुद्धसमागतम् ।
हितानुबन्धि च सदा कर्म सद्भिः प्रशस्यते ॥ ४३ ॥

जो वर्तमान और आगामिकालमें सुन्दर तथा शुद्ध कर्मसे प्राप्त होने वाला और हितका अनुबन्धी (हितकारी) हो बुद्धिमानोंने उस कर्मकी प्रशंसा की है ॥ ४३ ॥

हितानुबन्धि यत्कार्यं गच्छेद्येन न वाच्यताम् ।
तस्मिन्कर्मणि सज्जेत तदात्वकटुकेऽपि हि ॥ ४४ ॥

हितानुबन्धी हितकारी जो कार्य है वह वही है जिसमें निन्दा नही होती, उसीकर्ममें लगे, चाहै वर्तमानमे वह कटुही दीखै ॥ ४४ ॥

बुद्ध्यैवोपक्रमः श्रेयान्फलनिष्पत्तये सदा ।
क्वचित्कल्याणमित्रस्य शस्यते सिंहवृत्तिता ॥ ४५ ॥

फल प्राप्तिके लिये बुद्धिमान् बुद्धिसे विचार कर्यारम्भकरे, हां सिंहकी समान आक्रमण कही उसको शोभा देता है जिसके शुद्ध मित्र हो ॥४५॥

सहसोत्प्लुत्य दुष्टेभ्यो दुष्करं सम्पदर्ज्जनम् ।
उपायेन पदं मूर्ध्नि न्यस्यते मत्तहस्तिनाम् ॥ ४६ ॥

सहसा दुष्टोंसे उपद्रवको प्राप्त होनेसे उनपर चढकर सम्पत्तिका अर्जन करना कठिन है, और उपायसे तो मतवाले हाथियोके मस्तकपर चरण रखदिया जाता है ॥ ४६ ॥

न किञ्चित्क्वचिदस्तीह वस्त्वसाध्यं विपश्चिताम् ।
अयोऽभेद्यमुपायेन द्रवतामुपनीयते ॥ ४७ ॥

बुद्धिमानोको कोई वस्तुभी असाध्य नही है, लोहा अभेद्य होता है पर उपायसे वह भी गलजाता है ॥ ४७ ॥

वाह्यमानमयःखण्डं स्कन्धंनैवापि कृन्तति ।
तदल्पमपि धारावद्भवतीप्सितसिद्धये ॥ ४८ ॥

कन्धेपर लेजाया हुआ लोहभारभी कन्धेको नही करता और धारवाला वह थोडाभी मनोरथ सिद्धि (मारने) के निमित्त होता है ॥४८॥

लोकप्रसिद्धमेवैतद्वारि वह्नेर्नियामकम् ।
उपायोपगृहीतेन तेनैव परिशोष्यते ॥ ४९ ॥

लोकमें यह बात मसिद्ध है कि जलसे अग्नि बुझजाता है पर उपायसे उस अग्निसेही यह जल सुखादिया जाता है ॥ ४९ ॥

अविज्ञातस्य विज्ञानं विज्ञातस्य च निश्चयः ।
अर्थद्वैधस्य सन्देहच्छेदनं शेषदर्शनम् ॥ ५० ॥

नहीं जानीहुई बातका विज्ञान और जानीहुई बातका निश्चय द्विधाका सन्देहका छेदन करके शेष दर्शन अर्थात् निश्चय है ॥ ५० ॥

विदुषां शासने तिष्ठन्नावमन्येत कञ्चन ।
सर्वस्य चोक्तं शृणुयात्सुभाषितजिघृक्षया ॥ ५१ ॥

विद्वानोंकी आज्ञामें स्थित हुआ कभी उनका तिरस्कार न करे और सुवचन मानसकी इच्छासे सबका कथन श्रवण करे ॥ ५१ ॥

मदोद्धतः क्रियामूढो योऽतिक्रामति मन्त्रिणम् ।
अचिरात्तं वृथामन्त्रमतिक्रामन्ति विद्विषः ॥ ५२ ॥

जो मदसे मत्त क्रियामें मूढ होकर मन्त्रियोंका अतिक्रमण करता है बहुतही शीघ्र उस वृथामन्त्रवालेको शत्रु आक्रमण करते हैं ॥५२॥

सरक्षेन्मन्त्रबीजं हि तद्बीजं हि महीभुजाम् ।
यस्मिन् भिन्ने ध्रुवं भेदो गुप्ते गुप्तिरनुत्तमा ॥ ५३ ॥

मन्त्रके बीजकी रक्षाकरे राजोंका यही बीज है, जिसके प्रगट होनेसे अवश्य भय होजाता है और गुप्त रहनेसे रक्षा होती है ॥ ५३ ॥

सिंहवच्चेष्टमानस्य काले कर्म विपश्चितः ।
क्रियमाणं स्वकल्यास्तु विदुरस्य परे कृतम् ॥ ५४ ॥

और समयपर सिंहके समान चेष्टावाले कर्ममें चतुरका किया कर्म अपने कल्याणके निमित्त होता है जैसे विदुरके कार्य ॥ ५४ ॥

अपथ्यापापकृत्सम्यगनुरागिफलप्रदः ।

अदीर्घकालोऽभीष्टश्च प्रशस्यो मन्त्र इष्यते ॥ ५५ ॥

जो पश्चात्तापका न करनेवाला हो सम्यक् अनुरक्तिका फल देनेवाला थोडेही समयमें अभीष्ट फलका देनेवाला हो उस मन्त्रकी बडाई है ५५

सहायाःसाधनोपाया विभागो देशकालयोः ।

विपत्तेश्च प्रतीकारो मन्त्रः पञ्चाङ्ग उच्यते ॥ ५६ ॥

सहाय साधनेके उपाय, देशकालका विभाग, विपत्तिका प्रतीकार इस ार मन्त्रके पञ्चाङ्ग है ॥ ५६ ॥

अनुतिष्ठेत्समारब्धमनारब्धं प्रयोजयेत् ।

अनुष्ठितश्च सद्वृत्त्या विशेषेणोपपादयेत् ॥ ५७ ॥

आरम्भ कियेका अनुष्ठान, और अनारम्भका प्रयोग करे, जो सद्भावसे रम्भ किया गया है, वह विशेषकर उत्पन्न होता है ॥ ५७ ॥

प्रचारयेन्मन्त्रविदः कार्यद्वारेष्वनेकधा ।

तत्र यच्चेतसां साम्यं तेन शीघ्रं समुत्पतेत् ॥ ५८ ॥

मन्त्रका जाननेवाला कार्यालयोंका अनेक भाँतिसे प्रचार करै, जिससे ाघ्रही दूसरोंके चित्तमें शान्तिका प्रचारहो ॥ ५८ ॥

यत्र मन्त्रिमनःसाम्यं यत्र चेतो न शङ्कते ।

यच्च सन्तो न निन्दन्ति तत्परीयाच्चिकीर्षितम् ॥ ५९ ॥

जहा मित्रके मनमें शान्ति है, जहा चित्तमें शका नही है, जिसकी न्तजन निन्दा नही करते है उस इच्छितकर्मको करै ॥ ५९ ॥

धृतेऽपि मन्त्रे मन्त्रज्ञैः स्वयम्भूयो विचारयेत् ।

तथा वर्त्तेत तत्त्वज्ञो यथा स्वार्थन्न पीडयेत् ॥ ६० ॥

मन्त्रके ज्ञाताओंने जो निश्चय कियाहो उसको फिरभी विचार तत्त्वका जाननेवाला इसप्रकारसे वर्त्तै जिसमें स्वार्थमें हानि न पडै ॥ ६० ॥

मन्त्रिण स्वार्थतात्पर्याद्दीर्घमिच्छन्ति विग्रहम् ।
मन्त्रिणा भोग्यतामेति दीर्घकार्याकुलो नृप ॥ ६१ ॥
मन्त्री स्वार्थके तात्पर्यसे दीर्घ फलतक विग्रहकी इच्छा करते हैं, औ निरन्तर कार्यमें आकुलहुआ राजा मन्त्रियोंहीं भोगका मात्र होता है ६१

मन प्रसाद श्रद्धा च तथा करणपाटवम् ।
सत्वायोत्थानसम्पन्न कर्म्मणां सिद्धिलक्षणम् ॥६२॥
मनमें प्रसन्नता, श्रद्धा, साधनमें चतुराई सत्व पराक्रमकी अधिकी सम्पत्तिका आगमन, यह कर्म सिद्धिके लक्षण हैं ॥ ६२ ॥

लघुत्थानान्यविघ्नानि सम्भवत्साधनानि च ।
कथयन्ति पुर सिद्धिं कारणान्येव कर्म्मणाम् ॥६३॥
जिसमें लघु उत्थान आरम्भसे विघ्न न हो, थोड साधनोंमें सिद्ध होजं कारणोंसे कर्मकी होनेवाली सिद्धि कहीहै ॥ ६३ ॥

नावर्तयेन्मुहुर्मन्त्रं संरक्षेत्तत्परिस्तुवन् ।
अरक्षमाण मन्त्र हि भिनत्त्यात्मपरम्पराम् ॥ ६४ ॥
बारबार मन्त्रका उच्चारण न करे उसकी पट्ट पढ्‌त न करताहुआ वर्ता करे कारण कि, अरक्षितहुआमन्त्र अपनी परम्पराको नष्टकरदेताहै ॥६४॥

मद प्रमाद कामश्च सुप्तप्रलपितानि च ।
भिन्दन्ति मन्त्रप्रच्छन्ना कामिन्यश्चमतास्तथा॥६५॥
मद प्रमाद (असावधानी) काम अधिक सामा मस्वप्न यह मन्त्रको भेद कर देते हैं तथा स्त्रियोंकी सम्मतिसेभी मन्त्रभेद होजाताहै ॥६५॥

निस्तम्भे निर्गवाक्षे च निर्भेयेऽन्तरसंश्रये ।
प्रासादोपर्यरण्ये वा मन्त्रयेताविभावित ॥ ६६ ॥
जिस स्थानमें स्तम्भोंकी आड न हो झरोखे न हों कोई आ न सकता

हो, दुर्भेद्यहो, अन्तरमे कोई वस्तु न हो, ऐसे स्थानमे महलके ऊपर वा निर्जन वनमें व्याकुलता रहित चित्तसे मन्त्र सम्मति करै ॥ ६६ ॥

द्वादशेति मनुः प्राह षोडशेति बृहस्पतिः ।
उशना विंशतिरिति मन्त्रिणां मन्त्रमण्डलम् ॥ ६७ ॥

मनुजीने वारह मन्त्रियोंका, बृहस्पतिने छःका और शुक्रने वीसमन्त्रियों-का, मन्त्रिमण्डल कहाहै ॥ ६७ ॥

यथासम्भवमित्यन्ये तत्प्रविश्य यथाविधि ।
मन्त्रयेताहितमनाः कार्यसिद्धिविवृद्धये ॥ ६८ ॥

दूसरोका मत है इनमें जितने मन्त्री प्राप्त होजायँ उतने करै उनके साथ यथाविधि प्रवेश करके कार्यकी सिद्धि और वृद्धिके लिये सावधान मनसे विचार करै ॥ ६८ ॥

अकथ्यानि तु कार्याणि सम्प्रधार्य पुनः पुनः ।
प्रविशेत्स्वहितान्वेषी मतमेषां पृथक् पृथक् ॥ ६९ ॥

नही कथन किये कार्योंको प्रथम वारवार सोचकर हितकी इच्छावाला इन मंत्रियोंके मतको पृथक् २ जानकर उसका निश्चयकरै ॥ ६९ ॥

महापक्षो यथाशास्त्रं दृष्टकर्म्मा हितः सुधीः ।
यद्ब्रूयाच्च मतारूढस्तत्तत्साधु समाचरेत् ॥ ७० ॥

जिस कार्यमें बहुतोंकी सम्मति हो जो शास्त्रानुसारहै जो कर्म देखा-हुआ हो हितकारी हो जिसको शास्त्रज्ञाताओंने कहा हो बुद्धिमान् उसको जान-कर भलीप्रकार उसका अनुष्ठानकरै ॥ ७० ॥

नातीयात्कार्यकालं हि कृत्वा मन्त्रविनिश्चयम् ।
अतिक्रान्तं तु तं भूयो यथायोगं प्रकल्पयेत् ॥ ७१ ॥

मन्त्रका निश्चयकर फिर उसके समयको बुद्धिमान् व्यतीत न करै, और जो उसका समय वीतजाय तो उसके विषयमे फिर सम्मति करै ॥ ७१ ॥

न कार्यकाले मतिमानतिक्रामेत्कदाचन ।
कथञ्चिदेव भवति कार्ये योगः सुदुर्लभः ॥ ७२ ।

बुद्धिमान्को उचितहै कि, कार्यका समय किसी प्रकारभी न बिताना कारण कि, कार्यमें लगना बड़ादुर्लभ होताहै, फिर बार २ वैसा समय होता ॥ ७२ ॥

सतां मार्गेण मतिमान् काले कर्म्म समाचरेत् ।
काले समाचरन्साधु रसवत्फलमश्नुते ॥ ७३ ॥

बुद्धिमान् सत्पुरुषोंके मार्गमें स्थितहुआ समय आनेपर अवश्य आरम्भ करै समयपर भलीप्रकार कर्मकरता हुआ रसयुक्त फलको होताहै ॥ ७३ ॥

इति चेति च सम्पश्यन् कालदेशसहायवान् ।
विशुद्धपार्ष्णिः सद्वस्तु समाक्रामेदचापलात् ॥ ७४

इसप्रकारसे देशकालयुक्त सहायको देखताहुआ शुद्ध दोनों मार्गों से राजा चपलता न करताहुआ सद्वस्तुपर आक्रमण करै ॥ ७४ ॥

अहिते हितबुद्धिरल्पधीरवमन्यैव मतानि मन्त्रिणाम्
चपलं सहसैव सम्पतन्नचिरं वै व्यसनी प्रमुह्यते ॥ ७५

जो अहितमें हितबुद्धि करता है, थोडी बुद्धिवाला है मन्त्रियोंके मत तिरस्कार करताहै व्यसनोंसे व्याप्तहै वह चपलपुरुष एकसाथही गिरता और फिर शीघ्र नहीं जागता अर्थात् उन्नतिको प्राप्त नहीं होता ॥ ७५

इति मन्त्रबलान्महीपतिर्महतो दुग्भुजगन्मानिव ।
विनयेन्नयमार्गमास्थितो वशमुद्योगसमन्वितो रिपून् ७

इति श्रीकामन्दकीये नीतिसारे मन्त्रविकल्पो
नामैकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

इसप्रकारसे राजा अपने मन्त्रके बलसे बडे शत्रुओंकोभी दुष्ट सर्पके समान वशमे करनेके उद्योगमे लगाहुआ तथा स्वय नीतिके मार्गमे लगाहुआ शिक्षा करै ॥ ७६ ॥

इति श्रीकामन्दकीये नीतिसारे भाषाटीकायां मन्त्रविकल्पो नामैकादश सर्ग ॥ १० ॥

द्वादशः सर्गः १२.

कृतमन्त्रस्तु मन्त्रज्ञो मन्त्रिणां मन्त्रसम्मतम् ।
यातव्याय प्रहिणुयाद्दूतं दूत्याभिमानिनम् ॥ १ ॥

जब मन्त्रका ज्ञाता मन्त्रियोंके मन्त्रको भलीभाँति जानले तब दूतकार्यमें कुशल दूतोके भेजनेकी इच्छा करै ॥ १ ॥

प्रगल्भः स्मृतिमान्वाग्मी शास्त्रे चास्त्रे च निष्ठितः ।
अभ्यस्तकर्म्मा नृपतेर्दूतो भवितुमर्हति ॥ २ ॥

दूत वाचाल, बातका याद रखनेवाला, विशेषवक्ता, अस्त्र शस्त्रमें पंडित, कार्यका अभ्यास किये हुएही राजाका दूत होसकताहै ॥ २ ॥

निसृष्टार्थो मितार्थश्च तथा शासनवाहकः ।
सामर्थ्यात्पादतो हीनो दूतस्तु त्रिविधः स्मृतः॥ ३ ॥

स्वाभाविक दूतकर्ममें प्रवृत्तिवाला, प्रयोजनमात्र अर्थका वक्ता, राजाकी आज्ञाका ले जानेवाला, तथा किसीएक दूतकर्मके लक्षणसे हीन यह तीन प्रकारके दूत होतेंहे ॥ ३ ॥

स भर्त्तुः शासनाद्गच्छेद्गन्तव्यमुत्तरोत्तरम् ।
स्वराष्ट्रपरराष्ट्राणामिति चेति च चिन्तयन् ॥ ४ ॥

वह दूत अपने स्वामीकी आज्ञासे उत्तरोत्तर स्थानोंमें गमनकरै, अपने तथा दूसरेके राज्यका विचारस भेदले ॥ ४ ॥

अन्त पालास्तु कुर्वीत मित्राण्याटविकांस्तथा ।
जलस्थलानि मार्गांश्च विद्यात्स्वबलसिद्धये ॥ ५ ॥

मित्र तथा जंगलके रहनेवालोंको अपने अन्त पुरका रक्षक नियत करे, अपनी सेनाकी सिद्धिके लिये जल और स्थलके मार्गोंको जाने ॥ ५ ॥

नाविज्ञात पुर शत्रो प्रविशेच्च न संसदि ।
कालमीक्षेत कार्यार्थमनुज्ञातश्च निष्पतेत ॥ ६ ॥

बिनाजानेहुए शत्रुके पुर या सभामें प्रवेश न करे कार्यकी इच्छावाला समयकी परखै काल देखकर आक्रमण करे ॥ ६ ॥

सारवत्ताञ्च राष्ट्रस्य दुर्गन्तद्गुप्तिमेव च ।
छिद्र शत्रोर्विजानीयात्कोपमित्रबलानि च ॥ ७ ॥

राज्यकी सारवत्ता किला और उस किलेकी रक्षा, कोष मित्र, बल और शत्रुका छिद्र यह सब जाने ॥ ७ ॥

उद्यतेष्वपि शस्त्रेषु यथोक्त शासनं वदेत् ।
रागापरागौ जानीयात्प्रकृतीनाञ्च भर्त्तरि ॥ ८ ॥

शत्रुओंके उद्यम होनेपरभी यथोक्त अपने शासनका कहना चाहिये और प्रजाकी स्वामीपर प्रीति और विराग जाने ॥ ८ ॥

कृत्यपक्षस्य चोपाय कुर्यादनविलक्षित ।
पृच्छमानाअपि न ब्रूयात्स्वस्वामिप्रकृतिच्युतिम् ॥९॥

मित्रपक्षका उपायकरनाद। बिनाजाने उसको करै, और अपने स्वामीकी प्रजाकी हीनताका पूँछा हुआभी न कहै ॥ ९ ॥

ब्रूयात्प्रसृतया वाचा सर्वं वेद भवानिति ॥ १० ॥

और कामलवार्णाम कहै कि आप सब जानतेहैं ॥ १० ॥

फलन नाम्ना प्रम्यण कर्मणा च महीयसा ।

कुर्याच्चतुर्विधं स्तोत्रं पक्षयोरुभयोरपि ॥ ११ ॥

ल नाम द्रव्य और वडेकर्म इन चारबातोसे दोनो पक्षोंका चारप्रकार-
तोत्र (प्रशंसायुक्त प्रबन्ध) करै ॥ ११ ॥

विद्याशिल्पोपदेशेन संश्लिष्योभयवेतनैः ।

कृत्यपक्षञ्च जानीयात्तद्भर्तुश्च विचेष्टितम् ॥ १२ ॥

विद्या और शिल्पके उपदेशसे दोनोओर वेतनसे संयुक्त हुआ, कर्तव्य-
और उस स्वामीकी चेष्टाको जानै ॥ १२ ॥

तीर्थाश्रमाश्रयस्थाने शास्त्रविज्ञानहेतुना ।

तपस्विव्यञ्जनोपेतैः स्वचरैः सह संवसेत् ॥ १३ ॥

तीर्थ,आश्रम, आश्रयस्थानमें शास्त्रविज्ञानके हेतुसे तपस्वियोके समान
किये अपने दूतोंके साथ निवास करै ॥ १३ ॥

सन्तापं कुलमैश्वर्यं त्यागमुत्थानसौष्ठवम् ।

अक्षुद्रतां भद्रताञ्च भर्त्तुर्भेद्येषु दर्शयेत् ॥ १४ ॥

सन्ताप, कुल, ऐश्वर्य, त्याग, उन्नतिकी श्रेष्ठता, अक्षुद्रता और श्रेष्ठता
ामीके शत्रुओंमें दिखावे ॥ १४ ॥

सहेतानिष्टवचनं कामक्रोधञ्च वर्जयेत् ।

नान्यैः शयीत भावं स्वं रक्षेद्विद्यात्परस्य च ॥ १५ ॥

उसके अनिष्ट वचनभी सहै, काम और क्रोधको वर्जितकरै, दूसरोंके
ाथ न सोवै, अपने भावकी रक्षा करताहुआ दूसरेका भाव जानै ॥१५॥

काले व्रजति मेधावी न स्विद्येतात्मसिद्धये ।

क्षिप्यमाणञ्च बुध्येत कालं नानार्थलोभनैः ॥ १६ ॥

समयपर बुद्धिमान् गमन करै आत्मसिद्धिके लिये खेद न करै और अनेक
प्रकारके लुभानेसे व्यतीत होतेहुए समयको जानै ॥ १६ ॥

एतेष्वहःसु गच्छत्सु न तत्र पृथिवीपते ।
पश्यति व्यसनं किञ्चित्स्वयं वा कर्तुमिच्छति ॥ १७

इन दिनोंके जानेसे कोई राजाका विकार न देखसके न जो स्वयं
मको इच्छा हो उसको कोई जाने ॥ १७ ॥

स्वान्तप्रकोपमथवा विनेतुं नीतिवित्तमः ।
सस्यादेः संग्रहं कर्तुं स्वदुर्गे दुर्गसत्क्रियाम् ॥ १८

नीतिका जाननेवाला अपने भीतरी क्रोधको दूर करताहुआ सस्य
न्यका संग्रह करनेका अपने दुर्ग किलेका सत्कार करे ॥ १८ ॥

स्वपक्षाभ्युदयाकाङ्क्षी देशकालावुदीक्षते ।
तत्र यात्री स्वयं चित्तमाश्वास्यैव समीहते ॥ १९

अपने पक्षके उदयकी इच्छावाला देशकालमें उदयको देखताहै, यह
त्राकी इच्छावाला स्वयं अपने चित्तको आश्वासन करके चेष्टा करताहै १९

यात्राकालक्षयार्थी वा तत्र चायं विलम्बते ।
काले विक्षिप्यमाणे तु तर्कयेदिति पण्डितः ॥ २०

और यात्राके समयका क्षयकारक उसमें विलम्ब करताहै, कालके
तीत होनेपर चतुरको विचारना चाहिये, देर होनेका क्या कारणहै ॥२

कार्यकालविपत्तिञ्च व्यक्तां ज्ञात्वा विनिष्पतेत् ।
तिष्ठन्यात्राविशेषार्थान्भर्तुः सर्वान्निवेदयेत् ॥ २१

कार्य और कालकी विपत्तिको स्पष्ट जानकर आक्रमण करे और सब
जाननेवाले स्थितहैं पीछे अपने स्वामीसे सब निवेदन करे ॥ २१

रिपोः शत्रुपरिच्छेदं सुहृद्बन्धुविभेदनम् ।
दुर्गकोषबलज्ञानं कृत्यपक्षोपसंग्रहम् ॥ २२ ॥

शत्रुका, शत्रुके विनाशको जाने उसके सुहृदबन्धुओंका भेद, दुर्ग

नलका ज्ञान, अपने कार्य कर्तव्यके करनेवालोंका संग्रह ॥ २२ ॥

राष्ट्राण्यपेतपालानामात्मसात्करणं तथा ।
युद्धापसारभूज्ञानं दूतकर्मेति कथ्यते ॥ २३ ॥

राजाके पालकोंको अपने अधीन करना, युद्ध और पलायनकी भूमिका यह सब दूतके कर्म है ॥ २३ ॥

दूतेनैव नरेन्द्रस्तु कुर्वीतारिविकर्षणम् ।
स्वपक्षे च विजानीयात्परदूतविचेष्टितम् ॥ २४ ॥

दूतकेही द्वारा राजा शत्रुका आकर्षण करै और अपने पक्षमे शत्रुके की चेष्टा जानै ॥ २४ ॥

तर्केङ्गितज्ञः स्मृतिमान्मृदुर्लघुपरिक्रमः ।
क्लेशायाससहो दक्षश्चरः स्यात्प्रतिपत्तिमान् ॥ २५ ॥

तर्क और चेष्टाका जाननेवाला, स्मृतिवाला, शीघ्रपराक्रमी, क्लेश और श्रमका सहनेवाला, चतुरता, काल बुद्धि उपार्जन करनेवाला दूत होना चाहिये ॥ २५ ॥

तपस्विलिङ्गिनो धूर्त्ताः पण्यशिल्पोपजीविकाः ।
चराश्चरेयुः परितः पिबन्तो जगतां मतम् ॥ २६ ॥

तपस्वियोंका वेश धारण कियेहुए धूर्त व्यापार और शिल्पसे आजीविकावाले दूत सबओर जगत्का समाचार लेते हुए विचरण करै ॥ २६ ॥

निर्गच्छेयुर्विशेयुश्च सर्ववार्त्ताविदोऽन्वहम् ।
चराः सकाशान्नृपतेश्चक्षुर्दूरतरं हि ते ॥ २७ ॥

सब वार्ताके जाननेवाले दूत प्रतिदिन राजभवनमें आवै जावै, कारण कि, दूत राजाकी दूरकी आखै है ॥ २७ ॥

सूक्ष्मं सूत्रप्रचारेण पश्येद्वै विधिचेष्टितम् ।

स्वपन्नपि च जागर्ति चारचक्षुर्महीपतिः ॥ २८ ॥

अति सूक्ष्मसूक्ष्मके प्रचारवाले छिद्रोमें भी सब विधान और चेष्टा मं दूतरूप नेत्रोंवाला राजा सोताहुआ भी जागता है ॥ २८ ॥

विवस्वानिव तेजोभिर्नभस्वानिव चेष्टितैः ।

राजा चारैर्जगत्कृत्स्नं व्याप्नुयाल्लोकसम्मतैः ॥ २९ ॥

तेजोंसे सूर्यके समान, चेष्टाओंसे पवनकी समान, राजा लोकसम्मत दूतोंसे सब जगत्को व्याप्त करले ॥ २९ ॥

चारचक्षुर्नरेन्द्रः स्यात्सम्पतेत्तेन भूयसा ।

अनेनासम्पतन्मौढ्यात्पतत्यन्ध समेऽपि हि ॥ ३० ॥

जो राजा दूतरूप आँखोंवाला होता है उसपर बड़ा सम्पात होने वशता होती है जो मूर्खतासे इसपर चढाई करताहै, वह समता होनेपर अन्धेकी समान गिरता है ॥ ३० ॥

सर्वसम्पत्समुदयं सर्वावस्थाविचेष्टितम् ।

चारेण द्विषतां विद्याचदेशप्रार्थनानि च ॥ ३१ ॥

सम्पूर्ण सम्पत्तिसे उदित सम्पूर्ण अवस्थामें चेष्टावाला दूतके द्वारा शत्रुके देशकी प्रार्थनाको जाने ॥ ३१ ॥

प्रकाशश्चाप्रकाशश्च चरस्तु द्विविधः स्मृतः ।

अप्रकाशोऽयमुद्दिष्टः प्रकाशो दूत उच्यते ॥ ३२ ॥

एक गुप्त एक प्रगट दो प्रकारके दूत होतेहैं अप्रकाशका वर्णन करचुके अब प्रकाशका वर्णन करते हैं ॥ ३२ ॥

चारेण प्रचरेद्राजा सूत्रेणाग्निरिवाध्वरे ।

दूते सन्धानमायाते चरस्सर्वा प्रतिष्ठिता ॥ ३३ ॥

राजा दूतके सत्यकथनानुसार विचरण करे या कार्य करे जैसे

सूत्रअनुसार यज्ञका कार्य करता है, दूतकेही सन्निधि होनेसे दूतकी क्रिया प्रतिष्ठित होती है ॥ ३३ ॥

तीक्ष्णः प्रव्रजितश्चैव सत्री विषद एव च ।
एते ज्ञेयास्तु सञ्चाराः सर्वे नान्योन्यवेदिनः ॥ ३४ ॥

तीक्ष्णप्रकृति सन्यासी यज्ञकर्ता विषदेनेवाला यह सचरण करनेवाले हैं, इनको परस्पर कोई नहीं जानसकता ॥ ३४ ॥

संस्थानवत्यः संस्थाश्च कार्याः कार्यप्रसिद्धये ।
तिष्ठेयुः पार्श्वसञ्चाराः परिचर्यापवादिनः ॥ ३५ ॥

कार्य अकार्यकी सिद्धिके लिये स्थितिकी मर्यादा करनी चाहिये और सेवाके बहानेसे वे राजाके समीप भी स्थिति करै ॥ ३५ ॥

बालः कृषीवलो लिङ्गी भिक्षुकोऽध्यापकस्तथा ।
संस्थाः स्युश्चारसंस्थित्यै दत्तदायाःशुभाशयाः॥ ३६ ॥

बालक, किसान, वनचारी, भिक्षुक, अध्यापक, यह दूतोंके वेशकी मर्यादाहै, इन कार्योंको करतेहुए शुभ आशयवाले वृत्तिका भोग करै॥ ३६॥

स्वपक्षे परपक्षे च यावान्कश्चिद्व्यवस्थितः ।
सर्वस्मिंस्तत्र सञ्चारास्तिष्ठेयुश्चित्तवेदिनः ॥ ३७ ॥

अपने पक्ष और परपक्षमें जो कोई जिसप्रकार स्थित है, चित्तके जाननेवाले दूत सब प्रकारसे उसमें स्थित हो ॥ ३७ ॥

स्वपक्षे परपक्षे च यो न वेद चिकीर्षितम् ।
जाग्रन्नपि सुषुप्तोऽसौ न भूयः प्रतिबुद्ध्यते ॥ ३८ ॥

जो अपने और दूसरेके पक्षकी करनेकी इच्छाको नहीं जानता वह राजा जागता हुआभी सोता है, और फिर नहीं जागता है ॥ ३८ ॥

कारणाकारणक्रुद्धान्बुध्येत स्वपरिग्रहे ।

पापानकारणकुद्धास्तूष्णीं दण्डेन साधयेत् ॥ ३९ ॥

अपने कुटुम्बियोंके कारण और अकारणसे उत्पन्नहुए क्रोधको जाने, विनाकारणसेही उत्पन्नहुए पापी हैं उनको दण्डसे चुपकेही साधन करै ॥ ३९ ॥

ये तु कारणत क्रुद्धास्तान्वशीकृत्य सत्सेव ।
शमयेद्दानमानाभ्यां छिद्रञ्च परिपूरयेत ॥ ४० ॥

और जो कारणवश क्रोधित हुए हैं, उनको उपायसे वश कर उनके स्थिति करै, दान मानसे उनका क्रोध शान्तकर छिद्रको पूर्ण करै ॥ ४० ॥

अणुनापि प्रविश्यारिं छिद्रेण बलवत्तरम् ।
नि शेषं भञ्जयेद्राष्ट्रं पानपात्रमिवोदकम् ॥ ४१ ॥

बलवान् शत्रुके थोडेस छिद्रमेंभी प्रवेशकर सब राज्यको नष्ट करता है जैसे पानपात्रमें थोडा २ जल भरकर उसको युक्त देताहै ॥ ४१ ॥

जडमूकान्धबधिरच्छद्मानः पण्डकास्तथा ।
किराता वामना कुब्जास्तद्विधा ये च कारका ॥ ४२ ॥

जड मूक अन्धे बहरे, पण्ड किरात, बौने कुबडे तथा और २ इसप्रकारके कार्य करनेवाले हैं ॥ ४२ ॥

भिक्षुकाश्चारणा दास्यो नानाकार्यकलाविद ।
अन्त पुरगता वार्त्तामाहरेयुरलक्षिता ॥ ४३ ॥

भिक्षुक चारण दास अनेक कार्य और कटाक्ष जाननेवाले अन्तःपुरकी बातें बिना किसीके जाने सुने लावें ॥ ४३ ॥

छत्रव्यजनभृङ्गारयानवाहनधारिण ।
महामात्रबहिर्वार्त्तां विदुरन्ये च तद्विधा ॥ ४४ ॥

छत्र चमर झारी यान वाहन (सवारी) के धारण करनेवाले महामात्र बाहरके समाचारोंको जानें, तथा इसी प्रकारसे दूसरेभी ॥ ४४ ॥

सद्व्यञ्जनकर्त्तारस्तल्पकाव्ययकास्तथा ।
प्रसाधका भोजकाश्च गात्रसंवाहका अपि ॥ ४५ ॥

अच्छी रसोई करनेवाले, शय्या करनेमें चतुर, थोडा व्यय करनेवाले, शृगार करनेवाले, भोजन करानेवाले, शरीर दाबनेवाले ॥ ४५ ॥

जलताम्बूलकुसुमगन्धभूषणदायकाः ।
कर्त्तव्याश्च सदा ह्येते ये चान्येऽभ्यासवर्तिनः ॥४६॥

जल, ताम्बूल, फूल, गध और भूषणोंके देनेवाले, तथा जो इस कार्यका यास किये हों उनमें यह ऊपर कहे हुएही नियत करने चाहिये ॥४६॥

संज्ञाभिर्मूर्च्छितैर्लेख्यैराकारैरिङ्गितैरपि ।
सुसश्चरेयुरव्यग्राश्चराश्चर्या परस्परम् ॥ ४७ ॥

सज्ञासे जाने हुए, मूर्च्छित, लेख, आकार भीतरी, चेष्टा द्वारा चरलोग पर चित्तसे परस्पर दौत्यकार्य करतेहुए विचरण करै ॥ ४७ ॥

समापिबन्तो जगता मतानि जलानि भूमेरिव सूर्यपादाः ।
अनेकशिल्पाध्ययनप्रवीणाश्चराश्चरेयुर्बहुलिङ्गिरूपाः ४८॥

सम्पूर्ण जगत्की इच्छाको जानते हुए जैसे सूर्यकी किरणे जलोंको ग्रहण रती है, इसप्रकार सबकी व्यवस्था ग्रहण करतेहुए अनेक शिल्पविद्या ोर अध्यापनविद्यामे चतुर दूतगण अनेकप्रकारके रूप धारणकिये विचरण करै ॥ ४८ ॥

येन प्रकारेण परानुपेयात्परापरज्ञश्च समृद्धिहेतोः ।
तमात्मनिस्वस्थमतिस्तुतज्ज्ञोर्वियुज्यमानंहिपरेणविद्यात् ४९

इति श्रीकामन्दकीये नीतिसारे दूतप्रचारश्चरविकल्पो
नाम द्वादशः सर्गः ॥१२॥

पर और अपरका जाननेवाला समृद्धिकी इच्छा करताहुआ जिसप्रकार

बुद्धिमान् उत्साहसे सम्पन्न प्रभुशक्तिसे युक्त राजा लक्ष्मी पानेका परम पात्र होताहै, जैसे सागर जलोका महापात्रहै ॥ ४ ॥

नलिनीवाम्बुसम्पत्या बुद्ध्या श्रीः परिपाल्यते ।
उत्थानव्यवसायाभ्यां विस्तारमुपनीयते ॥ ५ ॥

जैसे जलकी सम्पत्तिसे कमलिनी पालित होतीहै, इसीप्रकार बुद्धिसे लक्ष्मीकी पालना होती है उद्योग और व्यापारसे इसका विस्तार होताहै ५॥

लक्ष्मीरुत्साहसम्पन्नान्बुद्धिशुद्धं प्रसर्पतः ।
नापैति कायाच्छायेव विस्तारं चोपगच्छति ॥ ६ ॥

उत्साहसम्पन्न और बुद्धिसे निर्मल कर्म करनेवाले पुरुषोंको लक्ष्मी नहीं त्यागन करती, किन्तु विस्तारको प्राप्त होती है जैसे छाया शरीरको भी नही छोडती ॥ ६ ॥

वीतव्यसनमश्रान्तं महोत्साहं महामतिम् ।
प्रविशन्ति सदा लक्ष्म्यः सरित्पतिमिवापगाः ॥ ७ ॥

व्यसनोंसे रहित श्रमरहित महा उत्साह और महामतिवाले राजामें सदा लक्ष्मी प्रवेश करती है, जैसे नदी समुद्रमें ॥ ७ ॥

सत्वबुद्ध्युपपन्नोऽपि व्यसनग्रस्तमानसः ।
स्त्रीभिः पण्ड इव श्रीभिरलसः परिभूयते ॥ ८ ॥

सत्वबुद्धिसे सम्पन्न हुआ भी यदि मन व्यसनोंसे ग्रस्त होजाय, तौ वह आलसी होकर लक्ष्मीसे तिरस्कार किया जाता है, जिस प्रकार, नपुंसका स्त्रियोंसे तिरस्कार किया जाता है ॥ ८ ॥

उत्थानेनैधयेत्सर्वमिन्धनेनेव पावकम् ।
श्रियं हि सततोत्थायी दुर्बलोऽपि समश्नुते ॥ ९ ॥

उद्योग करनेसे सबकी वृद्धि करै जिसप्रकार ईंधन डालनेसे अग्नि बढती है, दुर्बल पुरुष भी सदा उद्योगी होनेसे लक्ष्मीको प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

भोक्तुं पुरुषकारेण दुष्टस्त्रियमिव श्रियम् ।
व्यवसाय सदैवेच्छेन्न हि क्लीबवदाचरेत् ॥ १० ॥

दुष्ट स्त्रीकी समान लक्ष्मीको पुरुषकारसे भोगनेके लिये सदा व्यवसा की इच्छा करे नपुंसकता न करे ॥ १० ॥

वशे श्रिय सदोत्साही सैंही वृत्तिमुपाश्रित ।
कचग्रहेण कुर्वीत दुर्विनीतामिव स्त्रियम् ॥ ११ ॥

सदा उत्साहवाला सिंहकी वृत्तिका आश्रय लियेहुए लक्ष्मीको व वशमें करे जिसप्रकारसे बाल पकडकर दुर्विनीत स्त्रीको अपने व किया जाता है ॥ ११ ॥

किरीटमणिचित्रेषु मूर्द्धसु प्राणसारिषु ।
नास्त्वा विद्विषा पाद पुरुषो भद्रमश्नुते ॥ १२ ॥

यह पुरुष मणियोंसे निर्मित किरीटवाले शिरस्त्रटोपधारी शत्रुओं मस्तकपर चरणदिये विना कल्याणको नहीं प्राप्त होसकता ॥ १२ ॥

प्रयत्नमेर्यमाणेन महता चित्तहस्तिना ।
स्ववैरिद्रुमोत्खातमकृत्वेव कुत सुखम् ॥ १३ ॥

चित्तरूपी हाथीका बडे प्रयत्नसे प्रेरित करके वैरीरूपी वृक्षका सर उखाडदिये विना सुखकी प्राप्ति कहां होसकती है ॥ १३ ॥

हेलाव्यस्तस्फुरत्कान्तिखड्गांशुपरिपिञ्जरे ।
भीमत्वरिकराकारेराज्ञीय से भुजे श्रिय ॥ १४ ॥

छलिसा इधर उधर चलायमान होकर स्फुरायमाण कान्तिवाले खड्ग अंशुमाल समूहमाल शोभायमान हाथीकी सूंडकी समान भुजाओंसे हाथों लक्ष्मी सिमटीजाती है ॥ १४ ॥

उपेरुपेत्तगामिच्छन्त्यदान्यायच्छन्न महान् ।

नीचैर्नीचैस्तरां याति निपातभयशङ्कया ॥ १५ ॥

ऊंचे २ की इच्छा करता हुआ महान् पदपर आरूढ होजाता है और गिरनेके भयकी शंकासे नीचे२ होताहुआ अधिकतर नीचाहोजाताहै॥ १५॥

प्रमाणाभ्यधिकस्यापि महत्सत्वमधिष्ठितः ।

पदं स धत्ते शिरसि करिणः केसरी यथा ॥ १६ ॥

प्रमाणसे अधिकभी महत्पदकी इच्छा करताहुआ यह पुरुष महापद पर आरूढ होजाता है, जिसप्रकार सिंह गजेन्द्रके मस्तकपर अधिष्ठित होजाता है ॥ १६ ॥

गतभीर्भीतिजननं भोगं भोगीव दर्शयेत् ।

यथाबलञ्च कुर्वीत रिपोर्दण्डनिपातनम् ॥ १७ ॥

निर्भय पुरुषको भी भय देता सर्पके फणोंकी समान अपना आडम्बर दिखावे और बलके अनुसार शत्रुपर दण्ड निपातन करै ॥ १७ ॥

प्रकृतिव्यसनं यस्मात्तत्प्रशाम्य समुत्पतेत् ।

अनयापनयाभ्यांञ्च जायते दैवतोऽपि वा ॥ १८ ॥

प्रकृतिके व्यसनको शान्त करकेही आक्रमण करै । प्रकृतिकी रुष्टता अनीति, अनादर और दैवके कोपसे होती है ॥ १८ ॥

यस्माद्धि व्यसति श्रेयस्तस्माद्व्यसनमुच्यते ।

व्यसन्यधोऽधो व्रजति तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥ १९ ॥

जिसे कि, कल्याण दूर होजाताहै इसीकारण इसकानाम व्यसनहै व्यसनसेही यह पुरुष नीचे २ चलाजाताहै इसकारण व्यसनको त्यागनकरै१९॥

हुताशनो जलं व्याधिर्दुर्भिक्षो मरकस्तथा ।

इति पञ्चविधं दैवं व्यसनं मानुषं परम् ॥ २० ॥

अग्नि, जल, व्याधि, दुर्भिक्ष और मृत्यु यह पाँच दैवहै, यह मनुष्यको

पीडित करैं तो उसका क्या दोष ? परन्तु व्यसनसे पीडित होना मनुष्य निज दोषहै ॥ २० ॥

दैवं पुरुषकारेण शान्त्या च प्रशमन्नयेत् ।
उत्थापयेत्तेन नीत्या च मानुषं कार्यतत्त्ववित् ॥२१

दैवको पुरुषकार और शान्तिकर्मसे अपने अनुकूल करै, और कार्य कर्ता मानुषी व्यसन उद्योग तथा उन्नतिकी इच्छा और नीतिसे त्यागकरै

स्वाम्यादि मित्रपर्य्यन्तं प्राकृतं मण्डलं हि वः ।
तत्र कर्म प्रवक्ष्यामि व्यसनञ्च यथाक्रमम् ॥ २२

जिसकारण कि स्वामीसे लेकर मित्रपर्यन्त प्रकृतिमण्डल है उ कर्म और व्यसनको यथाक्रमसे कहता हूं ॥ २२ ॥

मन्त्रो मन्त्रफलावाप्तिः कार्यानुष्ठानमायतिः ॥
आयव्ययौ दण्डनीतिरमित्रप्रतिषेधनम् ॥ २३ ॥

मन्त्र मन्त्रके फलकी प्राप्ति कार्यका अनुष्ठान आगेके लिये फलकी प्रा आमदनी खर्च दण्डनीति अमित्रका प्रतिषेध ॥ २३ ॥

व्यसनस्य प्रतीकारो राजराज्याभिषेचनम् ।
इत्यमात्यस्य कर्मेदं हन्ति स व्यसनान्वितः ॥ २४

व्यसनोंका प्रतीकार, राज राज्याभिषेक यह अमात्यके सब कर्म उसके व्यसनी होनेसे यह सब नष्ट होतेहैं ॥ २४ ॥

अमात्यैर्व्यसनोपेतैर्ह्रियमाणो महीपतिः ।
अयुक्त एवोत्पतति छिन्नपक्ष इवाण्डजः ॥ २५ ॥

व्यसनोंसे युक्त हुए मंत्रियोंद्वारा हरण होताहुआ राजा छिन्नपक्ष पक्षीकी समान न चूककर पतित होताहै ॥ २५ ॥

हिरण्यधान्यवस्त्राणि वाहनानि तथैव च ।

तथान्ये द्रव्यनिचयाः प्रजातः सम्भवन्ति हि ॥ २६ ॥

सुवर्ण, धान्य, वस्त्र और वाहन तथा औरभी सम्पूर्ण द्रव्य प्रजासेही होतेहै ॥ २६ ॥

वार्त्ता प्रजा साधयति वार्त्ता वै लोकसंश्रयः ।
प्रजायां व्यसनस्थायां न किञ्चिदपि सिध्यति ॥ २७ ॥

वार्ताही प्रजाको साधती है वार्ताही लोकको आश्रित करती है, यदि व्यसनी होजाय तौ फिर कुछभी सिद्ध नही होसकता ॥ २७ ॥

प्रजानामापदि स्थानं रक्षणं कोषदण्डयोः ।
पौराश्चैवोपकुर्वन्ति संश्रयायेह दुर्गिणाम् ॥ २८ ॥

प्रजाओंकी आपदामें स्थिति रखनेके निमित्त ही कोषदण्डका रक्षण है : पुरवासियोंके उपकारके निमित्त दुर्गका आश्रय है ॥ २८ ॥

तूष्णी युद्धं जनत्राणं मित्रामित्रपरिग्रहः ।
सामन्ताटविकाबाधानिरोधो दुर्गमुच्यते ॥ २९ ॥

मौन होकर युद्ध करना, अपने जनोंकी रक्षा, मित्र, अमित्रका परिग्रहण, सामन्त और वनवासियोंकी बाधा निरोधके निमित्त दुर्गका विधान है ॥ २९ ॥

स्वपक्षैः परपक्षैश्च दुर्गस्थः पूज्यते नृपः ।
एतद्धि दुर्गव्यसनात्सर्वमेव न विद्यते ॥ ३० ॥

दुर्गमे स्थितहुआ राजा अपने और पराये शत्रुके पक्षसे पूजित होता है और दुर्गके व्यसनसे इनमेंसे कोई बात भी नही होती ॥ ३० ॥

भृत्यानां भरणं दानं भूषणं वाहनक्रयः ।
स्थैर्यं परोपजापश्च दुर्गसंस्कार एव च ॥ ३१ ॥

भृत्यजनोंका भरण, पोषण, वाहन, दान, भूषण, क्रयपदार्थ, स्थिरता, शत्रुको ताप यह सब दुर्गके सस्कारसेही होते है ॥ ३१ ॥

सेतुबन्धवणिक्कर्मप्रजामित्रपरिग्रह ।
धर्मकामार्थसिद्धिश्च कोपादेतत्मवर्तते ॥ ३२ ॥

पुलका बाँधना व्यापार कर्म प्रजामित्रोंका संग्रह, धर्म, काम अर्थकी सिद्धि यह सब कोपसेही प्रवृत्त होती हैं ॥ ३२ ॥

कोपमूलो हि राजेति प्रवादः सार्वलौकिक ।
एतत्सर्वं जहातीह कोपव्यसनवान्नृप ॥ ३३ ॥

कोपका मूल ही राजा है यह सार्वलौकिक जनश्रुति है कोपव्यसन मानहुआ राजा यह सब त्यागन करदेता है ॥ ३३ ॥

क्षीणं बलं वर्द्धयति स्वतो गृह्णाति च प्रजा ।
कोपवान्पृथिवीपालः परेरप्युपजीव्यते ॥ ३४ ॥

क्षीणहुए बलको बढाता तथा प्रजाको स्वयं ग्रहण करता इस्मे कोषवाला राजा शत्रुओंको भी उपजीवी होता है अर्थात् शत्रुभी उस आश्रित होजाते हैं ॥ ३४ ॥

मित्रामित्रहिरण्यानां भूमीनाञ्च प्रसारणम् ।
दूरकार्याशुकारित्वं छद्मस्य परिपालनम् ॥ ३५ ॥

शत्रु मित्र सुवर्ण और भूमियोंका प्रसार देरमें करना और शीघ्र करना मालहुई वस्तुकी रक्षा करना ॥ ३५ ॥

परचक्राभिघातश्च स्वदण्डस्य परिग्रहः ।
दण्डादेतत्प्रभवति याति तद्व्यसने क्षयम् ॥ ३६ ॥

शत्रुचक्रका नाश और अपने दण्डका संग्रह यह सब कार्य दण्डसे होते हैं और दण्डके व्यसनसे क्षय होजाते हैं ॥ ३६ ॥

अरयोऽपि हि मित्रत्वं यान्ति दण्डवतो ध्रुवम् ।
दण्डप्रायो हि नृपतिर्भुनक्त्याक्रम्य मेदिनीम् ॥ ३७

यह कार्य हुवा या नहीं, इसका ज्ञान किये न कियेकी परीक्षा, सन्तुष्ट
ार असुन्तुष्टका विचार, सबके वृत्तिका यथायोग्य विचार, मध्य और
दासीन पुरुषोंके चरित्रका ज्ञान, उनके कार्यकी सिद्धि और पालना,
ापने मित्रोंका सग्रह और शत्रुओंका निग्रह ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

पुत्रदारादिभिर्गुप्तिर्बन्धुवर्गपरिग्रहः ।
स्ववृद्धिपवनादीना स्ववृत्तीना प्रवर्त्तनम् ॥ ५० ॥

पुत्र, स्त्री आदिकी रक्षा, बधुजनोका ग्रहण, अपनी वृद्धि और अपनी
विित्र वृत्तियोंका वर्ताव ॥ ५० ॥

असताञ्च परिक्लेशः सताञ्च परिगूहनम् ।
अहिंसा सर्वभूतानामधर्माणाञ्च वर्जनम् ॥ ५१ ॥

असत्पुरुषोंको क्लेशित करना, सत्पुरुषोंकी रक्षा करनी, किसी प्राणी-
की हिसा न करनी और अधर्मोंका त्याग भलीभाँति करना ॥ ५१ ॥

अकार्यप्रतिषेधश्च कार्याणाञ्च प्रवर्त्तनम् ।
प्रदानञ्च प्रदेयानामदेयानाञ्च संग्रहः ॥ ५२ ॥

अकार्य न करना, सुकार्यमे वर्तना, देने योग्य वस्तुका देना, अदेयवस्तु-
की रक्षा करनी ॥ ५२ ॥

अदण्डनमदण्ड्यानां दण्ड्यानाञ्चापि दण्डनम् ।
अग्राह्याग्रहणञ्चैव ग्राह्याणां ग्रहणं तथा ॥ ५३ ॥

नहीं है उनको दण्ड न देना और जो दण्डके योग्य
जो अगृहीत नहीं है उनका ग्रहण न करना और जो
ग्रहण करना ॥ ५३ ॥

करणमनर्थस्य च वर्जनम् ।
दानं स्वयं वा प्रतिमोक्षणम् ॥ ५४ ॥

धूर्त्तता शाठ्ययुक्तेषु सत्सु सद्व्रतदर्शनम् ॥ ४३ ॥

युद्धमें कुशलता मायासे पराये चित्तमें प्रवेश करजाना शठोंके प्रति धू-र्त्तता, महात्माओंमें सुव्रत् का अनुष्ठान ॥ ४३ ॥

मन्त्रोपयोगोऽनुमन्त्रत्व तद्रक्षा स्वास्थ्यमेव च ।
उपेक्षा सामदानस्य भेदो दण्डस्य साधनम् ॥ ४४

मन्त्रका उपयोग उसकी फिर अनुमति देना उसकी रक्षा स्वास्थ्य उपेक्षा साम दानका विचार, भेद दण्डका साधन ॥ ४४ ॥

प्रशास्त्रध्यक्षसेनानां मन्त्र्यमात्यपुरोधसाम् ।
सम्यक् प्रचारविज्ञान दुष्टानाञ्चावरोधनम् ॥ ४५ ।

अध्यक्ष और सेनाओंका शासन मन्त्री प्रधान, अमात्य और पुरोहि-तोंके प्रचार कर्मका भलीभाँति ज्ञान होना दुष्टोंको दुष्टकर्मसे रोकना ४५।

गतागतपरिज्ञानं दूतसम्प्रेषणानि च ।
प्रकृतिव्यसनापोहश्च प्रशमनानि च ॥ ४६ ॥

आये गयेका ज्ञान होना, दूतोंके भेजनेका विधान प्रकृतियोंके व्यस-न और कोपकी शान्ति ॥ ४६ ॥

गुरूणामनुवृत्तिश्च पूज्यानाञ्चाभिपूजनम् ।
धर्मासनप्रतिष्ठानं राज्यकण्टकशोधनम् ॥ ४७ ॥

गुरुओंके अनुकूल वर्तना पूज्यजनोंका पूजन करना, धर्मासनपर स्थिति, राज्यकण्टकोंका शोधन ॥ ४७ ॥

भृताभृतपरिज्ञान कृताकृतपरीक्षणम् ।
तुष्टातुष्टविचारश्च सर्वेषामनुजीवनम् ॥ ४८ ॥
मध्योदासीनचरितज्ञानं शत्रिसान्धिपालनम् ।
परिग्रहस्तु मित्राणाममित्राणाञ्च निग्रहः ॥ ४९ ॥

यदि राजाका चित्त धर्म, अर्थमें व्यग्र होरहाहो वा शरीर अस्वस्थ हो तब सम्पूर्ण न्यायके कृत्य मंत्री यथायोग्य करे ॥ ६० ॥

वाग्दण्डयोश्च पारुष्यमर्थदूषणमेव च ।
पानं स्त्री मृगया द्यूतं व्यसनानि महीपतेः ॥ ६१ ॥

वाणीका दण्ड, कठोर वचन कहना, कठोर रहना तथा धनको नष्ट करना, पान, स्त्रीमें आसक्ति, निरन्तर शिकार और जुआ खेलना यह राजाके सन है ॥ ६१ ॥

आलस्यं स्तब्धता दर्पः प्रमादो वैरकारिता ।
इति पूर्वोपदिष्टं हि सचिवव्यसनं स्मृतम् ॥ ६२ ॥

आलस्य, स्तब्धता (जड़पना) घमण्ड, प्रमाद, सबसे वैर करना यह र्वमें उपदेश किये मन्त्रीके व्यसनहै ॥ ६२ ॥

अतिवृष्टिरनावृष्टिः शलभा मूषकाः शुकाः ।
असत्करश्च दण्डश्च परचक्राणि तस्कराः ॥ ६३ ॥

अतिवर्षाका होना, बहुत न्यून वर्षाहोना, टीडीकी पडना, मूसोंकी अधिकाई, तोतोंका खेतोपर टूटपडना, असत्कार्य, दण्ड, शत्रुचक्र, चोर ॥ ६३ ॥

राजानीकप्रियोत्सर्गौ मकरव्याधिपीडनम् ।
पशूनां मरणं रोगो राष्ट्रव्यसनमुच्यते ॥ ६४ ॥

राजाकी सेनाका प्रियपन त्याग, नाके और व्याधियोंकी पीडा, पशुओंका मरण और रोग फैलना यह राज्यके व्यसन है ॥ ६४ ॥

विशीर्णयन्त्रप्राकारपरिखात्वमशस्त्रता ।
क्षीणवासेन्धनान्नत्वं दुर्गव्यसनमुच्यते ॥ ६५ ॥

कले, परिखा और खाई छिन्न भिन्न होजानी, शस्त्रोंका न होना, वस्त्र इनका क्षीण होजाना यह दुर्गके व्यसन है ॥ ६५ ॥

[illegible] परिक्षिप्तो भा[illegible] [illegible]श्चितस्तथा ।

भप्रयुक्त वस्तुका साधन और अनर्थका त्याग, न्यायपूर्वक करना म और स्वयं या उसका छोडभी देना ॥ ५४ ॥

मवर्द्धन प्रधानानां निरस्यानाञ्च निर्हृति ।
वैपम्यानां प्रशमनं भृत्यानाञ्चाविराधनम् ॥ ५५ ।

प्रधानवस्तुओंका बढाना और निकालने योग्य वस्तुओंका निकाल विषमोंका शान्त करना तथा भृत्यगणोंका विरोध न होने देना ॥ ५५

अविज्ञातस्य विज्ञानं विज्ञातस्य च निश्चयः ।
आरम्भः कर्म्मणां शश्वदारब्धस्यान्तदर्शनम् ॥५६

अविज्ञात वस्तुका ज्ञान और जानीहुई वस्तुका निश्चय कर्मोंका सब प्रकार आरंभ और आरम्भ किये कर्मकी पूर्ति करना ॥ ५६ ॥

अलब्धलिप्सा न्यायेन लब्धस्य परिवर्द्धनम् ।
परिवृद्धस्य विधिवत्पात्रे सम्प्रतिपादनम् ॥ ५७ ॥

नहीं मिलीहुई वस्तुकी न्यायपूर्वक लेनेकी इच्छा न करनी और लब्ध(प्राप्त) वस्तुका बढाना,और बढाईहुई वस्तुका विधिपूर्वक पात्रमें दान करना५७

अधर्म्मप्रतिषेधश्च न्यायमार्गानुवर्त्तनम् ।
उपकार्योपकारित्वमिति वृत्तं महीपते ॥ ५८ ॥

अधर्मका प्रतिषेध और न्यायमार्गके अनुसार बर्ताव उपकारीके सा उपकार करना यह राजाके कर्तव्य हैं ॥ ५८ ॥

एवत्सर्वममात्यादि राज्यं नयपुरःसरः ।
नयत्युन्नतिमुद्युक्तो व्यसनी क्षयमेव तु ॥ ५९ ॥

यह सब कर्तव्य और अमात्यादिके सहित नीतिपूर्वक उन्नतिसे यु राजा व्यसनोंको न सेवन करता हुआ उन्नतिको माप्त होताहै ॥ ५९ ।

तस्मिन्धर्मार्थयोर्ध्वंसे तथा चास्वस्थचेतसि ।
सर्वमेतदरोपेण मन्त्री स धातुमर्हति ॥ ६० ॥

अस्वामिसङ्गतञ्चापि भिन्नकूटं तथैव च ॥ ७१ ॥

जिसके भार ढोनेकी सामग्री, सुहृद्बल तथा धान्यादि नही है, शून्यठवाली, स्वामीकी संगतिसे रहित भिन्न अन्नधान्यवाली ॥ ७१ ॥

दुष्पार्ष्णिग्रहमन्धञ्च बलव्यसनमुच्यते ।
अत्र किञ्चिदसाध्यञ्च किञ्चित्साध्यन्तदुच्यते ॥७२॥

खोटे पार्ष्णिग्राह (दहिने बायें विभाग) वाली, वा पश्चात् कोपवाली, ार्यविचारमें अन्धता करनेवाली सेना युद्धके योग्य नही होसकती यह ानाके व्यसन है इस विषयमें जो साध्य और जो असाध्य है सो वर्णन रते है कि--किसप्रकारसे यह सेना युद्ध करेगी ॥ ७२ ॥

अपरुद्धं हि युध्येत निर्गत्यात्यन्तमूर्जितम् ।
परिक्षितं तु निर्मार्गं सर्वतः परिवेष्टितम् ॥ ७३ ॥

रुकीहुई सेना युद्ध करतीहै, वह अत्यन्त वेगवती होकर निकलती है सब ओरसे घिरी रहनेके कारण परिक्षिप्त सेनाके निकलनेका मार्ग नही७३

अमानितं हि युध्येत कृतमानार्थसंग्रहम् ।
न विमानितमत्यर्थं प्रदीप्तक्रोधपावकम् ॥ ७४ ॥

अमानित अर्थात् तिरस्कार कीहुई सेना, सत्कार करनेसे युद्ध करसकती है पर अत्यन्त तिरस्कार कीहुई जिसकी क्रोधाग्नि भभक रही है वह युद्धके योग्य नही है ॥ ७४ ॥

युध्येताभृतमत्यर्थं तदात्वे कृतवेतनः ।
न व्याधितमकर्मण्यं व्याधितं परिभूयते ॥ ७५ ॥

तनख्वाह न दीहुईकी वृत्ति दे देनेसे वह उसी समय शत्रुसे युद्धको तयार होती है और व्याधीवाली अकर्मण्य सेना युद्धके योग्य नही है कारण कि, व्याधि युक्त शरीरवाला तिरस्कारको प्राप्त होता है ॥ ७५ ॥

परिश्रान्तं हि युध्येत विश्रान्तं सुविधानतः ।

मुषितो दूरसस्थश्च कोपव्यसनमुच्यते ॥ ६६ ॥

नष्ट सर्व होगया हुआ परिक्षिप्त (सब ओरसे घिरा) मग्न छिपागया इकट्ठा न कियागया, चुरायागया तथा अपनेसे दूर सेना कोपक व्यसन हैं ॥ ६६ ॥

उपरुद्धं परिक्षिप्तं विमानितममानितम् ।
अभृतं व्याधितं श्रान्तं दूरायातं नवागतम् ॥ ६७ ॥

रोकीहुई, सब ओरसे घिरीहुई, सन्मान न पाईहुई तिरस्कृत वेतन न दीगई व्याधिपीडित थकित, दूरसे आईहुई नवीन आई अर्थात् भरती कीहुई ॥ ६७ ॥

परिक्षीणामरहितं प्रहतामभव तथा ।
आशानिर्वेदभूयिष्ठमनृतभासमेव च ॥ ६८ ॥

कृश नायकहीन, हतवेगवाली वा छिन्न आशावाली तथा असत्य प्राप्त हुई ॥ ६८ ॥

कलत्रगर्भं विक्षिप्तमन्तःशल्यं तथैव च ।
भिन्नगर्भं स्वपसृतमपि त्यक्तं तथैव च ॥ ६९ ॥

स्त्रीगनोंसे युक्त विक्षिप्त (अनिश्चितचित्त) वाली भीतर किसी प्रकार दुःखवाली जिसके भेद खुलगया है ऐसी भिन्न भिन्न रहनेवाली तथा दूर संघसे रहनेवाली ॥ ६९ ॥

कुप्यमौलातिनिर्भिन्नं विशिष्टश्चापि विद्विषा ।
शून्ययुक्तं स्वाविक्षिप्तं मित्रविक्षिप्तमेव च ॥ ७० ॥

क्रोधित अपने नायकसे विमन शत्रुसे मिली वा शत्रुका वश करनेवाली वा शत्रुसे युक्त जिसे कोई दोष लगा हो, विक्षिप्त वा विविध मित्रवाली ॥ ७० ॥

विच्छिन्नविविधासारं शून्यमूलं तथैव च ।

अन्तर्गतामित्रशल्यमन्तःशल्यं हि न क्षमम् ॥ ८१ ॥

ाक राजोंके अन्तरमें रहनेसे विक्षिप्त कहाती है, बहुतोंके आधिपत्य युद्ध करनेको समर्थ नही होती, और जिसके अन्तरमें अमित्र वा वह भीतरी शल्यवाली सेना युद्ध करनेमें समर्थ नही होती ॥८१॥

अन्योन्यमेव निर्भिन्नं भिन्नगर्भं न युध्यते ।

तथा चापसृतश्चैव तथा राज्यान्तरीकृतम् ॥ ८२ ॥

रस्पर निर्भिन्न अर्थात् भिन्नगर्भवाली युद्ध करनेमें समर्थ नही होती कार पलायन कीहुई तथा दूसरे राज्यके अन्तरवाली ॥ ८२ ॥

अवियुक्तं ह्यपक्रान्तं योद्धुन्तन्न क्षमं युधि ।

पितृपैतामहं मौलं तत्कुद्धं सान्त्वितं क्षमम् ॥ ८३ ॥

अवियुक्त तथा आक्रमण कीहुई भी सेना युद्ध करनेको समर्थ नही । पिता पितामह सम्बन्धसे आये, मूलसेना मन्त्रीकी सान्त्वना करनेसे षता होतीहै ॥ ८३ ॥

मिश्रं शत्रुभिरेकस्थं तदाक्रान्ततयाऽक्षमम् ।

दूष्ययुक्तं न युध्येत युध्येतोद्धृतकण्टकम् ॥ ८४ ॥

जो शत्रुसे मिली एकत्र स्थितहै वह भी आक्रमणमें असमर्थ है, दूष्य ॥ युद्ध नही करसकती, उसका कण्टक शोधन कराय युद्धकरावे ॥८४॥

विशिष्टं शत्रुसंक्रान्तं शिष्टा आहुर्मनीषिणः ।

प्रधानयोधसंयुक्तं दूष्ययुक्तं समुन्नयेत् ॥ ८५ ॥

शिष्ट बुद्धिमानोने शत्रुसंक्रमित सेनाको विशिष्ट कहाहै, दूष्ययुक्त से-को प्रधानयोधेके सहित शुद्ध कर उन्नतकरै ॥ ८५ ॥

स्वविक्षिप्तं सुविषयाक्षिप्तमाप्युदाहृतम् ।

प्रकृष्टदेशकालत्वान्मित्राक्षिप्तमयोगिकम् ॥ ८६ ॥

दूरायात हृतभाण न शस्त्रग्रहणक्षमम् ॥ ७६ ॥

एकाहुआ युद्ध करता है पर विश्राम किया हुआ विधिपूर्वक युद्ध करसकता है दूरसे आया हुआ भग्न प्राणवाला तो शस्त्र ग्रहणमें समर्थ ही नही है ॥ ७६ ॥

नवागत हि तद्देश्यैर्मिश्रं युध्येत तद्भयात् ।

हृतमुख्यमवीरं तु परिक्षीणं न युध्यते ॥ ७७ ॥

नई आईहुई सेनाको उस देशवासियोंके साथ मिलाकर युद्ध करे जिसका मुख्यनायक मारागया तथा वीरगण न रहनेसे क्षीणसैन्य युद्ध योग्य नहीं रहती ॥ ७७ ॥

युध्येतेह प्रतिहत प्रवीरैः सह सङ्गतम् ।

हताग्रजमनासक्त प्रमाथितपुर सरम् ॥ ७८ ॥

प्रतिहतसेना वीरोंके साथ मिलकर युद्धकरसकती है जिसका अग्रगण्य चलनेवाला मारागया जो अनासक्त है तथा पहले प्रमथित होचुकीहै ॥ ७८ ॥

आशानिर्वेदलब्धार्थं पूर्णाशन्नात्र युध्यते ।

नाभूमिष्ठप्रसारे तु निरुद्धेऽल्पतया भुव ॥ ७९ ॥

आसमर्थमें आशा टूटजानेसे आशापूर्ण हुए बिना युद्ध नहीं करसकती जिसका अधिक फैलाव नहीं वह थोडी होनेसेही निरुद्ध होजातीहै ॥ ७९ ॥

युध्येतावृतसम्प्राप्तमपूर्वायुधवाहनम् ।

कलत्रगर्भादुज्जीवकलत्र सङ्गरक्षमम् ॥ ८० ॥

यदि अपूर्व आयुध और वाहन हों तो घेरेमें पडी सेनाभी युद्ध करसकती है और स्त्रीगणोंसे युक्त सेनाको सबमेंसे स्त्रियें पृथक करें उनको रक्षित कराय फिर युद्ध करावे ॥ ८० ॥

अनेकराज्यान्तरितमविक्षिप्तमभ युध्यते ।

नरेन्द्राद्याः प्रकृतयः सप्त याः परिकीर्त्तिताः ।
पूर्वं पूर्वं गुरुतरं तासां व्यसनमुच्यते ॥ ९२ ॥

राजाको आदि लेकर जो सात प्रकृतियें कहीहैं उनके व्यसन पूर्व पूर्वमें धेक कष्टकर गिने जाते हैं ॥ ९२ ॥

इत्यादि सर्वं प्रकृतं यथा वद्बुध्येत राजा व्यसनं प्रयत्नात् ।
बुध्या च शक्त्या व्यसनस्य कुर्यादकालहीनं व्यपरोपणंहि ९३

इसप्रकारसे राजा विधिपूर्वक सबके व्यसनोको जाने, और अपनी बुद्धि या शक्तिसे व्यसनको अधूरेपनमेही नष्ट करदे, अकालमें हीनवस्तु सहमे नष्ट होसकतीहै ॥ ९३ ॥

प्रकृतिव्यसनानि भूतिकामः समुपेक्षेत नहि प्रमाददर्पात् ।
प्रकृतिव्यसनान्युपेक्षते यो न चिरात्तं रिपवःपराभवन्ति९४

विभूतिकी इच्छावाला प्रमाद वा दर्पसे प्रकृतिके व्यसनोकी उपेक्षा नकरे प्रकृतिके व्यसनोंकी उपेक्षा करनेवालेको शीघ्रही शत्रु तिरस्कार करतेहै९४

इदमिदमिति सम्यक् कर्मणा योजनीयं
नियतमिति विचिन्त्य प्रापयेदीहमानः ॥
सुनयपिहितरन्ध्रः प्राकृतो यस्य वर्गः
क्षितिपतिरुपभुङ्क्ते स त्रिवर्गं चिराय ॥ ९५ ॥

इति श्रीका०नी०उत्सारप्रशंसाप्रकृतिव्यसनानि त्र०स०१३.

यह ऐसा यह ऐसे इसप्रकारसे चेष्टावाला राजा निरन्तर प्रकृतियोंको कार्यमें लगावै, जिस राजाकी प्रकृतिका छिद्र नीतिमार्गसे ढका हुआहै, वह राजा चिरकालतक धर्म, अर्थ, कामको भोगताहै ॥ ९५ ॥

इति श्रीकामन्दकीये नीतिसारे भाषाटीकाया उत्सारप्रशंसा
प्रकृतिव्यसनानि त्रयोदश सर्ग ॥ १३ ॥

विषयमें पड़ीहुई विक्षिप्त और आपत्तिमें पड़ीहुई आक्षिप्त है ऐसा की गतिसे मित्रोंसे त्यागी और अयोगिक ॥ ८६ ॥

धान्यादेर्वीवधामासिरासारस्तु सुहृद्बलम् ।
विच्छिन्नवीवधासारं सैन्यं युद्धाय नेप्यते ॥ ८७

धान्यादिकी प्राप्ति वीवध और सुहृद्बलका नाम आसार है इन से रहित सेना भी युद्ध करनेमें समर्थ नहीं होती ॥ ८७ ॥

कृतशानपदारक्ष्य शून्यमूलं युधि क्षमम् ।
अस्वामिसहतञ्चैव स्वामिना परिना कृतम् ॥ ८८

जनपदकी जिससे रक्षा नहीं यह शून्यमूलवाली युद्ध करनेमें अक्षम स्वामिरहित सेना अस्वामि संहतवाली कहाती है ॥ ८८ ॥

न युध्येत भिन्नकूटं भिन्नकूटमनायकम् ।
पश्चात्कोपामितर्तं तु दुष्पार्ष्णिमाहमक्षमम् ॥ ८९

नायकरहितसेना भिन्नकूट कहाती है और युद्ध करनेको समर्थ नहीं पीछे कोपसे तापित हुई दुष्पार्ष्णिमाहवाली कहाती है यह भी युद्धमें नहीं ॥ ८९ ॥

आदेशिकं स्मृतं युद्धं मूढत्वान्न क्रियाक्षमम् ।
बल व्यसनमित्यादि तत्समीक्ष्य समुत्तवेद् ॥ ९०

पुरखमें युद्धके निमित्त आह्वान कीहुई मूढ होनेसे क्रियामें अक्षम यह सब सेनाके व्यसन हैं इनका दशभाककर बतावें करे ॥ ९० ॥

दैवोपपीडितं मित्रं मस्तं शत्रुबलेन च ।
कामक्रोधसमुत्थैश्च दोषैः सम्परिकीर्त्तितं ॥ ९१

दैवसे पीडित मित्रवाली शत्रुबलसे ग्रस्त सेनाको कामक्रोधस दोषोंसे युक्त दानसे व्यसनसंयुक्त कहते हैं ॥ ९१ ॥

स्मृतं व्यसनतत्त्वज्ञैः क्रोधजं व्यसनत्रयम् ॥ ६ ॥

वाणीका दण्ड, कठोरता, अर्थदूषण यह तीन व्यसन व्यसनके जाननेवालोंने क्रोधसे उत्पन्न हुए कहेहैं ॥ ६ ॥

कामजं मृगया द्यूतं स्त्रियः पानं तथैव च ।
व्यसनं व्यसनार्थज्ञैश्चतुर्विधमुदाहृतम् ॥ ७ ॥

मृगया जुवा स्त्री और पान यह चार व्यसन व्यसनके जाननेवालोंने कामज कहेहैं ॥ ७ ॥

वाक्पारुष्यपरं लोक उद्वेजनमनर्थकम् ।
न कुर्यात्प्रियया वाचा प्रकुर्याज्जगदात्मताम् ॥ ८ ॥

जो पुरुष वाणीकी कठोरता करता है, उससे लोक उद्वेजित होतेहैं वह अनर्थकारी है, इससे वह वाणी न बोले और प्यारी वाणीसे त्को अपने वशमें करे ॥ ८ ॥

अकस्मादेव यः कोपादभीक्ष्णं बहु भाषते ।
तस्मादुद्विजते लोकः सस्फुलिङ्गादिवानलात् ॥ ९ ॥

जो अकस्मात्‌ही क्रोधसे बहुत कुछ कहने लगता है, उससे लोग परीत होजाते है, जैसे चिनगारी उडानेवाली अग्निसे लोग उद्वेजित हते है ॥ ९ ॥

हृदये वागसिस्तीक्ष्णो मर्मच्छिद्धि पतन्मुहुः ।
तेन च्छिन्नो नरपतिः स दीप्तो याति वैरिताम् ॥ १० ॥

वाणीरूपी तलवार हृदयमें लगकर वारवार मर्मको छेदन करती है, उससे छिन्न हुआ तथा क्रोधित हुआ पुरुष सदा वैरके योग्य होता है अर्थात् राजासे सदा वैर करता है ॥ १० ॥

नोद्वेजयेज्जगद्वाचा रूक्षया प्रियवाग्भवेत् ।
प्रायेण प्रियकर्मा यो कृपणोऽपि हि सेव्यते ॥ ११ ॥

चतुर्दश सर्ग १४



अमात्याद्याः प्रकृतयो मित्रान्ता राज्यमुच्यते ।
अशेषराज्यव्यसनात्पार्थिवव्यसनं गुरु ॥ १ ॥

अमात्यको आदि लेकर मित्रपर्यन्त प्रकृतियें यह सब राज्य कहाता सब राज्यके व्यसनसे राजाका व्यसन भारी है ॥ १ ॥

राजा त्वव्यसनी राज्यव्यसनापोहनक्षमः ।
न राज्यव्यसनापोहसमर्थं राज्यमूर्जितम् ॥ २ ॥

जो राजा व्यसनग्रस्त न हो वही राज्यके व्यसन दूरकरनेमें समर्थ। अन्यथा यह पुष्ट राज्यके व्यसन दूरकरनेमें समर्थ नहीं है ॥ २ ॥

अशास्त्रचक्षुर्नृपतिरन्ध इत्यभिधीयते ।
वरमन्धो न चक्षुष्मान्मदादाक्षिप्तसत्पथः ॥ ३ ॥

जिस राजाके शास्त्ररूपी नेत्र नहीं है वह राजा अन्धा कहा जाता नेत्रोंवाला अन्धा अच्छा नहीं जिसने मदसे सन्मार्गको बिगाड दिया है ॥ ३ ॥

मन्त्रिभिर्मन्त्रकुशलैरन्धः सन्तार्यते नृपः ।
चक्षुष्मांश्च मदान्धः सन्नात्मानं हन्त्यशेषतः ॥ ४ ॥

मन्त्र जाननेवाले कुशल मन्त्रियोंसे अन्धा राजा तार दिया जाता और नेत्रवाला मदान्ध होनेसे विशेष प्रकारसे अपनी आत्माका नाश करता है ॥ ४ ॥

शास्त्रचक्षुर्नृपस्तस्मान्महामात्यमते स्थितः ।
धर्मार्थप्रतिघातीनि व्यसनानि परित्यजेत् ॥ ५ ॥

राजा शास्त्रदृष्टिके नेत्रवाला है वह महाअमात्योंके मार्गमें स्थित हो धर्म अर्थके प्रतिघात करनेवाले व्यसनोंको त्यागदे ॥ ५ ॥

वाग्दण्डयोश्च पारुष्यमर्थदूषणमेव च ।

स्मृतं व्यसनतत्त्वज्ञैः क्रोधजं व्यसनत्रयम् ॥ ६ ॥

वाणीका दण्ड, कठोरता, अर्थदूषण यह तीन व्यसन व्यसनके जाननेवालोंने क्रोधसे उत्पन्न हुए कहेहै ॥ ६ ॥

कामजं मृगया द्यूतं स्त्रियः पानं तथैव च ।
व्यसनं व्यसनार्थज्ञैश्चतुर्विधमुदाहृतम् ॥ ७ ॥

मृगया जुवा स्त्री और पान यह चार व्यसन व्यसनके जाननेवालोंने कामज कहेहै ॥ ७ ॥

वाक्पारुष्यपरं लोक उद्वेजनमनर्थकम् ।
न कुर्यात्प्रियया वाचा प्रकुर्याज्जगदात्मताम् ॥ ८ ॥

जो पुरुष वाणीकी कठोरता करता है, उससे लोक उद्वेजित होतेहै और वह अनर्थकारी है, इससे वह वाणी न बोले और प्यारी वाणीसे जगत्को अपने वशमें करै ॥ ८ ॥

अकस्मादेव यः कोपादभीक्ष्णं बहु भाषते ।
तस्मादुद्विजते लोकः सस्फुलिङ्गादिवानलात् ॥९॥

जो अकस्मात्ही क्रोधसे बहुत कुछ कहने लगता है, उससे लोग विपरीत होजाते है, जैसे चिनगारी उडानेवाली अग्निसे लोग उद्वेजित रहते है ॥ ९ ॥

हृदये वागसिस्तीक्ष्णो मर्मच्छिद्धि पतन्मुहुः ।
तेन च्छिन्नो नरपतिः स दीप्तो याति वैरिताम् ॥१०॥

वाणीरूपी तलवार हृदयमें लगकर वारवार मर्मको छेदन करती है, उससे छिन्न हुआ तथा क्रोधित हुआ पुरुष सदा वैरके योग्य होता है अर्थात् राजासे सदा वैर करता है ॥ १० ॥

नोद्वेजयेज्जगद्वाचा रूक्षया प्रियवाग्भवेत् ।
प्रायेण प्रियकर्मा यो कृपणोऽपि हि सेव्यते ॥ ११ ॥

ऐसी वाणीसे जगत्को उद्वेजित न करै सदा प्यारी वाणी बोले, ध
कृपणभी हो पर प्रियवाणीवाला सदा सेवित होता है ॥ ११ ॥

असिद्धसाधनं सद्भिः शासनं दण्डमुच्यते ।
तद्युक्तेऽप्यनये दण्ड्ये युक्तदण्डः प्रशस्यते ॥ १२ ॥

सत्पुरुषोंने दुष्टोंमेंसे दण्डशासनको असिद्ध शासन कहा है, प
अनीतिसे युक्त हो दण्ड दिया जाता है तो यह ठीक नहीं है पर यु
परही दण्ड दिया जाय तो बड़ाईके योग्य है ॥ १२ ॥

उद्वेजयति भूतानि दण्डपारुष्यवान्नृपः ।
भूतान्युद्वेजमानानि द्विषतां यान्ति संश्रयम् ॥ १३ ॥

दण्ड देनेवाला तथा कठोर वचन कहने वाला राजा प्राणियोंको विर
कर देता है, और वे विरक्त हुए प्राणी निश्चय शत्रुओंसे मिलजाते हैं ॥ १३ ॥

आश्रिताश्चैव लोकस्य विवृद्धिं यान्ति विद्विषः ।
विवृद्धाश्च विनाशाय तस्मान्नोद्वेजयेत्प्रजाः ॥ १४ ॥

और उस प्रजाके आश्रित होनेसे शत्रुगण वृद्धिको प्राप्त होजाते हैं
और शत्रुकी वृद्धि अपने नाशके लिये होती है इसकारण प्रजाको विर
न करै ॥ १४ ॥

लोकानुग्रहकर्त्तारं प्रवर्द्धन्ते महीभुजः ।
लोकवृद्ध्या नरेन्द्राणां वृद्धिस्तत्संक्षये क्षयः ॥ १५ ॥

लोकोंपर अनुग्रह करनेवाले राजा वृद्धिको प्राप्त होते हैं लोककी वृद्धिसे
राजाकी वृद्धि और लोकक्षयसे राजाका क्षय होताहै ॥ १५ ॥

महत्स्वप्यपराधेषु दण्डं प्राणान्तिकं त्यजेत् ।
ऋते राज्यापहारात्तु युक्तदण्डः प्रशस्यते ॥ १६ ॥

बड़े अपराधमें भी प्राणवियोगका दण्ड न दे केवल राज्य हरण कर
नेवालेहीको यह दण्ड है इसमें युक्त दण्डकीही प्रशंसा की है ॥ १६ ॥

दूष्यस्यादूषणार्थञ्च परित्यागो महीयसः।
अर्थस्य नीतितत्त्वज्ञैरर्थदूषणमुच्यते ॥ १७ ॥

दूष्य तथा दूषित अर्थका अवश्य त्याग करना चाहिये, नीतिके ज्ञाता-अर्थहानिकोही अर्थ दूषण कहाहै ॥ १७ ॥

तदकस्मात्समाविष्टः कोपेनातिबलीयसा।
नित्यमात्महिताकाङ्क्षी न कुर्य्यादर्थदूषणम् ॥ १८ ॥

इससे अकस्मात् प्राप्त हुए अत्यन्त बलिष्ठ क्रोधसे अपनेहितकी इच्छा-वाला अर्थदूषण न करै ॥ १८ ॥

यानक्षोभो यानवतो यानाभिहरणं तथा।
क्षुत्पिपासाश्रमायासशीतवातोष्णपीडनम् ॥ १९ ॥

सवारीमें जानेवालोंको यानका क्षोभ, तथा सवारीका हरण, भूख, प्यास, श्रम, परिश्रम, शीत, वात, उष्णताकी पीडा ॥ १९ ॥

अभियानस्य सम्पत्त्या यानव्यसनजं महत्।
दुःख प्रतप्तसिकताकुशकण्टकभूमयः ॥ २० ॥

यह अभिगमनकी सम्पत्तिसे यानके व्यसन कहे है, यह भी महान् व्यसनहै दुःखरूप तपी हुई बालू कुशकण्टकसयुक्त भूमियोंमें विचरण ॥ २० ॥

वृक्षसङ्कटजा दोषा लताकण्टकपाटनम्।
शैलपादलताजालस्थाणुवल्मीकपीडनम् ॥ २१ ॥

तथा वृक्षोंके सघट्टसे, उत्पन्न हुए दोष, लता और कांटोका पाटना, पर्वतोंके स्थान, लताओंके समूह, ठूठ और वल्मीकके स्थानोंका पीडन ॥ २१ ॥

प्रच्छन्नोपगतैः शैलसरिद्विपिनकुक्षिषु।
वधबन्धपरिक्लेशैः सामन्ताटविकादिभिः ॥ २२ ॥

सबओरसे वनमें विचरनेवालोंको वधबधनकी प्राप्ति पर्वत नदी वनोंके किनारोंमें छिपकर गमन करना ॥ २२ ॥

स्वसैन्येभ्य स्वकल्पैश्च परमित्रैश्च मारणम् ।
क्षुत्तृषाजगरमातङ्गसिंहव्याघ्रभयानि च ॥ २३ ॥

अपनी सेना और सामग्री सामर्थ्यसे तथा दूसरेसे भित्र होनेसे म रीच अजगर सर्प हाथी सिंह और व्याघ्रोंका भय ॥ २३ ॥

दवाग्निधूमसरोधो दिङ्मोहो भ्रमणानि च ।
इत्यादि पृथिवीन्द्राणा मृगयाव्यसनं स्मृतम् ॥ २४

दवाग्नि लगना धूमसंकट, दिशाका मोह होजाना तथा अतिभ्रम करना यह राजोंको मृगयाके व्यसन वर्णन कियेहैं ॥ २४ ॥

जितश्रमत्व व्यायाम आमभेदकफक्षयः ।
चरस्थिरेषु लक्ष्येषु बाणसिद्धिरनुत्तमा ॥ २५ ॥

जितश्रमी होना अर्थात् परिश्रमको कुछ न गिनना कसरती होना मदा और कफका क्षय होना, लक्ष्य निशानेमें चिरस्थिरता,और बाणकी सिद्धि होना ॥ २५ ॥

मृगयायां गुणानेतानाहुरन्ये न तत्क्षमम् ।
दोषा प्राणहरा प्रायस्तस्मात्तद्व्यसनं महत् ॥ २६

यह इतने मृगयाके गुण वर्णन कियेहैं पर दूसरे इसको नहीं मानते कहते हैं कि इससे दोष प्रायः प्राण हरनेवाले हैं,इसकारण यह बड़ा व्यसनहै

आमादयो हि जीर्यन्ते योग्यपर्येव दिवानिशम् ।
चरेषु यत्र लक्ष्येषु बाणसिद्धिश्च जायते ॥ २७ ॥

दिन रात यथायोग्य आहार विहार करनेसे आमादि नाश होते और दूसरी रणभूमि निशान लगानेसे बाणसिद्धि होजातीहै ॥ २७ ॥

अथ चेन्मृगयाक्रीडा वाञ्छेत नगरान्तिके ।
कारयेन्मृगयारण्यं क्रीडाहेतोर्मनोरमम् ॥ २८ ॥

और जो मृगया क्रीडाकी इच्छाही हो तो अपने नगरके समीपमें अपने
डा करनेके निमित्त मनोहर क्रीडावन वनवावे ॥ २८ ॥

परिक्षितं परिखया मृगाणामप्यगम्यया ।
आयामपरिणाहाभ्यामर्द्धयोजनसंमितम् ॥ २९ ॥

जिसके चारो ओर ऐसी परिखा हो जिसको मृग न लॉवसकें, वह
म्बा व चौडानमे दो कोशकी हो ॥ २९ ॥

गिरेरुपान्ते नद्या वा पर्याप्तजलशाद्वलम् ।
अकण्टकलतागुल्मं विषपादपवर्जितम् ॥ ३० ॥

पर्वत वा नदीके समीप जहा जलकी अच्छी प्रकार प्राप्ति होसके काटे-
ताओके गुल्म और विषेले वृक्ष वहा न हो ॥ ३० ॥

पादपैः पुष्पफलदैः विज्ञातैश्चित्तहारिभिः ।
स्निग्धशीतघनच्छायैर्विटपैरुपशोभितम् ॥ ३१ ॥

उसमे पुष्पफलवाले वृक्ष अपने जाने हुए चित्तहरण करनेवाले हों
स्निग्ध शीतल घनेछायावाले वृक्षोसे शोभित हो ॥ ३१ ॥

पांशुपूरितनिश्छिद्रं शुभ्रप्रदरकन्दरम् ।
दलितस्थाणुवल्मीकपाषाणं समभूतलम् ॥ ३२ ॥

रेतेसे सम्पन्न छिद्र रहित अच्छी दरीकन्दराओंसे सम्पन्न ठूट बॅबई पत्थ-
रोसे रहित समानभूमिवाला ॥ ३२ ॥

शोधितग्राहसलिलं सम्भूतजलदाशयम् ।
नानापुष्पसमाकीर्णं नानाविहगसङ्कुलम् ॥ ३३ ॥

जिसके जलकी गहराई और ग्राहादिका शोधकर लिया हो ऐसे बडे
जलाशयवाला, अनेक पुष्पोसे युक्त तथा अनेक पक्षियोंसे व्याप्त ॥ ३३ ॥

मृगसङ्घातसम्पूर्णं हस्तिनीकलभान्वितम् ।

भग्नदन्तनखव्याघ्र छिन्नशृङ्गविषाणि च ॥ ३४ ॥

मृगोंके समूहसे पूर्ण हथिनी और हाथीके बच्चोंसे भरा हुआ, १ और नख तोड़े हुए व्याघ्रोंवाला, तथा सींग तोड़े हुए मृगोंवाला ॥ १४

सुखसंसेव्यफलतया पुष्पवल्लीपिनद्धया ।

वनराज्या परिक्षिप्त परिखातटजातया ॥ ३५ ॥

सुखसे प्राप्त होने योग्य पुष्पलताओंके आश्रित, वनराजीके समूह छोड़े हुए जो परिखाके समीप लगाई हो उसमें स्थिति करे ॥ ३५ ॥

बहिर्दूरान्तरामोगानिर्वृक्षसममूतलम् ।

अगम्य रिपुसैन्यानां मनःप्रीतिविवर्धनम् ॥ ३६ ॥

उसके थोड़ी दूरतक वृक्षरहित समान भूमि हो जो शत्रुसेनाको अगम्य मनको प्रसन्न करनेवाला मृगया वन हो ॥ ३६ ॥

तद्वने चरचित्तज्ञै क्लेशायाससहैर्दृढे ।

रक्षित रक्षिभिः स्वामिभूभुजां भूरिभूतये ॥ ३७ ॥

उस वनमें विचरनेवाले, स्वामीके चित्तको जाननेवाले क्लेश परिश्रमके सहने वाले दृढ, आप्त रक्षाकरनेवाले राजाकी बड़ी ऐश्वर्यसिद्धिके लिये रक्षा करें ॥ ३७ ॥

तत्कर्मासो नरेन्द्रस्य जनो जितपरिश्रम ।

क्रीडनायास्य विविधा मृगजातीःप्रवेशयेत् ॥ ३८ ॥

परिश्रम जीतेहुए पुरुष राजाके मृगयाकार्यके निमित्त तथा क्रीडाके निमित्त इस वनमें अनेक जातिके मृगोंको प्रवेश करावे ॥ ३८ ॥

अन्यकार्याविरोधेन प्रातश्चक्रमणक्षम ।

क्रीडनायाविशेद्राजा तदाप्तैः सहितो मतैः ॥ ३९ ॥

जिसमें दूसरे कार्योंमें विघ्न न पड़े ऐसे प्रभातकालमें संक्रमणमें समर्थ राजा अपने अभिमत आप्तपुरुषोंके सहित उसमें प्रवेश करे ॥ ३९ ॥

यदा च प्रविशेद्राजा क्रीडनार्थं तदा वहिः ।
सन्नद्धं यत्नतस्तिष्ठेत्सैन्यं दूरान्तगोचरम् ॥ ४० ॥

तब राजा मृगक्रीडाके निमित्त उस वनमें प्रवेश करै तब राजाकी सेना देखती हुई खडी रहै ॥ ४० ॥

सद्भिर्ये मृगयायाने गुणाः साधु प्रकीर्त्तिताः ।
क्रीडाप्रीतो नरपतिस्तांस्तत्र समवाप्नुयात् ॥ ४१ ॥

सत्पुरुषोंने मृगयायानमे जितने गुण कीर्तन किये हैं, क्रीडामें प्रसन्न वाला राजा वह सब गुण इस क्रीडावनमें प्राप्त करसकता है ॥ ४१ ॥

विधिरेष समुद्दिष्टो मृगयाक्रीडने वरः ।
न गच्छेदन्यथा राजा मृगयायां मृगा यथा ॥ ४२ ॥

मृगयाक्रीडनमें यह विधि सबसे उत्तम देखी है इसके सिवाय राजा ोकी समान मृगयाके निमित्त न जाय ॥ ४२ ॥

महता रक्षणेनापि धनस्य द्राग्विमुक्तता ।
निःसत्यता निष्ठुरता क्रोधो वाक्शस्त्रखण्डनम् ॥ ४३ ॥

इसमें वडी कठिनतासे इकट्ठे किये हुए धनका एक साथ व्यय होता , और निःसत्यता निठुराई क्रोधकी वाणी शत्रुका खण्डन ॥ ४३ ॥

लोभो धर्मक्रियालोपः कर्मणामप्रवर्त्तनम् ।
सत्समागमविच्छित्तिरसद्भिः सह वर्त्तनम् ॥ ४४ ॥

लोभ, धर्मक्रियाका लोप, कर्मोंमें अप्रवृत्ति, सत्पुरुषोंके समागमका वियोग, असत्पुरुषोंके साथ वर्तना ॥ ४४ ॥

अर्थनाशक्रियावश्यं नित्यं वैरानुवन्धिता ।
सत्यप्यर्थे निराशत्वमसत्यपि च रागिता ॥ ४५ ॥

अर्थका नाश, क्रियाकी वश्यता, नित्य वैरका बाँधना, अर्थके होनेमें निराशता और न होनेवाले अर्थमें प्रेम ॥ ४५ ॥

प्रतिक्षणं क्रोधहर्षौ सन्तापश्च प्रतिक्षणम् ।
प्रतिक्षणञ्च सङ्क्लेशः साक्षिप्रश्नः प्रतिक्षणम् ॥ ४६ ॥

प्रतिक्षणमें क्रोध और हर्ष, प्रतिक्षणमें सन्ताप होना, क्षणक्षणमें क्लेश और क्षणक्षणमें साक्षी पूछना ॥ ४६ ॥

स्नानादिगात्रसंस्कारपरिभोगेष्वनादरः ।
अव्यायामोऽङ्गदौर्बल्यं शास्त्रार्थप्रत्यवेक्षणम् ॥ ४७ ॥

स्नानादि शरीरसंस्कार और उसके भोगमें अनादर, व्यायाम न करना अंगकी दुर्बलता शास्त्रके अर्थको देखना ॥ ४७ ॥

गूहनं मूत्रशकृतोः क्षुत्पिपासोपपीडनम् ।
इत्यादींस्तत्र निपुणा द्यूतदोषान्प्रचक्षते ॥ ४८ ॥

मूत्रपुरीषके वेगका रोकना भूख प्याससे पीडित रहना, इत्यादि सब द्यूतके दोष हैं इससे जुआ न खेले ॥ ४८ ॥

पाण्डवो धर्मराजस्तु लोकपाल इवापरः ।
द्यूतेन व्यसनता विद्वान्कलत्राण्यपि हारितः ॥ ४९ ॥

पाण्डुके पुत्र धर्मराज दूसरे लोकपालकेही समान थे पर उस महा बुद्धिमान्‌ने द्यूतरूपी असत्कार्यमें अपनी प्रिया द्रौपदी हारदी ॥ ४९ ॥

नलश्च राजा द्यूतेन हृते राज्यमहोदये ।
धर्मदारान्वने त्यक्त्वा परकर्माकरोत्प्रभुः ॥ ५० ॥

राजा नलकाभी जुआ खेलनेके कारण बड़ा राज्य हरण होगया जिससे अपनी धर्मपत्नी दमयन्तीको वनमें त्यागकर दूसरेकी सेवारूप कर्म किया ॥

तुल्यो भुवीन्द्रतुल्यस्य यस्य नास्ति धनुर्द्धरः ।
स रुक्मी रुक्मतुल्याभो द्यूतदोषादगात् क्षयम् ॥ ५१ ॥

जो रुक्मी इन्द्रकी समान बलवान् था जिसकी बराबर कोई धनुषधारी

था, वह सुवर्णकी कान्तिवाला रुक्मी जुए खेलनेकेही कारण बलराम-
हाथसे मारागया [जब जुएमे बलरामजीसे धाधली की और उनके
दावकोभी हारा कहा तथा आकाशवाणीका कहाभी न माना तब
से बलरामने उसे मारडाला] ॥ ५१ ॥

राजा कौशिकरूपाणां दन्तवक्रोऽपि मन्दधीः ।
तीव्रद्यूतकृताद्दोषाद्दन्तभङ्गमवाप्तवान् ॥ ५२ ॥

और कौशिकरूप देशोंका राजा मन्दबुद्धि दन्तवक्र उसी जुएकी सभामे
नेसे और बलरामजीके ऊपर हसनेसे जुएके कारणही अपने दांत
वा बैठा ॥ ५२ ॥

द्यूतादनर्थसंरम्भो द्यूतात्स्नेहक्षयो महान् ।
पक्षाणां सहितानाञ्च द्यूताद्भेदः प्रवर्त्तते ॥ ५३ ॥

द्यूतसेही अनर्थ होताहै द्यूतसेही स्नेहक्षय होताहै, और द्यूतसेंही अपने
क्षवालोंका, हितकारियोंका भेद होताहै ॥ ५३ ॥

इति केवलदोषं हि द्यूतं राजा परित्यजेत् ।
समाह्वयं हि मेधावी दर्पिणां विनिवारयेत् ॥ ५४ ॥

इससे सर्वथा दोषहीवाले द्यूतकर्मको राजा त्यागदे, इसमें कोई भी
ण नही है, बुद्धिमान् अभिमानी पुरुषोके समाह्वय [दाँवपर मनुष्यादि
ाणियोका लगाना] निवारण करै ॥ ५४ ॥

कालातिपातः कार्याणां धर्मार्थपरिपीडनम् ।
नित्याभ्यन्तरवर्त्तित्वात्साधु प्रकृतिकोपनम् ॥ ५५ ॥

कार्य करनेका समय बितादेना, धर्म अर्थमे बाधा करना, नित्य भीतर २
रहनेवाला प्रकृतिका कोप ॥ ५५ ॥

रहस्यभेदस्तत्पक्षादकार्येषु प्रवर्त्तनम् ।
ईर्ष्यामर्षस्तथा क्रोधोऽनुरोधः साहसं तथा ॥ ५६ ॥

गुणघातक मगट कर देना उसके पक्षसे अकार्यमें मवृत्त होना अमर्ष (असहन शीलता) क्रोध हठ साहस ॥ ५६ ॥

इत्यादि च स्त्रीव्यसनं पूर्वं यच्च प्रकीर्त्तितम् ।
तस्मात्स्त्रीव्यसनं राजा राज्यकामः परित्यजेत् ॥ ५७

यह सब मतिविलासवनके व्यसनहैं, जो पूर्वमें कहे हैं, इसवास्ते राज्य इच्छावाला राजा स्त्री व्यसनको त्यागदे ॥ ५७ ॥

स्त्रीमुखालोकनतया व्यग्राणामल्पचेतसाम् ।
ईहितानि हि गच्छन्ति यौवनेन सह क्षयम् ॥ ५८

जो अल्पचित्त पुरुष स्त्रीके मुखदखनेमेंही व्यग्र रहतेहैं, उनकी चेष्टायें उनकी युवा अवस्थाके सहित क्षय होजाती हैं ॥ ५८ ॥

गमनं विह्वलत्वञ्च सञ्ज्ञानाशो विवस्त्रता ।
असम्बन्धप्रलापित्वमकस्माद्व्यसनं मुहुः ॥ ५९

चलना अर्थात् घूमते रहना व्याकुलता संज्ञानाश, वस्त्ररहित होना वृथा बकबक करना प्रलाप अकस्मात् व्यसनमें पड़ना ॥ ५९ ॥

प्राणग्लानिः सुहृन्नाशः प्रज्ञाश्रुतिमतिभ्रमः ।
सद्भिर्वियोगोऽसद्भिश्च सङ्गोऽनर्थेन सङ्गमः ॥ ६०

अपने प्राणोंमें ग्लानि करना मित्रगणोंका नाश बुद्धि, शास्त्र मतिमें भ्रम होना सत्पुरुषोंसे वियुक्त रहना असत्पुरुषोंकी संगति और अनर्थोंका समागम ॥ ६० ॥

स्खलनं वेपथुस्तन्द्रा नितान्तस्त्रीनिषेवणम् ।
इत्यादिपानव्यसनमत्यन्तं सद्भिर्गर्हितम् ॥ ६१ ॥

पद पदपर स्खलित होना शरीरमें कंपा तन्द्रा अधिकतर स्त्री सेवन इत्यादि यह मद्यपानके व्यसनहैं जिनमें सत्पुरुषोंने बड़ी निन्दा की है ॥ ६१ ॥

श्रुतशीलबलोपेताः पानदोषेण भूयसा।
क्षयमक्षीणनामानो जग्मुरन्धकवृष्णयः ॥ ६२ ॥

ास्त्र और शीलतासम्पन्न, कभी क्षीण न होनेवाले अन्धक और वृष्णि ानके महादोषसेही परस्पर युद्धकर प्रभासक्षेत्रमें क्षय होगये *[देखो पर्व महाभारत वा श्रीमद्भागवत] ॥ ६२॥

योगीश्वरश्च भगवान्भार्गवो भृगुतुल्यधीः।
शुक्रः पानमदात्तीव्राद्बुभुजे शिष्यमौरसम् ॥ ६३ ॥

भृगुके तुल्य बुद्धिमान् योगीश्वर भार्गव ऐश्वर्यसम्पन्न शुक्राचार्य तीव्र-के मदसेही शिष्यका भोग लगागये, "यह इसप्रकारसेहै कि, जब बृह-ेका पुत्र कच शुक्रजीके पास मृतसजीविनी विद्या पढने गया तब ंको यह बात न रुची तब उन्होंने कईबार उसको मारडाला पर ाचार्यने उसको ज्ञानसे प्राप्तकर जिवादिया। पीछे दैत्योंने कचको कर उसकी मद्यचुवायक शुक्रजीकोहि पिलादी और जब कचका कही न लगा तब उन्होंने उसे अपने पेटमें जान वहीं जिवाय विद्या पढाई, वह शुक्रजीका उदर भेदकर निकला और शुक्रजीको जिवाय अपने ़गया" ॥ ६३ ॥

पानाक्षिप्तो हि पुरुषो यत्र तत्र प्रवर्त्तते।
यात्यसंव्यवहार्यत्वं यत्र तत्र प्रवर्त्तनात् ॥ ६४ ॥

मद्यपानसे क्षिप्तहुए पुरुष जहाँ तहाँ प्रवृत्त होते है, और जहाँ तहाँ प्रवृत्तिसे वह पुरुष व्यवहारके योग्य नही रहते है ॥ ६४ ॥

कामं स्त्रियं निषेवेत पानं वा साधुमात्रया।

* जब यदुवंशियोंको शाप हुआ तब वे सबकोई दुर्वासाके शापनिवारणके निमित्त प्रभास क्षेत्रमें गये यहां जाकर मद्यपान कर मतवाले होगये और परस्पर युद्ध करने लगे और रते २ एक दूसरेको सहार करने लगे यहांतक हुआ कि, परस्पर युद्ध करते २ सब ष्टहोगये एक दो उनमेंसे शेष रहेथे।

न पूवमृगये विद्वान्नात्यन्तव्यसने हि ते ॥ ६५ ॥

चाहे स्त्रीका सेवन करे, और थोडी मात्राका मद्यसेवन करे, परन्तु और मगया यह तो किसीप्रकार सेवन न करे, यह महाव्यसन है ॥६५

तदप्रनयविधिज्ञैः श्रेयसा विघ्नकारि
व्यसनमिदमुदार सप्त चैवोपदिष्टम् ।
जनयति हि निसर्गादेकमप्याशु नाश
किमु न भवति हन्ता यौगपद्योदयेन ॥ ६६ ॥

इसप्रकार अनीतिके प्रवृत्त करनेवाले तथा कल्याण वस्तुओंमें करनेवाले नीतिज्ञाता महात्माओंने यह सात व्यसन कहे हैं अधि यह एकही नाश कर देता है यदि यह सब एक साथ उदय हों नाश होनेमें सन्देहही क्या है ॥ ६६ ॥

घटयति परिभोगग्राहितामिन्द्रियाणां
श्रुतमपि विनिहन्ति श्रेष्ठतां श्रेष्ठताञ्च ।
चलयति च विभूतिं भूयसीमप्यनीचै
रपिविबुधमतीना सप्तकोऽप्यदुरन्त ॥ ६७ ॥

इन सातोंके परिभोगसे इन्द्रियोंकी भोगमें प्रवृत्ति विशेष होती है शास्त्र श्रेष्ठता अत्यन्त मर्कर्षता इन सबका नाश करते हैं । बडे बा विभूतिको भी कि जिनकी देवताकी समान बुद्धि है उनकोभी चलाय करदेते हैं यह सातों व्यसन बडे कठिन हैं ॥ ६७ ॥

आरिगणा नियतं व्यसने स्थित परिभवन्ति भवन्ति च दुश्छि
अपगतव्यसनाश्च बुधा रिपून्परिभवन्ति भवन्ति च दुश्छिद्राः

इति श्रीकामन्दकीये नीतिसारे सप्तव्यसनवर्गो
नाम चतुर्दश सर्गः ।

शत्रुलोग निरन्तर व्यसनमें प्राप्त हुए राजाका तिरस्कार करते हैं, और स्वयं तिरस्कार नहीं पाते और जो विद्वान् व्यसनोंसे रहित हैं वह अपने शत्रुओंका तिरस्कार करके आप तिरस्कारको प्राप्त नहीं होते ॥ ६८ ॥

इति श्रीकामन्दकीये नीतिसारे भाषाटीकायां सप्तव्यसनवर्गो नाम
चतुर्दश सर्गः ॥ १४ ॥

पञ्चदशः सर्गः १५.

नानाप्रकारैर्व्यसनैर्विमुक्तः शक्तित्रयेणाप्रतिमेन युक्तः ।
परं दुरन्तव्यसनोपपन्नं यायान्नरेन्द्रो विजयाभिकाङ्क्षी ॥ १ ॥

अनेक प्रकारके व्यसनोंसे रहित और महाप्रभावशालिनी तीन शक्तियोंसे युक्त जीतनेकी इच्छा करनेवाला राजा बडे व्यसनोंसे युक्त शत्रुपर चढाईकी इच्छा करै ॥ १ ॥

प्रायेण सन्तो व्यसने रिपूणां यातव्यमित्येव समादिशन्ति ।
तत्रैव पक्षो व्यसनेहिनित्यं क्षमस्तुसन्नभ्युदितोऽभियायात् ॥ २ ॥

प्रायः महात्मा पुरुष व्यसनको प्राप्तहुए पुरुषपरही चढाईको कहते है और उसका पक्षभी नित्य व्यसनमे ग्रस्त हो तो उसपर गमन करै ॥ २ ॥

यदा क्षमस्तु प्रसभं निहन्तुं पराक्रमादूर्जितमप्यमित्रम् ।
तदा हि यायादहितानि कुर्वन्परस्य वा कर्षणपीडनानि ॥ ३ ॥

अथवा जिस समय अपने पराक्रमसे बढेहुए भी शत्रुको बलप्रकाश कर जीतनेमें समर्थ हो उस समय उस शत्रुका अहित करताहुआ कर्षण और पीडन करताहुआ गमन करै ॥ ३ ॥

सम्पन्नसस्यं विषयं परस्य यायात्प्रमृग्यं विजयाय राजा ।
सस्योपघातेन परस्य वृत्तिच्छेदः स्वसैन्योपचयश्च साधु ॥ ४ ॥

राजा विजयकी इच्छा करनेके निमित्त शत्रुके धान्यसे भरे पुरे ओर गमन करै उस धान्यके उपघातसे शत्रुकी वृत्तिका छेदन और सेनाकी वृद्धि होती है ॥ ४ ॥

विशुद्धपृष्ठः पुरतो विचिन्वन्भयप्रदेशान्परकर्मवेदी ।
सुवीवधासारविशुद्धमार्गो विशेदरिक्ष्मां विपुलोऽप्रमत्तः ॥ ५

रक्षित पृष्ठभागवाला आगेका मार्गभी शोधन किये हुए दूसरे कर्मका जाननेवाले भयस्थानोंकी खोज करता हुआ अच्छे सेनाके तथा धन धान्य सम्पन्न होनेसे विशुद्ध मार्गवाली शत्रुकी भूमिमें होकर प्रवेश करै ॥ ५ ॥

समे प्रदेशे विषमे च भूमेर्निम्ने स्थले वा सुमुखेन यायात् ।
अनातुरः सन्नभयोऽहि विद्वान्सन्नद्धगुल्मो विहिताम्नपानः ॥६

समान विषम और नीचे भूमिके स्थानोंमें सन्मुख अव्याकुलता होकर गमन करै और विद्वान् भयकी प्रतिक्षण खोज लेता हुआ सब गुल्मकी झाडी आदियोंमें स्थित होकर अन्नपान करै ॥ ६ ॥

ग्रीष्मे प्रभूताम्बुवनेन यायात्निर्वासनार्थं करिणां यथा तु ।
क्लेदेऽम्भसो ग्रीष्मकृतात्प्रतापाद्भवन्ति कुष्ठानि मतङ्गजानाम् ॥

गरमीके दिनोंमें हाथियोंके सुख देनेके निमित्त प्रभूत जलवाले स्थान हाथियोंको निवास देताहुआ गमन करै यदि अच्छा जल न मिले गरमीके अधिक तापसे हाथियोंका कुष्ठ होजाते हैं ॥ ७ ॥

स्वस्थक्रियाणामपि कुञ्जराणामुष्मा शरीरेष्वभिजाज्वलीति ।
आयासयोगेन हि सम्प्रवृद्धः प्रसह्य हन्ति द्विरदान्प्रतापः ॥८

स्वस्थदशामें भी हाथियोंके शरीरमें गरमी सम्प्रस्थित रहती है परिश्रम करनेसे तो वह धूपकी गरमीके बढनेसे अच्छे हाथियोंको करती है ॥ ८ ॥

ाणि सत्त्वानि खलूष्मकाले विनाम्बुना यान्तिपरामवस्थाम् ।
न्धत्वमुष्णप्रवितप्तकायाःप्रयान्ति सद्यःकरिणोऽपिबन्तः ॥ ९ ॥

सबही जीव गरमीके दिनोंमे विनाजलके पराभव होतेहैं और हाथियों जल न मिले तो गरमीसे तप्तशरीर होनेसे अन्धे होजातेहै ॥ ९ ॥

ान्धिदानच्युतशीकरेषु दन्ताभिघातस्फुटितोपलेषु ।
तेषु नीलाभ्रसमप्रभेषु राज्यं निबद्धं पृथिवीपतीनाम् ॥ १० ॥

सुगन्धियुक्त मदके चुआने तथा जलको उछालने, दांतोंके ताडनसे ाण विदीर्ण करनेवाले, नीले मेघकी समान प्रभावाले हाथियोंमें राजाका ्य बँधाहुआ है ॥ १० ॥

कल्पितः संयुगदृष्टमार्गः स्वधिष्ठितो धीरतरेण पुंसा ।
ङ्गमानां परिकल्पितानामेको गजःषष्टिशतानि हन्ति ॥ ११ ॥

अच्छीप्रकारसे शिक्षित संग्रामस्थलको देखेहुए, धैर्यवान् पुरुषसे धेष्ठित एक हाथीही युद्धमें छ सौ शिक्षित घोडोंके मारनेमें समर्थ ाहै ॥ ११ ॥

ळे स्थले च द्रुमसङ्कटे च साधारणे वा विषमे समेऽपि ।
कारहर्म्याद्रिविदारणे च ध्रुवं जयो नागवतां बलानाम् ॥ १२ ॥

जल, स्थल, वृक्षोंके सकटमें, साधारण, विषम वा समस्थानमे तथा ेखा महल पर्वतके विदारणमें हाथियोंकी सेनासेही जय होतीहै ॥ १२ ॥

साद्यतो भूरिजलस्तु पन्था वनोदपानोपचितो विशङ्कः ।
ाभियायाज्जनयन्प्रतापं शनैः शनैरश्रमयन्बलानि ॥ १३ ॥

इसकारण जिस मार्गमें अधिक जलहो तथा घने अन्नपानादिसे युक्त र शका रहित हो उसी मार्गसे होकर अपने प्रताप प्रगट करता हुआ र सेनाको विश्राम देता हुआ शनैः शनैः गमन करै ॥ १३ ॥

अभ्युन्नतानामणुरप्युदारं पश्चात्प्रकोपं जनयेदरीणाम् ।
तस्मात्प्रमत्तः प्रसमीक्ष्य यायान्न नाशयेदिष्टमदृष्टहेतोः ॥ १४ ॥

उन्नत हुए शत्रुपर स्वयं लघु राजा होकर भी विशेष कोप प्रगट करे, और सावधान होकर उस शत्रुपर गमन करे उसकी चालढालको परखे और अदृष्ट पदार्थ [जो वस्तु अदृष्टके आधीनहै] के निमित्त इष्टपदार्थका नाश न करे ॥ १४ ॥

पश्चात्प्रकोपः पुरतः फलञ्च पश्चात्प्रकोपश्च तयोर्गरीयान् ।
रन्ध्रं हि तद्विप्रकृता महत्त्वं नयन्ति तस्मात्प्रसमीक्ष्य यायात् ॥ १५ ॥

पीछे कोप पहले फल इन दोनोंमें पीछे कोप करनाही श्रेष्ठ है, शत्रुके अपकारमें छिद्रही बड़ी वस्तुहै इसकारण उस छिद्रको देखकरही चले ॥ १५ ॥

पुरश्च पश्चाच्च यदा समर्थस्तदाभियायान्महते फलाय ।
पुनः प्रसर्पन्नविशुद्धपृष्ठः प्राप्नोति तीव्रं खलु पार्ष्णिभेदम् ॥ १६ ॥

जब आगे और पीछेसे समर्थ और रक्षित हो तब विजयरूपी महाफल की इच्छासे गमन करे और पृष्ठभागकी शुद्धि बिना गमन करनेसे उस पृष्ठभागके बड़े भारी भेदको प्राप्त होताहै ॥ १६ ॥

यास्यन्परो रक्ष्यमनेकवर्गमनेकमुख्यञ्च बलं निदध्यात् ।
अनेकमुख्यस्य हि चैकमत्यमनेकमत्यं द्विषतामभेद्यम् ॥ १७ ॥

जब गमन करे तो आगे भी अपने अनेक रक्षकवर्गोंको नियुक्त करे, और पीछे भी अनेक मुख्यसैनिकोंको स्थापनकरे अनेक मुख्योंकी एक मति नयके निमित्त होती है और उन एकमतिवालोंको अनेक मतिवाला शत्रु भेदित नहीं करसकता ॥ १७ ॥

अवश्ययातव्यतयोपपन्नः सम्यक्पश्चात्प्रकोपाद्धितया न शङ्का ।
सेनापतिश्चाप्यथवा कुमारं बलैकदेशेन पुरो निदध्यात् ॥ १८ ॥

अवश्य चढ़ाईके निमित्त उद्यत हुएको पीछे कोपसे अहितकी शंका

करती, अपने सेनापति वा कुमारको सेनाके एक देशमें आगे स्थापन
॥ १८ ॥

ाभ्यन्तराद्बाह्यकृताच्च दोषादाभ्यन्तरस्त्वेव तयोर्गरीयान् ।
ादाय गच्छेदबहिःप्रचारान्बाह्यांश्चकृत्वाविहितानुकल्पान् १९

आभ्यन्तर (भीतरी) और बाह्य यह दो प्रकारके दोष है इनमें भीतरी दोषही बडा है, इसको दूरकर और इन कोपवालोको सग लेकरही बाहर चढाईको चलै और बाह्यदोषको भी यथायोग्य विचारसे शोधै ॥ १९ ॥

पुरोहितामात्यकुमारकुल्याः सेनाभिगोप्तार इमे प्रधानाः ।
ऐषां हि मन्त्रोचितमप्रकोपमन्तःप्रकोपं समुपादिशन्ति ॥ २० ॥

पुरोहित, मन्त्री, कुमार, कुटुम्बी यह सेनाके रक्षक प्रधान जन है, म्मतिमें इनका कोप न होना चाहिये, इन्हींके क्रोधको अन्तःप्रकोप भीतरी) क्रोध कहते है ॥ २० ॥

राष्ट्रान्तपालाटविकाभिसीम्नां बाह्यप्रकोपोऽन्यतमः प्रकोपः ।
उत्पद्यमानो निपुणप्रचारैस्तम्मन्त्रिभिः सम्यगुपाददीत ॥ २१ ॥

राज्यकी सीमाके पालन करनेवाले तथा आरण्यरक्षक, सीमारक्षक, आदिका कोप बाह्यकोध कहाता है, इसको भी निपुण दूत और अच्छे न्त्रियोंसे दूर करावे ॥ २१ ॥

ामादिभिः संशमयेत्प्रकोपं परस्परावग्रहभेदनैश्च ।
ापे धीरः शमयेत्प्रकोपं यथा भजेरन्न परान्प्रतप्ताः ॥ २२ ॥

परस्पर क्लेश भेदसे जो कलेश हुआ हो उसको सामादि उपायोंसे शान्त और बुद्धिमान् उनके क्रोधको इसप्रकारसे शान्त करै जिससे दुखी त्रुओंसे न मिलजायँ ॥ २२ ॥

न्ययुग्व्यापच्चयक्षयो हि हिरण्यधान्यापचयव्ययस्तु ।
ादिमान्नेव विदग्धबुद्धिः क्षयव्ययायासकरीमुपेयात् ॥ २३ ॥

मनुष्य और पशुआदिका हास क्षय कहाता है सुवर्णादिका नाश कहाता है जिसमें दोनों प्रकारका क्षय और व्यय होता दीखे अर्थात् युद्धमें प्राणियोंका विशेष संहार और द्रव्यका विशेष व्यय हो राजाको कार्य न करना चाहिये राजाको उचित है कि उस कार्यको रोकदे॥

अवश्यनिष्पत्तिमहाफलाभ्यामदीर्घसूत्रां परिणामकल्याम् ।
कामं व्ययायासकरीमुपेयान्न त्वेव जातु क्षयदोषयुक्ताम्॥२४

परिणाम अर्थात् कार्यके अन्तिम फलके भलीभाँति देखनेवाले आ हीन पुरुषोंका इन वस्तुओंकी प्राप्ति महाफलके निमित्त होती है । व्यय तो होवाही है पर क्षयदोष युक्त इनका व्यय न करे, जिस म कुछभी काम न हो यह क्षय दोषयुक्त है ॥ २४ ॥

वस्तुष्वशक्येषु समुद्यमश्चेच्छक्येषु मोहादसमुद्यमश्च ।
शक्येषु कालेन समुद्यमश्च त्रिधैव कार्यव्यसनं वदन्ति ॥२५

कार्यके भी तीन प्रकारके व्यसन होते हैं, अशक्य वस्तुकी प्राप्तिका करना और प्राप्त होनेयोग्य वस्तुका मोहसे उद्यम न करना और वस्तुमें काल करके उद्यम करना ॥ २५ ॥

कामोऽक्षमा दक्षिणतानुकम्पा ह्रीः साध्वसक्रौर्यमनार्यता
दम्भोऽभिमानोऽप्यतिधार्मिकत्वं दैन्यं स्वभूपस्य विमाननञ्च

काम अक्षमा, चतुराई दया लज्जा, क्रोध, क्रूरता अनार्यता (पाखण्ड) अहङ्कार, अतिधार्मिकता दीनता अपने भूपका तिरस्कार

द्रोहो भयं शश्वदुपेक्षणञ्च शीतोष्णवर्षाप्रसहिष्णुता च ।
एतानि काले समुपाहितानि कुर्वन्त्यवश्यं खलु सिद्धिविघ्नम्

द्रोह भय निरन्तर उपेक्षा करना शीत गर्मी वर्षा इनका अस सहना यह समयपर प्राप्त हुई कार्यसिद्धिमें अवश्य विघ्न करते हैं ॥२

निजोऽथ मैत्रश्च समाश्रितश्च सम्बन्धज' कार्यसमुद्भवश्च ।

तो गृहीतो विविधोपचारैः पक्षं बुधाः सप्तविधं वदन्ति॥ २८॥

अपना, मित्रका, समान आश्रयवालेका, सम्बन्धवालेका, कार्यकी प्राप्तिसे आ, तथा व्यतीत हुआ और अनेक उपचारोंसे ग्रह किया हुआ ऐसा सात कारका पक्ष पंडितजन कहते है ॥ २८ ॥

दानुवृत्त्या गुणकीर्त्तनेन निन्दासहत्वेन च रन्ध्रगुप्त्या ।
दर्थशौर्योद्यमसत्कथाभिःपक्षोऽनुरागी स हि वेदितव्यः॥ २९॥

सदा अपने अनुकूल रहनेवाला, गुणकीर्तन करनेवाला, निन्दाको न हनेवाला, रहस्यको छिपानेवाला और अपने मित्रके निमित्त सत्कथायुक्त हनेवाला, शूरता और उद्यमवाला अनुरागी अर्थात् अपना हितैषी पक्षजा- ना चाहिये ॥ २९ ॥

कुलीनमार्यं श्रुतवद्विनीतं मानोन्नतं सभ्यमहार्यबुद्धिम् ।
कृतज्ञतोर्जामतिसत्त्वयुक्तं सद्वृत्तपक्षं खलु तञ्च विद्यात् ॥ ३०॥

कुलीन, आर्य्य, शास्त्रसम्पन्न, विनीत, मानसे उन्नत, सभ्य, स्थिरबुद्धि कृतज्ञ, अतिबलसम्पन्न पक्षको जाने कि, यह हमारा सदाचरणी पक्षहै॥ ३०॥

उद्योगमेधाधृतिसत्त्वसत्यत्यागानुरागस्थितिगौरवाणि ।
जितेन्द्रियत्वंप्रसहिष्णुताह्रीःप्रागल्भ्यमित्यात्मगुणान्वदन्ति ३१

उद्योग, विचार, शील, बुद्धि, धारणा, सत्व, सत्य, त्याग, अनुराग, स्थिति, गौरव, जितेन्द्रियता, सहनशीलता, लज्जा और प्रगल्भता यह अपने आत्माके गुण है ॥ ३१ ॥

मन्त्रस्य शक्तिं सुनयोपचारं सुकोषदण्डौ प्रभुशक्तिमाहुः ।
उत्साहशक्तिं बलवद्विचेष्टां त्रिशक्तियुक्तो भवतीह जेता॥ ३२॥

मन्त्रकी शक्ति, सुनीतिका उपचार, सम्यक्‌प्रकारके कोष दण्ड यह प्रभु- शक्ति कहाती है, इसमें चेष्टा करानेमें उत्साहशक्ति विशेष बल सम्पन्नहै, तीनों शक्तियुक्तही जयशीलता होतीहै ॥ ३२ ॥

शौर्य सुदाक्ष्यं व्यसनेष्वदैन्यमुत्साहसम्पत्त्वतिधीरता च ।
आत्यन्तिकी शास्त्रसमुद्भवा च सांसर्गिकी धी परिणामिनी च १

शीघ्रकारिता अच्छी चतुराई व्यसनोंमें दीनता न होनी, उत्स सम्पत्तिकी प्राप्तिमें अतिधीरता अत्यन्त शास्त्रानुसारिणी, संसर्गसे उ होनेवाली, तथा परिणामवाली बुद्धि ॥ १३ ॥

उत्साहसत्त्वाध्यवसायचेष्टा दार्ढ्यं च कर्मस्वतिपौरुषञ्च ।
अरोगता कर्मफलोपपत्तिर्दैवानुकूल्यं हि निराधिता च ॥ १४

उत्साह सत्य अध्यवसाय (कार्यका उद्योग) की चेष्टा करना क अतिपुरुषार्थ अरोगता कर्मफलकी प्राप्ति देवानुकूलता निराधिता, इस व्यथासे रहित होना ॥ १४ ॥

पक्षादिदानेन गृहीतकोप पक्षादिहीन रिपुमभ्युपेयात् ।
इति प्रसर्पन्नियत समुद्रप्रक्षालिता वां लभते धरित्रीम् ॥ १५

पक्षादिक दानसे कोप ग्रहण किये हुए पक्षादिकी सम्पत्तिसे हीन श पर चढ़ाई करे इसप्रकारसे नियमपूर्वक गमन करता हुआ समुद्रसे प्रक्षालित कीहुई पृथिवीको प्राप्त होताहै ॥ १५ ॥

कालो गजानां सजलाभ्रजालो यातुं तदन्यश्च तुरङ्गमानाम् ।
नात्युष्णवर्षोष्णतुषारयुक्त सपन्नसस्यस्त्विति कालसम्पत् १

जिस समय आकाशमें मेघसमूह सघन हों वह समय हाथियोंके च नेका है इससे दूसरा घोड़ोंके गमनका है जिस समय गरमी वर्षा तु विशेष न हो और खेती धान्यसम्पन्न हो यह कालकी सम्पत्ति कहीहै १६

रात्रावुलूको विनिहन्ति काकं काकोऽप्युलूकं रजनीव्यपाये ।
इति स्म कालं प्रसमीक्ष्य यायात् काले प्रयान्तीह समीहितानि १

रात्रिमें उल्लूक कौआको मारताहै और रात्रिके व्यतीत होनेमें क

्रुको मारतेहैं इसप्रकार समयको देखकर ही चढाई करै, समयमेही ोरथ सफल होतेहै ॥ ३७ ॥

॥ नक्रमाकर्षति कूलसंस्थं श्वानञ्च नक्रः सलिलाभ्युपेतम् ।
पायच्छमानो ध्रुवमभ्युपैति देशस्थितः कर्मबलोपभोगम् ३८॥

किनारेपर स्थित होनसे श्वान नाकेको खैचलेताहै और जलमे नाका ानको खैचलेताहै, जो देशकालमे स्थितहै वह अवश्यही कर्म और बलके पभोगको प्राप्त होताहै ॥ ३८ ॥

ामं तुरङ्गैर्विषमं च नागैस्तथा जलाढ्यं स महीधरं च ।
ागावृतं पक्षबलानुपेतैर्यथाबलञ्च प्रसमीक्ष्य मिश्रम् ॥३९॥

घोडोसे समस्थान, हाथियोसे विषमस्थान, तथा सजल और पर्वतोंके ्थान गाहेजाते है इसकारण हाथी और अपने पक्षबलसे मिश्रित होकर ्था बल देखभाल करके ॥ ३९ ॥

मरुप्रगाढं पतति स्म तोये ग्रीष्मेऽप्यनूपोदककक्षदुर्गम् ।
मिश्रञ्च संवीक्ष्ययथासुखञ्च गच्छेन्नरेन्द्रोविजयाय देशम्४०॥

मरुदेशमें जलगिरनेके समयमे, अनूपदेश, जलवालेदेश कक्षदेश, दुर्ग इनपर गरमियेंमें गमन करे और मिश्रदेश देख जिसमें अपनी अनुकूलताहो उसीप्रकार देशपर विजय करनेको गमन करै ॥ ४० ॥

न चातितोयं न च तोयहीनं युक्तं च सम्यग्यवसेन्धनेन ।
उपेत्य मार्गं वहुतक्षयुक्तः सुखप्रयाणैरिपुमभ्युपेयात् ॥ ४१ ॥

जिसमें न बहुत जलहो न कि अत्यन्त जलसे हीन हो धान्य और काष्ठसे सयुक्तमार्गमें बहुतसे बढई आदि वृक्षकाटनेवाले लोग साथ लिये (सफर-मेनाकी पलटन) सयुक्त शत्रुपर चढाई करै, जिस मार्गमें गमन करनेस सुख मिले उसी मार्गको गमन करै ॥ ४१ ॥

सुवीवधासारमुपेततोय विश्वासिभिः कान्तजलं विशुद्धम् ।
तन्मात्रमेव द्विपतामुपेयात्तस्माच्च कुर्यादपयानमार्तः ॥ ४२

भार ढोनेको बहँगी मुर्दई धन धान्य सहित गढके समीप जाकर उस गढको विश्वासी पुरुषोंके द्वारा शुद्धकरा देखे इसप्रकारसे शत्रु प्रति गमनकरे जिससे कि मार्गमें व्याकुलता प्राप्त नहो आर्त न होय॥४२

ये दूरयाना सहसा विशन्ति मूढा रिपूणामविचार्य भूमिम् ।
ते यान्ति तेषामचिरेण खड्गधारापरिष्वङ्गमयत्नसाध्या ॥४३

जो मूर्ख शत्रुकी भूमिको विना विचारे सहसा दूर यात्रामें प्रवेश करते हैं, वे शीघ्रही अयत्नसाध्य शत्रुकी खड्गधाराको प्राप्त होते हैं॥४३

मार्गे च दुर्गे विनिविष्टसैन्यो विधाय रक्षां विधिवद्विधिज्ञ ।
सन्नद्धपार्श्वस्थितवीरयोधः सेवेत साध्वीं सुखयोगनिद्राम्॥ ४४

मार्ग और दुर्गमें सेना रखकर, विधिपूर्वक विधिका जाननेवाला रक्षा करके पार्श्वभागको दृढ किये और योधाओंको साथ लिये श्रेष्ठ सुखरूप योगनिद्राको सेवन करे जैसे योगी स्वप्नमें जागता है इसप्रकार सुख देनेवाली निद्राका सेवन करै ॥ ४५ ॥

प्रभग्नरङ्कविरवेन्द्रहेषा घण्टास्वनासादितकर्णरन्ध्रं ।
तदन्तरा च प्रतियोधसूचा के जागर्तीत्यादरमाश्रियेत ॥ ४५

और घोडे हाथियोंके शब्द करने तथा घंटेके शब्द कानोंमें आने उस समय योधाओंके प्रति जो जागते हैं उनको आदर सन्मान करना चाहिये ॥ ४५ ॥

तत प्रबुद्ध शुचिरिष्टदेव श्रीमद्विभूषोज्ज्वलित प्रहृष्टः ।
सेव्येत मन्त्रिप्रवरैर्यथावत्पुरोहितामात्यसुहृज्जनैश्च ॥ ४६ ॥

उसी समय आपभी उठकर शौचादिसे निवृत्त हो स्नानकर इष्टदेव पूजन स्मरणकर भूषणोंको धारण कर श्रीसम्पन्न प्रसन्नमुख मंत्रि पुरोहित अमात्य सुहृदयोंसे सेवित हो ॥ ४६ ॥

व्यतां तैः सह संविचार्य यानं समास्थाय विचित्रयानः ।
ोद्गतैःशस्त्रिभिरिष्टतुल्यैर्बहिर्निरीयात्परिवारितःसन् ॥४७॥

उनके सहित कर्तव्यताका विचारकर विचित्र गतिवाले यानमें सवार कुलपरंपरासे प्राप्त अपने इष्ट शस्त्रधारियोंके साथ बाहर निकले॥४७॥

येन्नृपो हस्तिरथाश्वचर्या सामूहिकं योधगणं पृथक् च ।
ीक्षितांश्च द्विरदेन्द्रमुख्यांस्तुरङ्गमांश्चापि विधानयुक्तान्४८॥

और हाथी रथ घोडोंकी परिचर्य्या तथा योधाओंके समूहोंको पृथक् २ ।, तथा अपने विवक्षित मुख्य गजराज और विधानयुक्त घोडोंकाभी ेक्षण करै ॥ ४८ ॥

ोपगम्यः स्मितपूर्वभाषी प्रियं वदेद्वृत्त्यधिकं च दद्यात् ।
येण दानेन च सङ्गृहीतास्त्यजन्ति भर्त्तर्यपिजीवितानि॥४९॥

उस समय राजाकी ऐसी वृत्ति हो कि जानेवाले सुखसे राजाके समीप चसके मुसकाते हुए वचन बोले प्रियवचन बोले वृत्ति अधिकदे, प्रिय-नसे सगृहीत हुए सेवक राजाके निमित्त प्राणभी त्यागन कर देते है४९

थाश्वनौकुञ्जरयानयोग्यो नित्यक्रियः स्याद्धनुषि प्रगल्भः ।
मेधसां कर्मणि दुष्करेऽपि नित्यक्रिया कौशलमादधाति५०॥

रथ घोडे हाथीकी सवारीकी योग्यतामें नित्य तत्पर प्रगल्भतासे धनुष ्याका नित्य अभ्यास करै । कारण कि, नित्यका अभ्यास बुद्धिमानोंको ्करकर्म करनेमें भी कुशल करदेता है ॥ ५० ॥

ान्नद्धमुच्चैर्द्विपमास्थितः सन्सन्नद्धसैन्यानुगतोऽविकुर्वन् ।
ामन्तदूतेन हि साधुमन्त्रः प्रवीरयोधान्तरितेन यायात्॥५१॥

स्वय तयार होकर ऊँचे हाथीपर चढाहुआ, तयारसेनासे सेवितहुआ,वि-ार रहित, अच्छे मन्त्रसम्पन्न सामन्त और दूतोंको साथ लिये बडे वीर ोधाओंके साथ गमन करै ॥ ५१ ॥

आलोकयद्बुद्धिगुणोपपन्नैश्चरैश्च दान्तैश्च परापचारम् ।
एतैर्विमुक्तो भवति क्षितीन्द्रो जनैरनेनैश्च समानधर्म्मा ॥ ५२ ॥

बुद्धिके गुणोंसे युक्त चतुर दूतोंके द्वारा शत्रुओंका अपचार (छिद्र) देखे यदि राजा ऐसे दूतोंसे रहित हो तो अन्धे मनुष्यके समान होताहै ॥ ५२ ॥

विलोभयन्किञ्चिदपि प्रयच्छन्कुर्वीत मित्र द्विषतो न पानम् ।
राष्ट्रादभीक्ष्णं द्विषत प्रपण्य पण्यैर्हितमालिकयाऽऽददीत ॥ ५३ ॥

लोभ देकर, कुछ पहले देकर, शत्रुकी तरफवालोंको अपनावे पर उनके साथ खानपानादि न करे और शत्रुके राज्यसे बिकनेवाले ए मालिक [तोप बन्दूक] शस्त्रोंको खरीदले ॥ ५३ ॥

उपक्रमं वाञ्छितमाशु कुर्याद्दूतोपयानात् क्रियमाणसन्धि ।
स चेद्विसन्धिर्न हि तत्र भेद कृतो भवत्यात्मसमुच्छ्रयश्च ॥ ५४ ॥

शीघ्रही अपने वांछित उपक्रमको करे सन्धिकी इच्छा करताहुआ उसके समीप दूत भेजै और उसके द्वारा कार्यसाधन करावे यदि वह सन्धिको न मावे तो उसमें अपने कल्याण और उन्नतिके निमित्त भेद करे ॥ ५४ ॥

दौर्गाम्पथिप्नाटविकान्तपालान् सम्श्लेषयेद्दानवता च साम्ना ।
विरुद्धदेशेषु हि तन्निरोधे ते चाऽस्यमार्गोपदिशो भवन्ति ॥ ५५ ॥

दुर्गमें रहनेवाले मार्ग और जंगलकी रक्षावाले इनको दान और साम वचनोंसे अपनी ओर मिलाले यदि विरुद्धदेश और निरोध (रोक) है जाय तो यही लोग इस राजाको मार्ग दिखलानेवाले होतेहैं ॥ ५५ ॥

अकारणादेव हि कारणाद्वा य एव कश्चित्पुरुषोऽरिसेवी ।
निजश्चविश्लिष्टउपेतयश्च आयाति यस्तस्य गतिं प्रपश्येत् ॥ ५६ ॥

अकारण वा किसी कारणसे जो पुरुष शत्रुकी सेवा करनेवालाहै और वह सजातिये हुए यदि अपनी ओर आ मिले तो उसकी चालपर विशेष ध्यान देनाचाहिये ॥ ५६ ॥

रेप्सुना मन्त्रबलान्वितेन प्रागेव कार्यो निपुणं विचारः ।
णां बलान्मन्त्रबलं गरीयःशक्रोऽसुरान्मन्त्रबलाद्विजिग्ये ५७

शत्रुके जीतनेकी इच्छा करनेवाले मन्त्रबलसे सम्पन्न राजाको भलीभाँति ार करना चाहिये कि इन्द्रने मन्त्रके बलसेही शत्रुओंको जीता है॥५७॥

ोषया निर्मलया विलोकितं फलाय कर्मोद्यममास्थितःपरम् ।
कालहीनं नयवित्समाचरेत्फलं ह्यकाले नियतं व्युदस्यति ५८

निर्मलबुद्धिसे देखेहुए फलके लिये कर्मके उद्यममें स्थितहुआ नीतिमान् ालमें कार्य न करे कारण कि, अकालमे अवश्यही फल नष्ट होताहै॥५८॥

ावितानां श्रुतशौर्यशालिनां यथावदालोकितमार्गचारिणाम् ।
कामदैवी द्युतिरुन्नतात्मनां भुजङ्गदीर्घेषु भुजेषुलम्बते॥५९॥

प्रभावसयुक्त शास्त्रशीलसम्पन्न यथावत् दूतोंका मार्ग देखनेवाले कान्तिसे ितमान् आत्मावालोंकी सर्पके समान दीर्घ भुजाओंमें अत्यन्त दैवीकान्ति र होतीहै ॥ ५९ ॥

समुदितनरसम्पद्भूरिसम्पन्नसस्ये
विगतसलिलपङ्के काल उद्युक्तवृत्तिः ।
कुसुमितसहकारश्रीज्वलत्कानने वा
नरपतिरारिभूमिं साधु गच्छेज्जयाय ॥ ६० ॥

जिससमय मनुष्यगण सम्पत्तिसम्पन्नहों, खेतोंमें धान्यकी अधिकाई हो, ल और कीचरहित होनेसे मार्ग स्वच्छहों आम मौरारहे हों, वनोंमें शोभा रही हो, उससमय राजा उस शत्रुकी भूमिमें जयके निमित्त गमन करै ६०

ति नरपतिराहितादरः सन्परमभियोक्तुमनाः समुत्पतेत ।
ति हृतविषयोपसेवमानो नियतमरातिरुपैति गोचरं स्वम् ६१॥

इति श्रीका०नी०यात्राभियोगदर्शनं नाम पञ्चदशः सर्गः १५

इसप्रकार सनादि आदरका मामहुआ राजा शत्रुपर जीतनेकी इच्छा करे, और विषयोंसे रहितहुआ मन्त्रियोंसे सेवित अवश्यही इसके आधीन होकर सन्मुख हुआ देखताहै ॥ ६१ ॥

इति श्रीकामन्दकीय नीतिसारे भाषाटीकायां यात्राभियोगदर्शने नाम पञ्चदश सर्गः ॥ १५ ॥

षोडश सर्ग १६

यायाद्वैरिपुराभ्यासं भूभागे साधुसम्मते ।
स्कन्धावारनिवेशज्ञः स्कन्धावारं निवेशयेत् ॥ १ ॥

इसप्रकार साधुजनसम्मत शत्रुके पुरके समीपकी भूमिमें जाकरके छावनीके स्थान जाननेवाला वहां अपनी छावनी डाले ॥ १ ॥

चतुरस्रं चतुर्द्वारं नातिविस्तारसङ्कटम् ।
महाप्रतोलीप्राकारं महापरिखया वृतम् ॥ २ ॥

चौकोन और अच्छे चार द्वार जिसमें न बहुत विस्तारहो न बहुत कमति सांकडी गली चारोंओरकी चार दिवाली और महापरिखासे संयुक्त ॥ २ ॥

शृङ्गाटमर्द्धचन्द्रं वा मण्डलं दीर्घमेव च ।
भूमिप्रदेशसामर्थ्यादागारमुपकल्पयेत् ॥ ३ ॥

सिंघाडेकी समान वा अर्धचन्द्राकार वा मण्डलाकार दीर्घ भूमि के देशकी सामर्थ्यसे स्थानकी कल्पना करे ॥ ३ ॥

विविक्तैश्च विभक्तैश्च शृङ्गैरन्वितमायतं ।
गुप्तकक्षं पताकाभिर्महामार्गसमावृतम् ॥ ४ ॥

एकान्त तथा विभागको प्राप्त ऊंचे २ कंगूरोंसे युक्त गुप्त कक्षावाले पताकायुक्त महामार्गोंसे विराजमान ॥ ४ ॥

तस्य मध्ये मनोह्लादि महामौलवलावृतम् ।
अन्तःकोपगृहोपेतं कारयेद्राजमन्दिरम् ॥ ५ ॥

उसके मध्यमें मनको हरण करनेवाले पुस्तैनी महामन्त्रियोंसे सम्पन्न और भीतरी कोपग्रहसे सयुक्त राजमन्दिर बनवावे ॥ ५ ॥

मौलभुक्तं श्रेणिसुहृद्द्विपदाटविकं बलम् ।
राजहर्म्ये समादृत्य क्रमेण विनिवेशयेत् ॥ ६ ॥

पुस्तैनी नौकरोंसे व्याप्त सुहृदोकी अधिकाईसे शोभित १२ प्रकारके अटवियों (जगलके रहने वालो) को सग्रह करके राजमहलके समीप आदरके साथ इनको प्रवेश करावे ॥ ६ ॥

अन्ते चागणितान्क्रूराँल्लुब्धकान्दुष्टकर्मणः ।
पर्याप्तवेतनान्स्वाप्तान्मण्डलेन निवेशयेत् ॥ ७ ॥

और उसके समीपमें अगणित क्रूर लुब्धक दुष्कर्मी व्याधोंको परीक्षा करके कि यह सत्यवादी है, अच्छी वृत्ति देकर मण्डलमे स्थित करै॥७॥

हस्तिनो लब्धनामानस्तुरङ्गास्तु मनोजवाः ।
गृहोपकण्ठे नृपतेर्वसेयुः स्वाप्तरक्षिताः ॥ ८ ॥

अच्छेपुरुषोसे रक्षित हुए मान पाये हुए हाथी, और मनके समान वेगवान् घोडे राजाके मन्दिरके समीप निवास करै ॥ ८ ॥

यामवृत्त्या सुसन्नद्धं रात्रिन्दिवमुदायुधम् ।
अन्तर्वंशिकसैन्यञ्च तिष्ठेद्राजाऽभिगुप्तये ॥ ९ ॥

पहर पहरभरकी नौकरी लगाकर रात दिन अस्त्र शस्त्र ग्रहण किये हुए भीतरीसेनाके लोग सेनाके मध्यमें सेना और राजाकी रक्षा करै ॥९॥

युद्धयोग्यो महादन्ती सन्नद्धः साध्वधिष्ठितः ।
तिष्ठेन्नरपतेर्द्वारि वेगवांश्च तुरङ्गमः ॥ १० ॥

युद्धके योग्य महागजराज कसाहुआ स्थितरहे, और एक बगवान् घो मतिक्षण कसकसाया सदा रहे [यहभी धारी २ से आये गाँम] पंटके पीछे दूसरा घोडा इसीमकारसे आते जाते रहें ॥ १० ॥

सैन्यैकदेशः सन्नद्धः सेनापतिपुरःसरः ।
प्रयत्नवान्परिपतेन्मण्डलेन बहिर्निशि ॥ ११ ॥

और सेनापतिके सहित सेनाका कुछ भाग भी तयार रहे यह रा समय यत्नपूर्वक मण्डलसे बाहर आवे ॥ ११ ॥

परसैन्यप्रचारज्ञ समश्वाः शीघ्रपाविन ।
वाताश्विका विजानीयुर्दूरसीमान्तपाविनः ॥ १२ ॥

शत्रुकी सेनाका पता लगानेके निमित्त [illegible] बांधकर तयारहुए शी गामी पवनके द्वारा लक्ष्य जाननेवाले सेनाके लोग दूर सीमापर रहें राजाकी सेनाके पडावको जानकर उसपर आक्रमण करें ॥ १२ ॥

तोरणाबद्धमाल्येषु यन्त्रवत्सु पताकिषु ।
द्वारेषु परमां गुप्तिं कारयेदाप्तकारिभिः ॥ १३ ॥

तोरणमें माला बँधे यन्त्र और पताकासम्पन्न द्वारोंमें आप्त पुरुषोंसे रक्षाका प्रबन्ध करे ॥ १३ ॥

निर्गच्छेच्च विशेच्चापि सर्व एवोपलक्षित ।
तिष्ठेयु परवृताश्च राजशासनगोचरा ॥ १४ ॥

सबसे देखाहुआ उस द्वारसे निकले और उसमें प्रवेश करे, और रा शासनके माननेवाले उस स्थानपर (भेद) दूत स्थित रहें ॥ १४ ॥

वृथाकोलाहलाद्यस्याद्भूतात्पानाच्च वारित ।
सज्जोपकरणस्तिष्ठेत्सर्वकार्योन्मुखो जन ॥ १५ ॥

वृथा कोलाहल न होनेदे द्यूत और पानका सर्वथा निषेध करे अ सब कार्यके करनेमें तत्पर पुरुष सब द्रुव्यों स्थित रहें ॥ १५ ॥

वहिःखातात्स्वसैन्यानां मुक्त्वा सञ्चारमायतम् ।
परसैन्यविनाशार्थं सर्वां भूमिं विनाशयेत् ॥ १६ ॥

खाईसे बाहर अपनी सेनाके सञ्चारका वडा मार्ग छोडकर शत्रुसेनाके श करनेके निमित्त शेष वहांकी सब भूमिको नष्ट भ्रष्ट करदे, अर्थात् ची नीची खाई खन्दक और कांटोंसे सम्पन्न करदे ॥ १६ ॥

क्वचित्कण्टकशाखाभिः क्वचित्कीलैरयोमुखैः ।
भूषयेत्परितो भूमिं प्रच्छदप्रवरैरपि ॥ १७ ॥

कहीं उसमें कांटोंके वृक्ष लगादे, कहीं वहां लोहेके गोखरू बिछवादे, ार उसको चारोंओरसे किसी वस्तुसे ढककर भूषित रक्खे जिससे इस-दको कोई नजाने ॥ १७ ॥

निर्वृक्षक्षुपपाषाणस्थाणुवल्मीकनिर्द्रवैः ।
कारयेत्कारणैश्चित्रैः सैन्यव्यायाममन्वहम् ॥ १८ ॥

वृक्ष, छोटी २ झाडियें वेलबूटे पाषाण (पत्थर) ठूठ तलैया बँबई ादिसे रहित समान चित्रभूमि प्रतिदिन सेनाकी कवायद करनेके लिये ूषित करै ॥ १८ ॥

यस्मिन्देशे यथाकामं सैन्यव्यायामभूमयः ।
परस्य विपरीताश्च स्मृतो देशः स उत्तमः ॥ १९ ॥

जिस देशमे यथायोग्य सेनाके कवायदकी भूमियें होती हैं, और शत्रुकी हां यह भूमि न हो वही देश उत्तमहै ॥ १९ ॥

आत्मनश्च परेषां च तुल्या व्यायामभूमयः ।
सुमध्यमः स उद्दिष्टो देशः शास्त्रार्थचिन्तकैः ॥ २० ॥

जहां अपनी सेनाकी और शत्रुसेनाकी भी कवायदकी भूमियें होती हैं वह शास्त्रके ज्ञाताओंने मध्यमदेश कहाहै ॥ २० ॥

अरातिसैन्यव्यायामसुपर्याप्तमहीतलः ।

आत्मनो विपरीतश्च य स देशोऽधम स्मृत ॥२१
जहां शत्रुकी सेनाकी बढावदकी भूमि है और अपनी नहीं है वह अधम है ॥ २१ ॥

नित्यमुत्तममाकाङ्क्षेत्तदभावे तु मध्यमम् ।
अधम बन्धनागार नोपासेवेत सिद्धये ॥ २२ ॥
नित्य उत्तम देशकी इच्छा करे यदि ऐसा न हो तो मध्यमदेशकी इ करै अधम देश बन्धनागारके समान है उसे सिद्धिके लिये सेवन न करे २

आक्रान्त इव केनापि रोगार्नीकिरनुद्रव ।
अकस्मादुद्भवद्वेपो राजनीहारसवृत ॥ २३ ॥
अब भयादि लक्षण कहते हैं जैसे किसीने आक्रमण कियाहो ऐसा ग पडे अकस्मात् सेना रोगी होजाय अकस्मातही जहां द्वेष भडक उ राजा जैसे कुहरसे व्याप्त होजाय ॥ २३ ॥

विधूतपरुषैर्वातैरकस्माच्च पतत्रजा ।
परस्परमथक्रोशो न तथा तूर्यनिस्वन ॥ २४ ॥
कठिनपवन चलनेलगे अकस्मात् धूर गिरनेलगे परस्पर शोर होजा तुरही आदिका उत्तम शब्द नहो ॥ २४ ॥

उत्मेक्षितभयत्रासो निर्घातोल्काविभूषित ।
उद्धूमः प्रज्वलच्छस्रो विदक्षिणशिखारुव २५ ॥
भय और त्रासका दिखाना होतारहे वज्रकेसा शब्द और उल्का होताहो सधूम शस्त्र जलताहुआ दीखे वा दक्षिण ओर धूम्रतायुक्त गीदडी स्वन करती हों ॥ २५ ॥

मण्डले काकगृध्राणामाकीर्णो रुक्षवासिभि ।
मुहुरत्युग्रतादीप्त संसिक्तो रक्तवृष्टिभि ॥ २६ ॥

काक और गृद्धोंके मण्डल बहुत दीखे, ठूठोपर बैठे, कभी कभी जलतीसी दीखने लगे, लालरंगकी बूँदोंकी वर्षा हो ॥ २६ ॥

परीतराजनक्षत्रः क्रूरौत्पातिकैर्ग्रहैः ।
सूर्यदृष्टकबन्धादिरकस्मान्मूढवाहनः ॥ २७ ॥

क्रूर और उत्पाती नक्षत्रोंसे राजाका नक्षत्र युक्तहो, सूर्यमे कबन्ध दीखे, अकस्मात् अपनी सवारियोको मोह हो जाय ॥ २७ ॥

अकस्मान्मत्तमातङ्गप्रशुष्यद्दानशीकरः ।
इत्यादिविकृतोपेतः स्कन्धावारो न शस्यते ॥ २८ ॥

अकस्मात् मतवाले हाथियोका मद सूखजाय, इत्यादि विपरीत बातें, जहा हों वह छावनी अच्छी नही होती ॥ २८ ॥

प्रहृष्टनरनारीकः प्रशस्तस्वनदुन्दुभिः ।
गम्भीरहेषितहयः शस्त्रबृंहितकुञ्जरः ॥ २९ ॥

जहाके नरनारी प्रसन्नहैं, जहांके दुन्दुभी नगाडोंका शब्द प्रशस्तहै, घोडोंका हीसना जहा गम्भीर होताहै, हाथी अपनी चिंघाड भरते है, शस्त्र निर्मल रहतेहै ॥ २९ ॥

पुण्याहब्रह्मघोषाढ्यो नृत्यगीतसमस्वनः ।
निर्भीतिको महोत्साह आकाङ्क्षितजयोदयः॥ ३० ॥

ब्राह्मणोके पुण्याहवाचन वेद घोषसे बढाहुआ शब्द नृत्यगीतके समान होताहै, निर्भयता महाउत्साह जयकी लालसा होतीहै ॥ ३० ॥

नीरजस्कोऽतिवृष्टश्च प्रादक्षिण्यस्थितग्रहः ।
दिव्यान्तरिक्षैरुत्पातैः पार्थिवैश्चाप्यदूषितः ॥ ३१ ॥

धूरिरहित वर्षासम्पन्न, ग्रहोंकी अनुकूलता, दिव्यअन्तरिक्षके उत्पात और राजोके उत्पातोंसे अदूषित ॥ ३१ ॥

नीचै प्रवृत्तानुलोममारुतस्तुतमङ्गल ।
इष्टपुष्पफल साधु सुगन्धिज्वलितामल ॥ ३२ ॥

सहज सहज चलतीहुई पवन मंगलकी सूचना देतीहै, सेना सदा सुगन्धिसे व्याप्त निर्मल ॥ १२ ॥

अमदमातङ्गमातङ्ग आसाराभ्युदयान्वित ।
इत्यादिलक्षणोपेत स्कन्धावारः प्रशस्यते ॥ ३३ ॥

बिनाही मदके हाथी मतवाले विविधरों सेना अभ्युदयोन्मुखीहो ग स्वस्थपोंवाली छावनी विजय देनेवाली और श्रेष्ठ कहीहै ॥ १३ ॥

शस्ते तस्मिन्द्विषो भङ्गो ज्ञेयाऽशस्ते विपर्यय ।
निमित्तान्येव शंसन्ति शुभाशुभफलोदयम् ॥ ३४ ॥

प्रशंसित छावनीसे शत्रुका भंग होता है अप्रशंसित विरुद्धसे अपनी हार होती है इसप्रकार शुभ फलके देनेवाले यह निमित्त देखे जाते हैं १४

तस्मादेतानि शास्त्रज्ञो राजा समुपलक्षयेत् ।
प्रशस्तेन निमित्तेन विशुद्धेनान्तरात्मना ॥ ३५ ॥

इसकारण शास्त्रका जाननेवाला राजा इन निमित्तोंको भलीभाँति जाने मन अच्छे शकुन हो अन्तरात्मा प्रसन्नहो ॥ १५ ॥

व्यवसायारभ्यमाण हि सिद्धिं याति समीहितम् ।
सहायसम्पद्विपुलान सत्त्व दैवानुकूलता ॥ ३६ ॥

तथा जिसका आरम्भ स्वच्छ है उसकी मनकामना सिद्ध होती है सहायसम्पत्ति विशाल दैवकी अनुकूलता ॥ ११ ॥

उद्योगो व्यवसायश्च यस्यैते तस्य सिद्धय ।
तन्मूलत्वात्प्रजानां तु राजा स्कन्ध इति स्मृत ॥ ३७॥

उद्योग तथा अध्यवसाय विचार जिसमें है उसको सिद्धि होती है इन

ों और प्रजाओंकी भूल होनेसे राजाको स्कन्ध कहते है ॥ ३७ ॥

आवारोऽमात्यदण्डादिर्वृत्तिरावार उच्यते ।
भूतानां भूतिनिष्पत्तेरावारेण महीयसा ॥ ३८ ॥

और अमात्य (मन्त्री) दण्डादिकी वृत्तिका नाम आवार है, इस बडे वारसे प्राणियोंको ऐश्वर्यकी प्राप्ति होतीहै ॥ ३८ ॥

आवृतस्तु यतः स्कन्धः स्कन्धावारस्ततः स्मृतः ।
समवस्कन्दवासाम्बुवीवधासारनिग्रहाः ।
एते प्रयत्नतो रक्ष्याः स्कन्धावारस्य मृत्यवः॥ ३९॥

जिसकारण कि, स्कन्ध इनसे आवृत होता है, इससे वह स्कधावार हाता है, अपनी छावनी निवास जल सेना भार ढोनेकी सामग्री धान्यादि र सीमा यह स्कन्धावार छावनीकी वस्तुएँ विशेष यत्नसे रक्षा करनी ाहिये अन्यथा छावनीका अनिष्ट उपस्थित होताहै ॥ ३९ ॥

इति प्रयत्नेन निवेशयेद्दलं शुभाशुभं वास्य तदोपलक्षयेत् ।
परस्य चेतान्निपुणं विलोकयेत्समारभेताशुभहीनदर्शने ॥४०॥

इति श्रीकामन्दकीये नीतिसारे स्कन्धावारसन्निवेशो
निमित्तज्ञानञ्च षोडशः सर्गः॥ १६ ॥

इसप्रकार प्रयत्नसे निवासका शुभाशुभ देखकर वहां अपनी सेना स्थापित करै, और शत्रुके विपरीत अशुभ निमित्तोंका विशेष विचार करै, तब शत्रुके निमित्त (शकुन) अशुभ और हीनहों तब युद्धारम्भ करै ४०

इति श्रीकामन्दकीये नीतिसारे भाषाटीकायां स्कन्धावारसन्निवेशो
निमित्तज्ञानञ्च षोडश. सर्ग ॥ १६ ॥

सप्तदश सर्ग १७



महाभिज्ञानसम्पन्न सत्त्वदैवोपबृंहित ।
उद्योगाभ्यवसायाभ्यामुपायान्निक्षिपेत्परे ॥ १ ॥

विशेष ज्ञानसे सम्पन्न सत्वगुण और दैवकी अनुकूलता लिये हुए उद्योग और सत् असत्का विचार कर शत्रुपर उपायप्रयोग करे ॥ १ ॥

चतुरङ्गबलं मुक्त्वा कोपो मन्त्रश्च युध्यते ।
तत्साधुमन्त्रो मन्त्रेण कोपेण च जयेदरीन् ॥ २ ॥

चतुरंगिणी सेनाको छोड़कर जहां कोप और मन्त्रसेही युद्ध होवै वही श्रेष्ठ मन्त्र है जिसमें कोप और मन्त्रसेही शत्रु जीता जाता है ॥ २ ॥

साम दानञ्च दण्डश्च भेदश्चेति चतुष्टयम् ।
मायोपेक्षेन्द्रजालं च सप्तोपाया प्रकीर्त्तिता ॥ ३ ॥

साम, दाम दण्ड और चौथा भेद, माया, उपेक्षा इन्द्रजाल यह सात उपाय नयके कहे हैं ॥ ३ ॥

परस्परोपकाराणां कीर्त्तनं गुणकर्मसु ।
सम्बन्धस्य समाख्यानमायत्याः सम्प्रकाशनम् ॥ ४ ॥

गुण और कर्मोंमें परस्पर उपकारोंका कीर्तन सम्बन्धका आख्यान आगामी समयमें कार्य प्रकाश करना ॥ ४ ॥

वाचा पेशलया साधु तवाहमिति चार्पणम् ।
इति सामप्रयोगज्ञैः साम पञ्चविधं स्मृतम् ॥ ५ ॥

मनोहर मीठी वाणीसे मैं तुम्हाराही इसप्रकार अपनेको अर्पण कर देना इसप्रकार सामके प्रयोग जाननेवालोंने पांच प्रकारका साम कहा है ॥५॥

यः सम्प्राप्तधनोत्सर्ग उत्तमाधममध्यमः ।
प्रतिदानं तथा तस्य गृहीतस्यानुमोदनम् ॥ ६ ॥

जिसको दान देनाहै, उसीसे उत्तम, मध्यम जो धन प्राप्त हुआहै, उसको ज्योंका त्यों लौटा देना, जो अपने शत्रुने लियाहै उसका अनुमोदन करना ६

द्रव्यादानमपूर्वं च स्वयं ग्राहप्रवर्त्तनम् ।
देयस्य प्रतिमोक्षश्च दानं पञ्चविधं स्मृतम् ॥ ७ ॥

कि आपने अच्छाकिया अपूर्वद्रव्य जिसका सम्बन्ध नहीं ऐसे द्रव्यका ग्रहण कराना अपने राज्यसे वह कुछ ग्रहण करले इस हेतुमें उसको प्रवृत्त करना और जो कुछ कर ग्रहण किया जाता है उसमेंसे कुछ छोडदेना इसप्रकार यह पाँच प्रकारका दान कहाहै ॥ ७ ॥

स्नेहरागापनयनं संहर्षोत्पादनं तथा ।
सन्तर्जनं च भेदज्ञैर्भेदस्तु त्रिविधः स्मृतः ॥ ८ ॥

स्नेह रागका दूर करदेना, हर्ष उत्पन्न कराना, तथा झुडकना यह तीन प्रकारका भेद भेदके जाननेवालोंने कहाहै ॥ ८ ॥

वधोऽर्थग्रहणं चैव परिक्लेशस्तथैव च ।
इति दण्डविधानज्ञैर्दण्डोऽपि त्रिविधः स्मृतः ॥ ९ ॥

वध करदेना, धन हरण करलेना, विशेष कायाकष्ट देना यह दण्डके ज्ञाताओंने तीनप्रकारका दण्ड वर्णन कियाहै ॥ ९ ॥

प्रकाशश्चाप्रकाशश्च पूर्वो द्विविध इष्यते ।
प्रकाशदण्डान्कुर्वीत लोकद्विष्टांस्तथा रिपून् ॥ १० ॥

वह दण्ड भी प्रकाश और गुप्त भेदसे दो प्रकारका है प्रजाद्वेषी तथा शत्रुओंपर प्रगट दण्ड करना चाहिये ॥ १० ॥

यैरुद्विजेतेह लोको ये चैव नृपवल्लभाः ।

बाधन्ते व्यधिकं ये च तेषूपांशु प्रवर्त्तते ॥ ११ ॥

जिससे प्रजाके वर्ग उद्वेजित होतेहों जो राजाका वल्लभ हो और ज
जो प्रजाको विशेष पीड़ा देते हों उनको गुप्त दण्ड करना चाहिये ॥ ११

विषेणोपनिषद्योगे शस्त्रेणोद्वर्त्तनेन वा ।
तथोपांशु नयेद्दण्ड यथान्यो न विभावयेत् ॥ १२

विष वा उपनिषद्‌के योगसे शस्त्र प्रयोग वा कोई वस्तुके उबरनसे पे
पहुँचाकर जिससे कोई न जाने ऐसा उन समीपियोंको दण्ड दे ॥ १२

ब्राह्मणे जातिमात्रेऽपि धार्म्मिके चान्त्यजेऽपि हि ।
धर्म्मोपिनीपया विद्वान् न वधं दण्डमादिशेत् ॥ १३

जातिमात्रकेही ब्राह्मण धर्मात्मा अन्त्यजपर धर्मकी उन्नति करनेवा
कभी मृत्युदण्डविधान न करै ॥ १३ ॥

उपेक्षया वा हन्तव्या येषूपांशु प्रशस्यते ।
उपेक्षां चापि निपुणं प्रत्यक्षं परिवर्जयेत् ॥ १४ ॥

एकान्त अर्थात् उनही गुप्त दण्डकी व्यवस्याकी बड़ाई कीगई है वे
उस उपेक्षाको भी चतुर पुरुष प्रत्यक्षरूपसे त्यागन करदे ॥ १४ ॥

प्रविशन्निव चेतांसि दृष्ट्या साधु पिबन्निव ।
सवर्षन्निवामृतं साम प्रयुञ्जीत प्रियं वचः ॥ १५ ॥

देखतेही माना प्रसन्नचित्तसे नेत्रोंसे पीते हुएसे अमृतकी मानो वर्षा
हुए, सामपूर्वक प्रियवाणीका प्रयोग करे ॥ १५ ॥

वागनुद्वेगजननी सामेति परिकीर्त्यते ।
सामास्य सुनृतं सत्यं प्रियं स्तोत्रं च कीर्त्यते ॥ १६

जिस वाणीसे दूसरेको उद्वेग न हो वह सामवाणी कहातीहै, साम
नामक सरल सत्यप्रिय स्तुति कहीगई है ॥ १६ ॥

आत्मनो विषयमिव कुर्वन्दद्यात्समीहितम् ।
जलवत्पर्वताञ्छत्रून्भिन्द्यादनुपलक्षितः ॥ १७ ॥

अपने वशमें करनेके लिये मनइच्छित दूसरेको देना चाहिये, जैसे जल भीतरही भीतर पर्वतको तोडताहै इसप्रकार शत्रुके न जानते न जानते उनमें भेद करादे ॥ १७ ॥

क्षीराब्धिर्मथितः साम्ना फलायामरदानवैः ।
निजघ्निरे धार्त्तराष्ट्रान्सामप्रद्वेषिणोऽचिरात् ॥ १८ ॥

दैत्य और देवताओंने साम उपायसेही अमृतके लिये क्षीरसागरको मथा था, और उससे अमृत निकाला पीछे दैत्य वञ्चित कियेगये और सामके न माननेवाले धृतराष्ट्रके पुत्र शीघ्रही नष्ट होगये थे यह 'भारतमें' प्रसिद्ध है ॥ १८ ॥

दारुणं विग्रहं विद्वान्दानेन प्रशमं नयेत् ।
इन्द्रोपचारे शुक्रस्य दानेन सममीयिवान् ॥ १९ ॥

विद्वान्‌को उचित है कि, दारुण विग्रहकोभी दानसे शान्त करे, इन्द्रके उपचार (प्रयोग) और दानसे शुक्रने विग्रह शान्त करदियाथा ॥१९॥

अपराधेन दुहितुः कुपिते भृगुनन्दने ।
वृषपर्वा प्रदानेन दानवेन्द्रोऽभवत्सुखी ॥ २० ॥

जिससमय शर्मिष्ठा वृषपर्वाकी पुत्रीका भूलसे वस्त्र शुक्रकी कन्या देवयानीने धारण करलियाथा, और उसने बुरा भला कहा यहांतक कि, देवयानीको सूखे कुएमें ढकेलकर चलीआई, राजा ययातिने उसे निकाला, यह बात अपनी पुत्रीसे सुन जब भृगुजी क्रोधितहुए तब वृषपर्वाने अपनी वही कन्या देवयानीको दासीरूप देकर उनको प्रसन्न किया ॥ २० ॥

उपगम्यापि दातव्यं बलिने शान्तिमिच्छता ।
समूल एव गान्धार्या अप्रयच्छन्गतः क्षयम् ॥ २१ ॥

शान्तिकी इच्छावाला मद्धीके समीप जाकर भी कुछ भेंट दे, बिना
नके समूलही गान्धारीके पुत्र क्षय होगये ॥ २१ ॥

किञ्चित्प्रयच्छन्भूयस्या तृष्णया परिलोभयन् ।
भिन्द्याच्चतुर्विधान्भेदान्प्रविश्योभयवेतने ॥ २२ ॥

बडी तृष्णासे लुभातेहुए कुछेक देतेहुए दोनों ओरकी वेतन लेतेहुए पु
दोनोंमें प्रविष्ट होकर पुरुषोंमें चार प्रकारके भेदोंका प्रयोग करै ॥ २२

अलब्धस्वपणो लुब्धो मानी चाप्यवमानित ।
क्रुद्धश्च कोपितो यस्मात्तथाभीतोऽवमापित ॥२३॥

जिसको अपनी चाहुई वस्तुका मोल नहीं मिला, लोभी मा
और तिरस्कार पाये हुए क्रोधी किसी कारणसे कोप कराये हुए गुप्त
विश्वासे हमारा काम बिगड गया इसप्रकारसे कहेगये ॥ २३ ॥

यथाभिलषितैः कामैर्भिन्द्यादेतांश्चतुर्विधान् ।
परपक्षे स्वपक्षे च यथावत्प्रशमं नयेत् ॥ २४ ॥

इन चार प्रकारके पुरुषोंको अपनी अभिलषित कामनाके अनुस
भेदित करै, परपक्ष और शत्रुपक्षकी यथावत् शान्ति करै ॥ २४ ॥

भेदं कुर्वीत यत्नेन मन्त्र्यमात्यपुरोधसाम् ।
तेषु भिन्नेषु भेदो हि युवराजे सयोर्जितः ॥ २५ ॥

मन्त्री अमात्य और पुरोहितोंका भेद यत्नपूर्वक करै उनके भ
बडा भेद होता है इनमें भी युवराजका भेद महाभेद कहलाता है ॥२५

अमात्यो युवराजश्च भुजावेतौ महीपते ।
मन्त्री नेत्रं हि भिन्नेऽस्मिन्नेकस्मिन्नपि तद्विधः॥२६।

अमात्य और युवराज यह दोनों राजाकी भुजा हैं और मन्त्री
इनमें एकके भी न होनेसे राजा विकलांग होता है ॥ २६ ॥

सर्वावस्थं हि मेधावी तत्कुलीनं विकारयेत् ।
विकृतस्तु कुलीनस्तु स्वयोनिं ग्रसतेऽग्निवत् ॥ २७ ॥

बुद्धिमान्‌को उचित है कि, सब अवस्थाओंमें कुलीनको ही भेदकरे, [ली]न भेदको प्राप्त होकर अग्निके समान अपने पालकस्थानको भस्म [करत]ा है ॥ २७ ॥

तत्कुलीनेन तुल्यस्तु पुमानभ्यन्तरोषितः ।
तस्मादेतौ परं भिन्द्याच्छमं वात्मनि सन्धयेत् ॥ २८ ॥

अभ्यन्तरमें रहनेवाला पुरुषभी उस कुलीनकी समान होता है, इस कारणसे इन दोनोंका भेद अवश्य करै अथवा शान्तिपूर्वक इनको अपनेमें सन्धान करै ॥ २८ ॥

तत्रोपजापः कर्त्तव्यो यः कोपानुग्रहक्षमः ।
स कल्याणः शठो वेति परीक्ष्यः सूक्ष्मया धिया ॥ २९ ॥

जो कोपके अनुग्रह करनेमें समर्थ हो उसमें भेद करावे, वह कल्याण-[का]री है वा शठ है, ऐसा सूक्ष्मबुद्धिसे विचारै ॥ २९ ॥

कल्याणस्तु यथाशक्ति करोती सफलं वचः ।
शठः पक्षौ चलयति द्वावथार्थोपलिप्सया ॥ ३० ॥

जो कल्याणयुक्त है, वह यथाशक्ति अपने वचनको सफल करता है, [औ]र शठ अपनी प्रतिज्ञासे चलायमान होजाता है, यह दोनों अर्थकी [इ]च्छावाले हैं ॥ ३० ॥

पूर्वसेनापतिर्नीचः कालयापनमाश्रितः ।
मिथ्याभिशस्तः श्रीकाम आहूयाप्रतिमानितः ॥ ३१ ॥

जो पूर्वसेनापति नीचपदपर स्थित हुआ काल वितानेके निमित्त स्थिति [र]हा हो, मिथ्याही उसको दोष लगाया गया हो, लक्ष्मीकी इच्छा करता जिसका मान बिगाडा गया हो उसको बुलाना चाहिये ॥ ३१ ॥

राजद्वेषी चाकुलीनो दुष्यते यश्च भूभुजा ।
आहितव्यवसायश्च तथा करनिवेशित ॥ ३२ ॥

जो राजद्वेषी कुलीन हो राजाने जिसको दूषित किया हो जिसका व्यवसाय नष्ट किया गया हो तथा कर विशेष ग्रहण किया हो ॥ ३२ ॥

रणप्रिय साहसिक आत्मसम्भावितस्तथा ।
विच्छिन्नधर्मकामार्थः क्रुद्धो मानी विमानितः ॥ ३३

रणप्रिय, साहसी, स्वयं संभावनावाला हो जिसको धर्म, अर्थ, काम विच्छिन्न करदिया हो क्रुद्ध मानी या तिरस्कार किया हुआ ॥ ३३

भीत स्वदोषाभित्रस्त कृतवैरोऽभिशान्त्वित ।
अतुल्येन सहाराक्तस्तुल्यमानो निराकृत ॥ ३४ ॥

भीत अपने दोषसे घबड़ाया हुआ, वैर बाँधेहुए दूसरोंसे सान्त्वना पाए हुए, अशक्त अतुल्य कियाहुआ या तुल्यमानवालेसे तिरस्कार किया हुआ ॥

अकारणान्निरुद्धश्च कारणाच्च विरोधित ।
अकारणात्परित्रस्त पूजार्होऽप्यविपूजित ॥ ३५ ॥

विनाकारण निरोधकियाहुआ या किसी विशेष कारणसे निरोध किया हुआ विनाही कारण व्याकुलीभूत किया हुआ या सम्मानके योग्य होने भी न पूजित हुआ ॥ ३५ ॥

हृतद्रव्यकलत्रश्च महाभोगाभिकाङ्क्षित ।
परिक्षीणो बहिर्बन्धुर्वहिद्रव्यो बहिष्कृत ॥ ३६ ॥

द्रव्य और स्त्री जिसकी छीन लीगई है ऐसा महाभोगकी इच्छावान परिक्षीण हुआ बन्धुरहित किया हुआ द्रव्यसे बहिर्भूत किया हुआ तथा गोष्ठीसे बाहर किया गया ॥ ३६ ॥

इति भेद्याः समाख्याता भिन्नादेवान्परस्थितान् ।
आगतान्पूजयेत्कामैर्निजांश्च परिसाधयत् ॥ ३७ ॥

ह सब पुरुष भेदके योग्य है शत्रुके पाससे आयेहुए इनको अच्छी
सत्कार कर अपनी कामनाओको साधे ॥ ३७ ॥

समतृष्णानुसन्धानं समन्युभयदर्शनम् ।
प्रधानं दानमानञ्च भेदोपायाः प्रकीर्त्तिताः ॥ ३८ ॥

समान तृष्णावालेकी खोजकरना, क्रोधी और भय देखे हुएको दान
से वश करै यह भेदके प्रधान उपाय है ॥ ३८ ॥

भेदं कुर्वीत मतिमान्विगृहीतो बलीयसा ।
पण्डामर्कौ सुरैर्भित्त्वा बलवन्तौ पराजितौ ॥ ३९ ॥

बलवान्से निगृहीत होकर बुद्धिमान् भेदकाही प्रयोग करै बलवान्
भी पण्ड और अमर्क परस्पर भेद डलवाकर देवताओंने पराजित किये ३९

दण्डेन हि समाहन्याद्भित्वाऽरेः संहतं बलम् ।
भिन्नं हि तत्काष्ठमिव तृणदग्धं विशीर्य्यते ॥ ४० ॥

और आगे स्थित हुई सेनाको दण्डद्वारा नष्ट करै और उसकी संघटा-
को भेदित करै, और वह छिन्न भिन्न होकर फाडेहुए काष्ठके समान
अग्निकी समान शीघ्र नष्ट होजाती है ॥ ४० ॥

उत्साहदेशकालैस्तु संयुक्तः सुसहायवान् ।
युधिष्ठिर इवात्यर्थं दण्डेनास्तन्नयेदरीन् ॥ ४१ ॥

उत्साहवान् देशकालसे संयुक्त अच्छी सहाय सम्पन्न युधिष्ठिरके समान
हो होकर दण्डसे अत्यन्तही शत्रुको अस्त करदे ॥ ४१ ॥

आत्मनः शक्तिमुद्वीक्ष्य दण्डमभ्यधिकं नयेत् ।
एकाकी सत्त्वसम्पन्नो रामः क्षत्रं पुराऽवधीत् ॥ ४२ ॥

अपनी शक्तिको देखकर दूसरेपर दण्ड प्रयोग करै, शक्ति सम्पन्न
करही इकले परशुरामने २१ इकीसवार क्षत्रियोंको नष्ट कर दियाथा ४२

अलस विक्रमे भ्रान्तं विहितोपायचेष्टितम् ।
क्षयव्ययप्रसारैस्तु सन्तप्तं परिसिद्धुवम् ॥ ४३ ॥

आलसी विक्रममें भ्रान्त उपायकी चेष्टा देखेहुए क्षय और व्यय प्र कारसे सन्तप्त सिद्ध है ॥ ४३ ॥

भीत मूर्ख स्त्रिय बाल धार्मिक दुर्जनं पशुम् ।
मैत्रीप्रधान कल्याणबुद्धिं सान्त्वेन साधयेत् ॥४४

डरे हुए मूर्ख स्त्री बालक दुर्जन पशु, धार्मिक, मित्रताप्रधान कल्याणबुद्धि इतनोंको सान्त्वनासे साधे अर्थात् समझा बुझाकर वशमें करै ॥ ४४ ॥

अन्योन्यशङ्कयाभिन्नान्पुत्रान्दण्डस्यकारणात्॥४५

और परस्परकी शंकासे एक दूसरेसे भिन्न हुए पुत्रोंका दण्डके कारण वशीभूत करै ॥ ४५ ॥

पुत्रान्भ्रातॄंश्च बन्धूंश्च सामर्थ्येन च साधयेत् ।
एतैः क सदृशो लोके क्रूर रिपुकृतेरपि ॥ ४६ ॥

पुत्र भ्राता बधु इनको भी अपनी सामर्थ्यसे वशीभूत करै, इनकी समा दूसरा लोकमें कोई महितकारी नहीं है जब यह शत्रुके द्वारा भेदको प्र होजॉय ॥ ४६ ॥

सामैवेषु प्रयुञ्जीत दैवात्प्रस्खलितेष्वपि ।
दुष्करं यान्ति विकृतिस्पर्धाशीलनिबन्धनात् ॥४७

इनपर वश करनेके लिये साम उपायका प्रयोग करना चाहिये यदि दैवात् यह स्खलित होजॉय तो स्पर्धा और शीलके मानेसे इनमें दुष्क विकार प्राप्त होता है ॥ ४७ ॥

कुलं शीलं दया दान धर्म सत्य कृतज्ञता ।
अद्रोह इति येष्वेतदाचार्यास्ता प्रचक्षते ॥ ४८ ॥

ळ, शील, दया, दान, धर्म, सत्य, कृतज्ञता, अद्रोह यह जिनमें
ान हों वह आचार्य कहाते हैं ॥ ४८ ॥

पौरजानपदांश्चैव दण्डमुख्यश्च दण्डवित् ।
साधयेद्दानभेदाभ्यां दानभेदविचक्षणः ॥ ४९ ॥

ण्डका जाननेवाला पुरवासी, देशवासी जनोंको दण्डसे, और दान
भेदमें चतुर पुरुष दान भेदसे पुर और जनपदके देशोंको साधे ४९

अपराद्धांस्तु सुस्निग्धान्स्नेहोक्त्या मानदानतः ।
साधयेद्भेददण्डाभ्यां यथा योगेन चापरान् ॥ ५० ॥

और स्नेहयुक्त अपराधियोंको प्रीतिवचन, मान, दंड, भेद और दानसे
। और दूसरोंको यथारीतिसे साधे ॥ ५० ॥

देवताप्रतिमास्तम्भसुषिरान्तर्गतैर्नरैः ।
पुमान्स्त्रीवस्त्र संवीतो निशि चाद्भुतदर्शनम् ॥ ५१ ॥

देवताप्रतिमा स्तम्भोंमे उनके भीतर पुरुष स्थित होकर अनेक चेष्टा
ी है कहीं पुरुष स्त्रियोंके वस्त्र धारण करलेतेहै तथा रातमें अद्भुत दर्शन
ातेहै ॥ ५१ ॥

वेतालः क्व पिशाचानां देवानाञ्च सुरूपता ।
इत्यादिमाया विज्ञेया मानुषी मानुषैश्चरन् ॥ ५२ ॥

वेताळ, पिशाच और देवताओंकी समान रूप धरना यह मानुषी मायाही
नो, मनुष्यही इन मायाओंको किये हुएहै, देवता आदि इसप्रकार यत्र
दिखाई नही देते ॥ ५२ ॥

कामतो रूपधारित्वं शस्त्रास्त्राश्माम्बु वर्षणम् ।
तमोनिलीनता चैव इति माया च मानुषी ॥ ५३ ॥

जैसी इच्छा हो वैसा रूप धारण करलेना, अस्त्र, शस्त्र, जलका वर्षाना,
अकारमें लीन होजाना, यह सब मानुषी मायाहै ॥ ५३ ॥

जघान कीचक भीम आश्रित स्त्रीस्वरूपवान् ।
चिर प्रच्छन्नरूपोऽभूद्दिव्यया मायया नल ॥५

वैसो स्त्रीका रूप धारणकर भीमने कीचकको मारडाला और । मायासे राजा नल बहुत कालतक अपना रूप छिपाये सारथीके वेषमें ऋतुपर्णके स्थानमें रहा ॥ ५४ ॥

अन्याये व्यसने युद्धे प्रवृत्तस्यानिवारणम् ।
इत्युपेक्षाथकुशलैरुपेक्षा त्रिविधा स्मृता ॥ ५५ ॥

अन्यायमें व्यसनमें युद्धमें प्रवृत्ति हुएका निवारण न करना, उपे कुशलपुरुषोंने यह तीनप्रकारकी उपेक्षा कही है ॥ ५५ ॥

अकार्ये सम्प्रमानस्तु विषयान्धीकृतेक्षण ।
कीचकस्तु विराटेन हन्यतामित्युपेक्षित ॥ ५६

जो अकार्यमें फँसा हुआ था विषयके कारण जिसके नेत्र अंधे होर ऐसे कीचकको मरते हुए जानकर विराटने उपेक्षा की थी अर्थात् जब द्रौपदीकी इच्छा करता था तब भीमसेनने उसको द्रौपदीका रूप धा करके मारडाला और राजा विराट उसके वधसे चुप रहे ॥ ५६ ॥

ससज्ज भीमसेने षा स्वार्थविच्छेदभीतया ।
हिडिम्बया निजो भ्राता हन्यतामित्युपेक्षितः॥५७

और भीमसेनको सज्जित देखकर अपने स्वार्थ सिद्धिके लिये हिं हिडिम्बा राक्षसीने अपने भ्राता बकको मारेजानेमें उपेक्षा की थी अर्थ यह कि वह भीमसेनपर मोहित होगई और जब भीमसेनने उसके भ्र बकराक्षसको मारडाला तब उसके मारनेमें भ्राताको उसने कुछ सहाय न की ॥ ५७ ॥

मेघान्धकारवृष्टयग्निपर्वताद्भुतदर्शनम् ।
दूरस्थानाञ्च सैन्यानां दर्शनं ध्वजशालिनाम् ॥५८

मेघ,अन्धकार, वृष्टि, अग्नि, पर्वत तथा अद्भुतदर्शन और दूरस्थित ध्वजा का संयुक्त सेनाका दर्शन होना ॥ ५८ ॥

छिन्नपाटितभिन्नानां संस्कृतानाञ्च दर्शनम् ।
इतीन्द्रजालं द्विषतो भीत्यर्थमुपकल्पयेत् ॥ ५९ ॥

छिन्न भिन्न पाटित [विदारण] और संस्कृत वस्तुका दिखाना, यह इन्द्रजालविद्या शत्रुओंको भयदिखानेके लिये कल्पना करै ॥ ५९ ॥

इत्युपायाः समाख्याता राज्ञो नानार्थसाधकाः ।
सामैतेषु हि सामज्ञो यथा कामं प्रयोजयेत् ॥ ६० ॥

राजाके अनेक अर्थ साधनेवाले यह अनेक उपाय वर्णन किये है, साम-का जाननेवाला इनमें प्रथम सामउपायोंकी कल्पना करै ॥ ६० ॥

सामभेदौ च कर्त्तव्यौ साधु दानपुरःसरौ ।
दानेन हि समायुक्तावेतावर्थस्य सिद्धये ॥ ६१ ॥

दानपूर्वक साम और दान उपाय प्रयोग करने चाहिये दानसेही युक्त होनेसे इन दोनों अर्थोंकी सिद्धि होतीहै ॥ ६१ ॥

दानरिक्तेन सर्वत्र साम्ना कृत्यं भृशेन वा ।
निर्दानं साम नायाति कलत्रेष्वपि संस्थितिम् ॥ ६२ ॥

यदि दानके रहित साम हो तो वह निरर्थक होजाताहै, बिना दानके तो स्त्रीमें भी केवल साम स्थितिका साधन नही होता ॥ ६२ ॥

इत्याद्युपायान्निपुणं नयज्ञो विनिक्षिपेच्छत्रुबले निजे वा ।
निरस्तुपायो नियतं प्रयाणं विचेष्टमानोऽन्ध इवाभ्युपैति ६३

नीतिके जाननेवालेको यह सम्पूर्ण उपाय शत्रुकी सेना वा अपने द्रोहि-योंमें प्रयोग करने चाहियें और यदि उपाय न कियाजाय और वैसेही प्रयाण कियाजाय तो उसकी चेष्टा अन्धकी समान होतीहै ॥ ६३ ॥

अवश्यमायान्ति वश विपश्चितामुपायसन्दर्शमलेन सम्पद
भवन्त्युदाराविधिवत्प्रयोज्यतेफलहिराज्ञाकचिदर्थसिद्धये ६

इति श्रीकामन्दकीये नीतिसारे उपायविकल्पो नाम
सप्तदश सर्ग ॥ १७ ॥

उपाय सन्दर्शनके बलसे अवश्यही बुद्धिमानोंके वशमें लक्ष्मी आती है और विधिपूर्वक प्रयोगोंमें राजाकी उदारता होती है और अर्थसिद्धिरूप फलकी प्राप्ति होतीहै ॥ ६५ ॥

इति श्रीकामन्दकीये नीतिसारे भाषाटीकायामुपायविकल्पो
नाम सप्तदश सर्ग ॥ १७ ॥

अष्टादश सर्ग १८

सामादीनामुपायानां त्रयाणां विफले नये ।
विनयेन्नयसम्पन्नो दण्ड दण्डेषु दण्डवित् ॥ १ ॥

जब राजनीतिके साम दान, भेद इन तीन उपायोंसे कार्य न चले ? नीतिसम्पन्न दण्डविधानका ज्ञाता दण्डयोग्यपुरुषोंमें दण्डविधान करै ॥१

देवानभ्यर्च्य विप्रांश्च प्रशस्तग्रहतारकम् ।
षड्विधं तु बल व्यूह्य द्विषतोऽभिमुख व्रजेत् ॥ २

अच्छे नक्षत्र ग्रह तारआदि देखकर तथा देवता और ब्राह्मणोंकी पूजा करके मंत्रकोष संयुक्त छ प्रकारवाली सेनाकी व्यूह रचना (कतार दरम्दी) करके शत्रुपर चढाई करै ॥ २ ॥

सत्कारादनुरागाच्च सह सङ्कष्टनाशनात् ।
नित्यं तद्भावभावित्वा मौल भृत्यबलाद्वरं ॥ ३ ॥

निरन्तर सत्कार, प्रेम संकष्ट समय स्वामीके दुःखनाश करनेमें तत्पर

और नित्य स्वामीके भावमें भावित रहनेसे मौल (परम्परा पुस्तैनी
नौका) बल सेनाके बलसे श्रेष्ठ है ॥ ३ ॥

मौलं भूतं श्रेणिसुहृद्विषदाटविकं बलम् ।
पूर्वं पूर्वं गरीयस्तु बलानां व्यसनन्तथा ॥ ४ ॥

पुस्तैनी नौकरोंका बल, भूत (पीछे भरती किये नौकरोका) बल,
त् समूह [समुदायके मित्र] द्विपत् (शत्रुभूत वर्गोका) बल आटविक
दानमें वनमें युद्ध करनेवाले वा वनवासी पर्वतवासी सेनाका बल] यह पूर्व
श्रेष्ठ है अर्थात् गरीय है और सेनाका व्यसनभी पूर्व पूर्व गरीय है॥४॥

वृत्तेश्च स्वाम्यधीनत्वाद्भूतं श्रेणीबलाद्गुरु ।
तुल्यसंहर्षणामर्षात्सिद्धयलाभात्तथैव च ॥ ५ ॥

स्वामीके अधीन वृत्ति होनेसे बराबर सहषर्णकी असह्यतासे तथा
सिद्धिके प्राप्त न होनेसे श्रेणीबलसे भृतबल बडा है ॥ ५ ॥

बलाज्जानपदत्वाच्च मैत्राच्छ्रेणीबलं गुरु ।
सङ्ख्यातदेशकालत्वादेकार्थोपगमात्तथा ॥ ६ ॥

बलके एक देशवासी होनेसे देश और कालके सम्बन्धी मेल होनेसे
एकही प्रकारका आचार विचार होनेसे वा दोनोंका एकही अर्थमें प्रयोजन
प्राप्त होनेसे मित्रबलसे श्रेणीबल बडाहै ॥ ६ ॥

बलादमतयोग्याच्च शत्रौ मित्रबलं गुरु ।
प्रकृत्याऽधार्मिका लुब्धा अनार्याः सत्यभेदिनः ॥७॥

अस्वीकारयोग्य शत्रुके बलसे सुहृद्बल बडा है कारण शत्रुबल स्वभा-
सेही अधर्मी, लोभी, अनाडी और सत्यनाशक है ॥ ७ ॥

तस्मादारण्यकतया तेभ्यः शत्रुबलं गुरु ।
उभयं तद्विलोपार्थं कालापेक्षाव्यवस्थितम् ॥ ८ ॥

१-एक प्रकारकी शत्रुरूपसेना ।

पूर्वमें आरण्यकसा समनिवासपना होनेसे इन आटविकोंसे शत्रुका मदाहै यह दोनों प्रकारका बल एक दूसरेको नष्ट करनेको समर्थ रहताहै ४

विलोपव्यसने चैव तन्नास्य विजयो ध्रुव ।
उपजापकृताचस्योद्भयादस्यां विशेषत ॥ ९ ॥

इनके नाशरूप व्यसनसे राजाकी निश्चय विजय है इनका उपजाप [कानमें बात करके भेद कराना] या उपस्थित हुए वसकृष्ट भयसे इन दोनोंके विलोप व्यसनसे राजाकी अवश्य विजय होती है ॥ ९ ॥

परस्य चाप्युपजपेदुपजापादध्रुवो जयः ।
स्फीतसारानुरक्तेन मौलेनोपचित परः ॥ १० ॥

अथवा शत्रुके यहां परस्परका भेद करावे तो इस भेदसे अवश्य जय होती है तथा अच्छी अनुरक्त पुस्तैनी सेनासे अवश्य जय होती है ॥१० ॥

अपरेणापि रोषेण नृपेण योद्धुमिच्छया ।
तत्तुल्येनैव यातव्य क्षयव्ययसहिष्णुना ॥ ११ ॥

जब दूसरा राजा भी कोपकर युद्धकी इच्छा करता हो तब क्षय और व्ययके सहनेमें समर्थ राजा उस अपनी समान राजापर चढाई करे और जानले कि शत्रुभी क्षय और व्ययको सहसकताहै ॥ ११ ॥

प्रकृष्टेऽध्वनि काले वा गच्छेन्मौले समाश्रुवे ।
मौलास्तु दीर्घकालत्वात् क्षयव्ययसहिष्णव ॥१२॥

अच्छे मार्ग वा समयमें पुस्तैनी मौलबलसे संयुक्त होकर गमन करे मौलबलही दीर्घकालका होनेसे क्षय और व्यय सहनेमें समर्थ है ॥ १२ ॥

एषु चस्त्वपु मेधावी भृतादीनि विवर्जयेत् ।
दीर्घकालाध्वखिन्नेषु तेषु भेदभय भवेत् ॥ १३ ॥

बुद्धिमान् इन कामोंमें भृतबलको वर्जित रक्खे कारण कि इनके दीर्घ

ालतक एक कार्यमे लगने तथा दीर्घकालतक मार्गका खेद होनेसे भेदकी भावना होतीहै ॥ १३ ॥

बहुत्वात्परसैन्यानां दीर्घकालाच्च खेदतः ।
नित्यप्रवासायासाभ्यां भेदोऽवश्यं हि जायते ॥ १४ ॥

शत्रुसेनाकी अधिकाई होनेसे दीर्घकालतक एककार्यमे लग रहनेके खेदसे नित्य परदेशमे रहने और परिश्रमसे अवश्य भेद उपस्थित होताहै ॥ १४ ॥

प्रभूतं मे भूतबलं मौलमल्पमसारवत् ।
अरेरल्पं विरक्तं वा मौलं प्रायोऽल्पसारवत् ॥ १५ ॥

मेरा भूतबल अधिक है, मौलबल अल्प और असार है, शत्रुका बल थोडा और विरक्तहै अथवा शत्रुका मौलबल प्रायः असार है ॥ १५ ॥

प्रायो मन्त्रेण योद्धव्यमल्पायासेन वै जयः ।
अन्यो देशस्तु कालो वा प्रभूतो चाक्षयव्ययौ॥ १६ ॥
श्रान्तोपजापाद्विश्वस्तं यस्मात्सैन्यं परस्य च ।
अल्पप्रसारो हन्तव्य इत्युपेक्ष्या भृतैर्बलैः ॥ १७ ॥

ऐसे समय कौशल सम्मतिपूर्वक युद्ध करनेसे तो थोडे समयमेही अवश्य जय होतीहै शत्रुके देश, काल और विशेष क्षय व्ययको देखकर जब कि चढकर आईहुई शत्रुकी सेना थकित तथा भेदित वा चुगली आदिसे विमन वा किसीप्रकारके अभयसे विश्वासवाली हो वा भेदसे विश्वास करचुकी हो, थोडे प्रसारवाली हो तब उसको सेनाके भृत्योंसे उपेक्षित जान वध करै ॥ १६ ॥ १७ ॥

स्फीतं त्रीणि बलं शक्यमाधातुं पानवर्त्मनि ।
ह्रस्वप्रयासव्यायामादिति सैन्यं समुत्पतेत् ॥ १८ ॥

शत्रुकी बडी सेनाको बढीहुई देखे तो उसको मद्यपानमे लगाकर जय करसकताहै, थोडी प्रवासवाली, व्यायामवाली, उस सेनापर चढाई करदे १८॥

स्वमभूव मुहृत्सैन्य शक्यमाधातुमात्मनि ।
अल्पमेवाल्पयुद्धश्च मन्त्रेणेवि सुहृद्बले ॥ १९ ॥

अपनी थडी थडी मुहृत्सेना अपनमें अनुरक्त हो तो युद्धमें नय मि है और सुहृदोंके मध्य सम्पन्न तथा मन्त्रसे रक्षित मोटी सेना और युद्धमेभी उम्र आईहुई सेनासे नमसाम होताहै ॥ १९ ॥

मित्रसाधारणे कार्ये मित्रायत्ते फलोदये ।
अनुमाह्ये च पाण्डित्ये मित्रेणैव सह व्रजेत् ॥२०

मित्रके साधारण कार्यमें तथा मित्रका फलोदय मित्रके आधीन हो उसके अनुग्रहमें तत्पर तथा पाण्डित्यमें कुशल उस मित्रके साथही युद्ध मको अपनी अनुरक्त व्युहित सुसद्द स सहनशील सेनाके सहित गमनकरे

प्रभूतेनारिसैन्येन प्रेपयेन्महतो रिपून् ।
स्वसुकरवधापेक्षी नय वा वचनं नयेत् ॥ २१ ॥

जो शत्रुकी सेना विक्षिप्त हो तो कुश और सुकरके बधकी इच्छा कर वाला नीतिमान् राजा उस शत्रुसेनासे युद्ध करनको बडी सेना भेजे वचनसे विनीत वचन कहे ॥ २१ ॥

अविक्षिप्तं कोपभयादभ्यासेन रिपोर्बलम् ।
वासयेत्कर्पयेद्वैनं दुर्गकण्टकशोधने ॥ २२ ॥

कोपके भयसे अविक्षिप्त (व्याकुल) हुई शत्रुकी सनाको कार्यको कर वास दे तथा अपने दुर्गके कटक शोधन कर अर्थात् दर्पियोंका निग्रह कर शत्रुसेनाको कर्षण करै ॥ २२ ॥

नित्यमाटविकं सैन्य दुर्गकण्टकशोधने ।
परदेशप्रवेशे च पुरा कुर्व्वीत पण्डितः ॥ २३ ॥

चतुरपुरुषको उचित है कि पराये देशमें प्रवेश करनेसे पहले दुर्ग कंटकोंको शोधन करै और आटविक बल ठीक करै ॥ २३ ॥

एतन्मौलादिषड्वर्गः चतुरङ्गबलं विदुः ।
षडङ्गमन्त्रकोषाभ्या पदात्यश्वरथद्विपैः ॥ २४ ॥

यही मौल अर्थात् पुस्तैनी आदि जनोका षड्वर्ग चतुरगबल कहाताहै । त्र, कोष, पैदल, सवार, रथ, हाथी यहभी षडङ्ग कहाहै ॥ २४ ॥

इति षड्विधमेतद्धि यथा योगबलं बली ।
सुनिश्छिद्रं प्रतिव्यूह्य यायाज्ज्ञायो बलं प्रति ॥ २५ ॥

यही छः प्रकारका षडग बल है, और यथायोग्य अपनी सेनाको निश्छिद्र जानकर व्यूहित करके शत्रुकी विशेषसेनाके प्रति गमन करै ॥२५॥

योगमस्य विजानीयात्सर्वं मन्त्रादिना नृपः ।
कृताकृतप्रचारञ्च सम्यक्सेनापतेस्तथा ॥ २६ ॥

राजा मन्त्रादिके द्वारा इस सेनाके सब योगको जाने तथा सेनापतिके कर्तव्य अकर्तव्यके प्रचारको भलीभाँतिसे जानै ॥ २६ ॥

कुलोद्गतं जानपदं मन्त्रज्ञं मन्त्रसम्मितम् ।
दण्डनीतेः प्रयोक्तारमध्येतारञ्च यत्नतः ॥ २७ ॥

कुलपरपरासे प्राप्त हुए अपने देशके, मन्त्र जाननेवाले, मन्त्रमें सम्मत होनेवाले, दण्डनीतिके प्रयोग करनेवाले और यत्नपूर्वक अध्ययन करनेवालेको ॥ २७ ॥

सत्त्वशौर्यक्षमास्थैर्यमाधुर्यार्थगुणान्वितम् ।
प्रभावोत्साहसम्पन्नमाजीव्यमनुजीविनाम् ॥ २८ ॥

सत्व, शूरता, क्षमाशील, स्थिरता मधुरता, गुणोंसे सम्पन्न, अर्थसम्पन्न प्रभाव और उत्साहसे सम्पन्न अनुजीवियोंकी आजीविका देनेवाले ॥२८॥

मित्रवन्तमुदारास्यं बहुस्वजनबान्धवम् ।
व्यावहारिकमश्चटं पौरप्रकृतिसङ्गतम् ॥ २९ ॥

मित्रकीसमानउदारचेष्टावाले, उद्यमयुक्त बहुतसे स्वजन बन्धुओंसे सम्पन्न व्यवहारके ज्ञाता, क्षुद्रता रहित पुरवासी और ममात्योंसे संगविवाद२९

नित्याकारणवैराणामकर्त्तारमनाविलम् ।
धर्मानुबन्धिकर्माणमल्पामित्रं बहुश्रुतम् ॥ ३० ॥

नित्यही अकारण वैरके न करनेवाले अनाविल (निर्मलमनवाले) धर्मशास्त्र सम्बन्धी कर्मोंके करनेवाले अल्पशत्रुवाले बहुत शास्त्रके ज्ञाता ३०

आरोग्यं व्यायतं शूरं त्यागिनं कालवेदिनम् ।
कल्याणाकृतिसम्पन्नं स्वसम्भाव्यपराक्रमम् ॥ ३१ ॥

रोगरहित आगमके परिणामके ज्ञाता, शूर त्यागशील समयके ज्ञाता कल्याणी अर्थात् मनोहर आकारसे सम्पन्न अपने पराक्रमके ज्ञाता ॥ ३१ ॥

गजाश्वरथचर्यासु शिक्षितं सुजितश्रमम् ।
खड्गयुद्धनियुद्धेषु शीघ्रसंक्रमणक्षमम् ॥ ३२ ॥

हाथी घोडे रथकी सवारीकरनेमें शिक्षित दूसर कार्योंमें अच्छा प्रकारसे शिक्षित खड्गयुद्ध तथा दूसरे युद्धोंमें शीघ्रही विचरण करनमें समर्थ ३२

युद्धभूमिविभागज्ञं सिंहवद्गूढविक्रमम् ।
अदीर्घसूत्रं निस्तन्द्रममर्षणमनुद्धतम् ॥ ३३ ॥

युद्धभूमिके विभागको जाननेवाले सिंहकी समान गूढ विक्रमी दीर्घसूत्रतारहित तन्द्रा आलस्यहीन अमर्षण [असहनशीलता] उद्धतपनसे रहित ॥ ३३ ॥

हस्त्यश्वरथशस्त्राणां सम्यग्लक्षणवेदिनम् ।
चरस्थिरविवेकज्ञं कृतज्ञमनुकम्पकम् ॥ ३४ ॥

हाथी घोडे रथ और शस्त्रोंके लक्षणको भलीप्रकार जाननेवाले चर और अचर वस्तुके ज्ञाता, कृतज्ञ वस्तुओंसे सहज कार्यकुशल ॥ ३४ ॥

धर्मकर्मसमायोगं कुशलं कुशलानुगम् ।
सर्वयुद्धक्रियोपेतं शक्तं तत्परिकर्मणि ॥ ३५ ॥

र्मकर्मके योगमें कुशल, कुशल पुरुषोंकेही अनुगामी, सब युद्धकी से सम्पन्न और उस कर्ममे सब प्रकारसे समर्थ ॥ ३५ ॥

स्वभावचित्तज्ञतया युक्तमश्वनृदन्तिनाम् ।
तन्नाम्नाश्चापि वेत्तारं तद्विधानोपपादकम् ॥ ३६ ॥

ोडे, मनुष्य और हाथियोंके स्वभाव और चित्तका ज्ञान तथा उनके के भी जाननेवाले और उनके विधानके उपपादक ॥ ३६ ॥

देशभाषास्वभावज्ञं लिपिज्ञं सुदृढस्मृतिम् ।
निशाप्रचारकुशलं कुशलज्ञाननिश्चितम् ॥ ३७ ॥

देशभाषा स्वभावके ज्ञाता और उन भाषाओंके अक्षरोंके ज्ञाता, दृढस्मृ- ाले, रात्रिके विचरनेमें कुशल कुशलतापूर्वक ज्ञानमें निश्चय किये ॥ ३७ ॥

उदयास्तमयज्ञानं नक्षत्राणां ग्रहैः सह ।
दिग्देशमार्गविज्ञानसम्पन्नं तन्निषेवितम् ॥ ३८ ॥

नक्षत्र और ग्रहोंके उदय अस्तके ज्ञानवाले, दिशा, देश और मार्गके से युक्त ॥ ३८ ॥

क्षुत्पिपासाश्रमत्रासशीतवातोष्णवृष्टिभिः ।
अनाहितभयग्लानिं सत्पुंसामभयप्रदम् ॥ ३९ ॥

क्षुधा, पिपासा (प्यास) श्रम, त्रास, शीत, वात, गरमी, वर्षासे भय र ग्लानिको प्राप्त न होनेवाले, सत्पुरुषोंको अभय देनेवाले ॥ ३९ ॥

भेत्तारं परसैन्यानां दुःसाध्या हितनिश्चयम् ।
भयानाञ्च स्वसैन्यानां सम्यग्विष्टम्भलक्षणम् ॥ ४० ॥

शत्रुओंकी सेनाके भेद करनेवाले और दूसरोंको दुःसाध्य, स्वामीका

निर्भय हितकरनेवाले अपनी सेनाके भय और स्थिति तथा भलीप्रकार क्रमण जाननेवाले ॥ ४० ॥

अवस्कन्दाभिगोप्तारं भेत्तारं सैन्यकर्मणाम् ।
चरवृत्तप्रचारज्ञं महारम्भफलोपगम् ॥ ४१ ॥

छावनीकी रक्षा करनेवाले, सेनाके कर्मके भेदकरनेवाले चर तथा युद्धके प्रचारके जाननेवाले महारंभके फलके ज्ञाता ॥ ४१ ॥

शश्वत्ससिद्धिकर्माणं सिद्धिकर्मनिषेवितम् ।
परापरेषु निर्विण्णं श्रीमद्राज्यार्थतत्परम् ॥ ४२ ॥

निरन्तर सिद्धिकर्मके ज्ञाता सिद्धिके कर्मोंसे सेवित पर अपर पुरुषोंमें निर्विण्ण, और श्रीमद्राज्यके अर्थसाधनमें तत्पर ॥ ४२ ॥

इत्यादिलक्षणोपेतं कुर्वीत ध्वजिनीपतिम् ।
ध्वजिनीञ्च सदोद्युक्तः सङ्गोपयेद्दिवानिशम् ॥ ४३ ॥

इत्यादि लक्षणोंसे युक्त सेनापति करना चाहिये और सदा उद्योगमें साधहुआ दिनरात सेनाको बड़े यत्नसे रक्षित करता रहे ॥ ४३ ॥

नद्यद्रिवनदुर्गेषु यत्र यत्र भयं भवेत् ।
सेनापतिस्तत्र तत्र गच्छेद्व्यूहीकृतैर्बलैः ॥ ४४ ॥

नदी पर्वत वन दुर्गोंमें जहां जहां भयहो वहां वहां सेनापति अपनी सेनाको व्यूहित करके गमन करे ॥ ४४ ॥

नायकः पुरतो यायात् प्रवीरपुरुषावृतः ।
मध्ये कलत्रं स्वामी च कोषः फल्गु महद्धनम् ॥ ४५ ॥

बड़ी भारी सेनासे युक्तहुआ लघुसेना नामक आगे २ गमन करे, बीचमें कलत्रवर्ग स्वामी कोष और सामान्य धन लेकर गमन करना चाहिये ॥ ४५ ॥

पार्श्वयोरुभयोरश्वा वाजिनां पार्श्वयो रथाः ।
रथानां पार्श्वयोर्नागा नागानां चाटवीबलम् ॥ ४६ ॥

इसके दोनों दाहिने वायें भागमे घोडे और घोडोंके दाहिने वायें भागमें
।, रथके पार्श्वभागमें हाथी और हाथियोंके पार्श्वभागमे अटवी (वनवा-
यियो) की सेना चले ॥ ४६ ॥

पश्चात्सेनापतिः सर्वं पुरस्कृत्य कृती स्वयम् ।
यायात्सम्बद्धसैन्यौघः खिन्नानाश्वासयञ्छनैः॥४७॥

इन सबको ठीक करके पीछे सेनापति गमन करे और थकेहुओंको
नाश्वासन देताहुआ शनैः २ सेनासमूह लेकर स्वयम् गमन करे ॥ ४७ ॥

यायाद्व्यूहेन महता मकरेण पुरो भये ।
श्येनेनोभयपक्षेण सूच्या वा धीरवक्त्रया ॥ ४८ ॥

यदि आगे कुछ भय विदित हो तो मकरव्यूहका अवलम्बन करके
गमनकरे, अर्थात् बडे मकरके आकारवाली व्यूह रचना करके गमनकरे
अथवा शिखरेके दोनोंपक्षके समान व्यूहसे अथवा बडी पैनी धारवाले
सूचीव्यूहसे सेनापति गमन करे ॥ ४८ ॥

पश्चाद्भये तु शकटं पार्श्वयोर्वज्रसंज्ञितम् ।
सर्वतः सर्वतोभद्रं भयव्यूहं प्रकल्पयेत् ॥ ४९ ॥

यदि पीछे भय उपस्थित होय तो शकटके आकारवाले व्यूहसे गमन-
करे, दोनों ओर भय हो तो वज्रव्यूहसे और चारोंओरसे भय हो तो सर्व-
तोभद्रव्यूहसे सेनाकी कवायदरचनासे गमनकरे ॥ ४९ ॥

कन्दराशैलगहननिम्नगावनसङ्कटे ।
दीर्घेऽध्वनि परिश्रान्तं क्षुत्पिपासाहिमक्लमम् ॥ ५० ॥

कन्दरा, पर्वत, गहनवन, नदी स्थानमें यदि सकट उपस्थित होय वा
दीर्घमार्ग चलनेसे थकीहुई क्षुधा, प्यास और शरदीसे व्याकुल ॥ ५० ॥

व्याधिदुर्भिक्षमरकैः पीडितं दस्युविद्रुतम् ।
पङ्कपांशुजलच्छिन्नं व्यस्तं पुञ्जीकृतं पथि ॥ ५१ ॥

व्याधी दुर्भिक्ष तथा मारकरोगसे पीडित, चारोंके उपद्रवसे दौ क्षीण हुए, जलकी अधिकाईसे व्याप्त मार्गमें कीचादिकी अधिक व्याकुल, छिन्न भिन्न तथा एकत्रितहुए ॥ ५१ ॥

प्रसुप्तं भोजनव्यग्रमभूमिष्ठमसंस्थितम् ।
चोराग्निभयवित्रस्तं वृष्टिवातसमाहितम् ॥ ५२ ॥

सोतेहुई तथा भोजन करनेमें व्यग्रचित्त अभूमिष्ठ पर्वतादिपर च हुए, स्थिति न करतेहुए, तथा चोर अग्निके भयसे व्याकुल वर्षा पवनसे आहत ॥ ५२ ॥

एवमादिषु जातेषु व्यसनेषु समाकुलम् ।
स्वसैन्यं साधु रक्षेत परसैन्यञ्च घातयेत् ॥ ५३ ॥

इत्यादि व्यसनोंसे व्याकुलहुई अपनी सेनाकी भलीप्रकारसे रक्षा कर हुआ शत्रुकी सेनाका संहार करै ॥ ५३ ॥

विशिष्टो देशकालाभ्यां भिन्नारिप्रकृतिर्बली ।
कुर्यात्प्रकाशयुद्धञ्च कूटयुद्धं विपर्यये ॥ ५४ ॥

जब देशकाल अपने अनुकूलहो और शत्रुकी प्रजा उससे विरु होजाय तब बलवान्को प्रकाश युद्ध करना चाहिये इसके विपरीत युद्ध करै ॥ ५४ ॥

तेष्ववस्कन्दकालेषु परं हन्यात्समाकुलम् ।
अभूमिष्ठं स भूमिष्ठः स्वभूमौ चोपजायते ॥ ५५ ॥

इनके घेरेके समय व्याकुल हुए शत्रुको मारे दूसरेकी भूमिमें प्र अभूमिष्ठ कहाता है और अपने देशमें स्थित भूमिष्ठ कहाता है यह भू मिष्ठको अपनी भूमिमें स्थित सहजमें ताडन करता है ॥ ५५ ॥

प्रकृतिप्रग्रहाहृष्टं स्पर्शैर्वनचरादिभिः ।
हन्यात्प्रवीरपुरुषैर्भङ्गदानापकर्षणैः ॥ ५६ ॥

राजाके निग्रहसे अप्रसन्नको वनचरादिके स्पर्श तथा वीर पुरुषों द्वारा भंग
से, दान और अपकर्षणसे शत्रुको नष्ट करै ॥ ५६ ॥

पुरस्तु दर्शनं दत्त्वा तल्लक्ष्यकृतनिश्चयात् ।
हन्यात्पश्चात्सवीरेण बलेनोत्पद्य वेगिना ॥ ५७ ॥

उसके आगे दर्शन देकर और उसके लक्ष्यमें निश्चय होनेसे पीछेसे
ही वेगवान् बली वीरके द्वारा शत्रुपर प्रहार कराकर मारना चाहिये ५७

पश्चाद्वा सङ्कुलीकृत्य हन्यात्सारेण पूर्वतः ।
आभ्यां पार्श्वाभिघातौ तु व्याख्यातौ कूटयोधने ५८॥

अथवा पीछेसे कोलाहल करके चले, बलसे पूर्वकी ओरसे प्रहारकरे यह
दोनों ओरसे पार्श्वका ताडन कपटयुद्धमे वर्णन किया है ॥ ५८ ॥

पुरस्ताद्विषमे देशे पश्चाद्धन्यात्तु वेगवान् ।
जितमित्येव विश्वस्तं हन्याच्छत्रुं व्यपाश्रयः॥ ५९ ॥

यदि आगे विषमदेश हो तो बडे वेगसे पीछेसे ताडन करै और मेरी
जीतहोगई इसप्रकार विश्वास पायेहुए शत्रुको आश्रयहीन कर नष्टकरै॥५९॥

स्कन्धावारपुरग्रामप्रास्यमानं व्रजादिषु ।
विलोभ्य तु परानीकमप्रमत्तोऽवनाशयेत् ॥ ६० ॥

छावनी, पुर, ग्राम, गोठ आदिमें स्थित हुई शत्रुसेनाको लोभित करके
स्वयं सावधान होकर शत्रुसेनाको नष्ट करै ॥ ६० ॥

फल्गुसैन्यप्रतिच्छन्नं कृत्वा वा सारवद्दलम् ।
मर्दयन्तं तद्विलोपे ग्रसेदुत्पत्य सिंहवत् ॥ ६१ ॥

अपनी सारवाली सेनाको थोडी सेनासे प्रतिछन्न (अन्तरित) करके

तब उस थोडी सेनाको शत्रुमर्दन करनेलगे तब सिंहके समान कूदकर शत्रुको नष्ट करे ॥ ६१ ॥

मृगयासम्प्रयुक्त वा हन्याच्छत्रुं ध्यपाभय ।
अथवा गोमहाकृष्टया तल्लक्ष्य मार्गबन्धनात् ॥ ६२ ॥

अथवा मृगयामें आसक्त निराश्रय शत्रुपर प्रहारकरै, अथवा उसके मार्ग को जानकर गौकी समान उसको ग्रहण करनेको मार्गकी रोक करै ॥६२॥

अवस्कन्दभयाद्राज्ञो प्रजागरकृतश्रमम् ॥ ६३ ॥

घेरनेके भयसे जिसने रात्रिमें जागरण किया है और इसी कारण श्रम प्राप्त हुआ है ॥ ६३ ॥

अह्नसनाहवश्रान्तमपराह्ले विनाशयेत् ।
निशि विश्रम्भससुप्तं वत्सौप्तिकविधानवित् ॥ ६४ ॥

और जो युद्धमें तथा दिनमें श्रमसे थके हैं उनका अपराह्न (तीसरे पहर) युद्धमें विनाश करे और जो रातको सुखसे शयन कर रहे हों उनको सौप्तिक विधान [सोते पुरुषोंपर प्रहारकी रीति] से प्रहार करनेवाला॥६४॥

सपादकोशावरणैर्भागे कुर्याच्च सौप्तिकम् ।
कोपादुभजयोपेवैर्नरैर्वा खड्गपाणिभि ॥ ६५ ॥

उन सोते पुरुषोंका विभाग करके,चरण पर्यन्त भयकर आवरण धारणकर जिससे राक्षसादिकी प्रतीतिहो ऐसा करै अथवा खड्गपाणि कोपसे प्रहारकरी प्राप्त हुए पुरुषोंद्वारा ॥ ६५ ॥

प्रति सूर्य महावात हन्यात्समीलितेक्षणम् ।
इत्येव कूटयुद्धेन हन्याच्छत्रु लघुत्थित ॥ ६६ ॥

सूर्यके सन्मुख वा आँधीके सन्मुख मिची आँखोंवाली शत्रुसेनाका वध करामे इसप्रकार कूटयुद्धद्वारा किंचित् श्रमसेही शत्रुका वधकरै ॥ ६६ ॥

नीहारस्तिमिरं गावः स्वभ्राद्रिवननिम्नगाः ।
वदन्ति शत्रुमित्यादि छत्रं सप्त प्रकीर्त्तितम् ॥ ६७ ॥

कुहरा अंधकार, गौ [गौओके भागनेसे उठी धूरि] मेघ, पर्वत, वन नदी यह सातप्रकारका शत्रुरूप छत्रका अर्थात् घेराहै इसको जानै ६७

साधुप्रवृत्तो व्यवसायवर्त्ती यानप्रकारेण परन्निहन्यात् ।
चरैः समावेदिततत्प्रचारः शङ्केत तेनैव ततोऽप्रमत्तः ॥ ६८ ॥

भलीप्रकारसे प्रवृत्तिवाला, उद्योगशीलराजा, इस चढाईके प्रकारको लम्बन करके शत्रुको मारै, और दूतोंसे भलीप्रकार उसकी गति जान- : सावधान हुआ शत्रुसे शंकित रहै ॥ ६८ ॥

नियतमिति निहन्यात्कूटयुद्धेषु शत्रुं
न हि निरयति धर्मच्छद्मना शत्रुनाशः ।
अचकितमिव सुप्तं पाण्डवानामनीकं
निशि सुनिशितशस्त्रो द्रोणसूनुर्जघान ॥ ६९ ॥

इसप्रकार कूटयुद्धसे शत्रुका निश्चित वधकरै, इसप्रकार शत्रुनाशसे ी अधर्म वा नरक नहीं होता । देखो विश्वासपूर्वक सोईहुई पाण्डवोंकी नाको भारतमें शस्त्र लेकर द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने मारडाला था ॥ ६९ ॥

इति श्रीकामन्दकीये नीतिसारे सैन्यबलाबलं सेनापतिप्रचारः प्रयाणव्यसनरक्षणं कूटयुद्धविकल्पश्च अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

इति श्रीकामन्दकीये नीतिसारे भाषाटीकायां सैन्यबलाबलं सेनापति प्रचार प्रयाण व्यसनरक्षण कूटयुद्ध विकल्पश्च अष्टादश सर्ग ॥ १८ ॥

ऊनविंश सर्ग १९

प्रयाणे पूर्वजापित्वं वनदुर्गप्रवेशनम् ।
अस्तानाञ्च मार्गाणां तीर्थानाञ्च प्रवर्त्तनम् ॥ १ ॥

गमनमें प्रथम सम्मति कर अग्रगामी होना, वन और दुर्गमस्थलमें प्र स करवाना जहां मार्ग नहीं है वहां मार्ग कर देना, नदी समूहोंके पा उतरने लायक कर देना ॥ १ ॥

तोयावतारसन्तारावेकाङ्गविजयस्तथा ।
अभिन्नानामनीकानां भेदनं भिन्नसंग्रहः ॥ २ ॥

जलोंमें अवगाहन पारगमनका मार्ग करना एकही अंगसे विजय देना संघट हुई सेनाको भिन्न भिन्न कर देना तथा भिन्न भिन्न हुई सेनाको घेरकर इकट्ठी कर देना ॥ २ ॥

विभीषिकाविघातश्च प्राकारद्वारभञ्जनम् ।
कोपनीतिभयत्राणं हस्तिकर्म प्रचक्षते ॥ ३ ॥

प्राप्त हुए भयका निवारण करना, परिखा और द्वारका तोड देना, को नीतिके भयसे रक्षाकरना यह हाथियोंका कार्य कहा है ॥ ३ ॥

वनदिङ्मार्गमयो वीवधासारक्षणम् ।
अनुयानापसरणे शीघ्र कार्योपपादनम् ॥ ४ ॥

वन दिशा मार्गकी खोजा भारढोनेकी पार्दिगसेना और धान्यकी रक्ष अपसरणमें पीछे गमन शीघ्रकार्यका सम्पादन करना ॥ ४ ॥

दीनानुसरणञ्चैव कोटीनां जघनस्य च ।
इत्यश्वकर्म पत्तेश्च सर्वदा शस्त्रधारणम् ॥ ५ ॥

भीत हुएकी रक्षा, शत्रुके सन्मुख गमन, वक्रगतिसे प्रहार यह सब अश्व अर्थात् घोडेके कर्म हैं और सदा शस्त्रका धारण करना यह पैदल सैनिकों का कर्म है ॥ ५ ॥

शोधनं कूपतीर्थानां मार्गाणां शिबिरस्य च ।
यवसादि च यत्किञ्चिद्विज्ञेयं विश्वकर्मवत् ॥ ६ ॥

कूप और तीर्थ स्थानोंका शोधन करना मार्ग और छावनियोंका शोध जो कुछ सब जो धान्य आदिकी सामग्री है उसको भलीप्रकार विश्व-की समान ज्ञानमे रखना ॥ ६ ॥

जातिस्थानं वयःस्थानं प्राणिनां मर्मवेदिता ।
तेजः शिल्पं शीघ्रगत्वं स्थैर्यं साधुविधेयिता ॥ ७ ॥

जातिस्थान, अवस्थास्थान, प्राणियोंके मर्मका ज्ञान, तेज कारीगरी कौ-शल शीघ्रगति, स्थिरता, साधुतापूर्वक वा भली प्रकार कार्यका विधान ॥७॥

स्वव्यञ्जनाचारवतां पत्त्यश्वरथवाजिनाम् ।
इति लक्षणमेतेन युक्तान्कर्मसु योजयेत् ॥ ८ ॥

अपने प्रगट कार्यमे आचारवाले, पैदल, अश्व, रथ, आरोहियोके यह लक्षण है, इनको यथा योग्य अपने २ कार्योंमें नियुक्त करे ॥ ८ ॥

सस्थूणाच्छिन्नवल्मीकवृक्षगुल्मापकण्टका ।
सापसारा पदातीनां भूर्नैव विषमा मता ॥ ९ ॥

पैदलोंके निमित्त टूट, छिन्न, बँबईवाली, वृक्ष गुल्म लता कॉटोंसे स-कीर्ण तथा विषम ऊँची नीची भूमि विचरण करनेके योग्य नही है ॥९॥

अल्पवृक्षोपला छिद्रा लतिका विदरा स्थिरा ।
निःशर्करा च निष्पङ्का सापसारा च वाजिभूः ॥ १० ॥

थोडेवृक्ष और पाषाणवाली, अल्पछिद्र और लतावाली, दरार रहित, स्थिर, कंकररहित कीच और दल दलसे हीन भूमि, घोडोंके विचरण करने योग्य होतीहै ॥ १० ॥

निःस्थाणुसिकतापङ्का निर्वल्मीकोपलासना ।
केदारव्रततिश्वभ्रवृक्षगुल्मादिवर्जिता ॥ ११ ॥

स्थाणु, रेता, कीच, बाँबी, पाषाण, विनयसार, खेत, लतासमूह, पृथिवीका पोलापन वृक्ष गुल्म, इत्यादिसे रहित ॥ ११ ॥

निरुपाना निर्दरणा खुरचक्रमणक्षमा ।
सर्वप्रचारयोग्या च रथभूः सम्प्रकीर्तिता ॥ १२ ॥

उद्यान बगीचे और दरारोंसे रहित, घोडोंके खुर रखनेमें समर्थ सब जगह जाने आनेके योग्य भूमि रथके प्रचरण करनेके योग्य कही गई है॥१२॥

रथानां वाजिनां भूमिः स्थिरा सर्वत्र हस्तिनाम् ।
न हयस्थानभूरेषा न नागानां विदुर्बुधाः ॥ १३ ॥

रथ घोडे और हाथियोंके भूमिकी सर्वत्र स्थिरता होनी चाहिये और दरारयुक्त तथा पोली भूमि हाथी घोडोंके योग्य नहीं है ॥ १३ ॥

मर्दनीयतरुच्छेद्यप्रवति पङ्कवर्जिता ।
उर्वरा गम्यशैला च विषमा गजमेदिनी ॥ १४ ॥

मर्दन करने तथा तोडने योग्य वृक्षोंसे सकीर्ण सस्ययुक्त गम्य पर्वतों वाली विषम ऊँची नीची भूमि हाथियोंके प्रचार योग्य होती है ॥ १४ ॥

जयार्थी नैव युध्येत मतिमानप्रतिग्रहः ।
युध्येतावश्यकत्वाद्वा तदाविबलयोद्धित ॥ १५ ॥

बुद्धिमान् जयशील प्रतिग्रहकी इच्छा न करनेवाला प्रथम तो युद्धही न करे, और जो आवश्यकता पडनेसे युद्ध करे तो प्रतिसेना सम्पन्न हो युद्ध करै ॥ १५ ॥

गजेष्वारोपितः साधु शीघ्रयानैरधिष्ठितः ।
यत्र राजा तत्र कोषः कोषाधीना हि राजता ॥ १६ ॥

शीघ्रगामी सवारी या हाथीपर खजाना रखना चाहिये जहां राजाहो वहीं खजाना स्थापितकरै कारण कि, राजापन कोषकेही अधीनहै ॥१६॥

प्रत्यग्रे कर्मणि कृते श्लाघ्यमानः कृतादरः ।
योधेभ्यस्तु ततो दद्यात्को हि दातुर्न युध्यते॥ १७ ॥

जो सबसे आगे कर्म करे उसकी प्रशंसा और आदरकरे, और उसी य युद्धकरनेवालोंको दानदे कारण कि, दान शीलके लिये कौन युद्ध ां करताहै ॥ १७ ॥

दद्यात्प्रहृष्टो नियुतं वर्णानां राजघातिने ।
तदर्द्धन्तत्सुतवधे सेनापतिवधे तथा ॥ १८ ॥

राजाके मारनेवालेको एक लक्षदे उसके पुत्र और सेनापतिके मारनेवा-को इससे आधादे ॥ १८ ॥

प्रवीराणां तु मुख्यस्य शतं शतगुणं वधे ॥ १९ ॥

तथा मुख्य वीरके मारनेवालेको दश सहस्र ॥ १९ ॥

तदर्धं कुञ्जरवधे प्रदानं स्यन्दनस्य च ।
सहस्रञ्च चापिवधे पतिमुख्यवधे स्मृतम् ॥ २० ॥

मुख्य हस्त्यारोहीके मारनेमें तथा रथीके मारनेमे ५०००सहस्र मुद्रादे और मुख्य पैदलके मारनेमें एक सहस्र पुरस्कारदे ॥ २० ॥

गवां विंशतिकं सर्वं भोगाद्द्वैगुण्यमेव च ।
गुण्यं हेम च कुप्यञ्च यो यज्जयति तस्य तत् ॥२१॥

शत्रुकी गौवे हरण करनेवालेको २० मुद्रा पुरस्कारदे, और शत्रुको उसके भोगसे रहित करदे, वा भोग्य वस्तु जो शत्रुकी हो उससे लेकर अपनी सेनाको दे, सुवर्ण सूत्र तोडा सुवर्ण भूषण तथा सुवर्णसे भिन्न चांदी ताम्रादिकी मुद्रा जो जिसको जीते वह उसीकी होती है ॥ २१ ॥

दद्याद्वस्त्वनुरूपं हि हृष्टो योधान्नराधिपः ।
पश्चात्तद्विधमुत्सर्पन्स्थापयेद्बलिनं युधि ॥ २२ ॥

इसप्रकार राजा प्रसन्न होकर वस्तुक समानही पुरस्कार दे, पीछे इस प्रकार सज्जित हुआ युद्धमें बलिष्ठ सेनाको स्थापन करे ॥ २२ ॥

त्रिगुणाश्वो रथगजो योज्यौ पञ्चसु पञ्चसु ।
समान्तरश्च पुरुषस्तुरङ्गस्त्रिसमान्तरः ॥ २३ ॥

पाँच २ पैदलोंके साथ तीन तीन सवार एक २ रथ और एक २ हाथी नियत करना चाहिये, इसका नाम एकपाती है इसप्रकार पुरुष जो युद्ध निमित्त स्थितहों वह समान्तरहों अर्थात् उनमें एक पुरुषके रहने समान जगह रहनी चाहिये और जहां सवार युद्धको खड़े हों तो घोड़ोंके मध्यमें तीन पुरुषोंका अन्तर होना चाहिये ॥ २३ ॥

कुञ्जरः स्यन्दनश्चैव स्मृतौ पञ्च समान्तरौ ।
सर्वनीतिविदामेतत्सम्मतं परिकीर्त्तितम् ॥ २४ ॥

तथा हाथी और रथोंका पाँच २ पुरुषोंका अन्तर देकर खड़ा करना चाहिये सम्पूर्ण नीति जाननेवालोंकी यह सम्मति है ॥ २४ ॥

तथा च खलु युध्येरन्परस्परमपदन्विनः ।
यथा भवेदसम्बाधो व्यायामो विनिवर्त्तने ॥ २५ ॥

पैदल घोड़े रथ हाथी यह सब इसप्रकारसे युद्ध करें कि जिससे इनके लौटने और इधर उधर फिरनेमें विघ्न न पड़े अर्थात् वे परस्पर भिड न जाय ॥ २५ ॥

सङ्कुलेन च युध्येरन्सङ्कुलं सङ्कुलावहं ।
महासङ्कुलयुद्धे तु संश्रयेरन्महाकुलाम् ॥ २६ ॥

रथी पैदल हस्त्यारोही घुड़सवार जब मिलकर युद्ध करें तो यह संकुल युद्ध होजाताहै और जब यह महा मिश्रित होजाँय तो महासंकुल युद्धमें महाकुलीन योद्धा न देवतार्थोका आश्रय ले ॥ २६ ॥

अवश्यं प्रतियोद्धारो भवेयुः पुरुषास्त्रयः ।
इति कल्पास्तु पञ्चाश्वा विधेयाः कुञ्जरस्य च ॥ २७ ॥

यदि पत्तियोंमें रथी युद्ध न करे तो तीन सवार पुरुष युद्ध करनेवालों के साथ प्रतियुद्ध अवश्य करे, यह कल्प पाच घोडोका बनताहै, जैसे एक रथके दो घोडे तीन सवारोंके तीन घोडे इसप्रकार प्रति प्रति पांच २ घोडेकी भी होती है, इसी भाँति प्रत्येक हाथीके साथ पाच २ घोडे होते है २७

पादशो भावयेदश्वपुरुषा दश पञ्च च ।
विधानमिति नागस्य कथितं स्यन्दनस्य च ॥ २८ ॥

और इस पत्तिमे दशपुरुष, अर्थात् पांच पदाति, २ तीन सवार, २ रथी, १ हस्त्यारोही, रथ, हाथीको छोडकर घोडे और पुरुष पन्द्रह होते है यही रथ और हाथीके साथभी इसी भाँति लगाना चाहिये, भारतादि ग्रन्थोंमें इसका विशेष वर्णन है ॥ २८ ॥

तथानीकस्य रंध्रं तु पञ्चचापं प्रचक्षते ।
सर्वव्यूहविधानज्ञा युद्धकर्मसु कर्मणः ॥ २९ ॥

पाच धनुष पर्यन्त सेनाका सैनिकोंसे अवकाश रहना चाहिये, सब प्रकारकी व्यूह रचनाके जनानेवाले व्यूह कर्ममें विधान जाननेवाले तथा युद्ध कर्ममें कुशल पुरुष ऐसा कहते है ॥ २९ ॥

उरःकक्षे च पक्षौ च मध्यं पृष्ठं प्रतिग्रहः ।
कोटी च व्यूहशास्त्रज्ञैः सप्ताङ्गो व्यूह इष्यते ॥ ३० ॥

हृदय, दोनों कोख, दोनो पक्ष, मध्यस्थान, पृष्ठभाग, प्रतिग्रह और कोठी यह सात अगव्यूहके व्यूह शास्त्रके ज्ञाताओंने कहेहै ॥ ३० ॥

उरश्च कक्षपक्षौ च व्यूहोऽयं सप्रतिग्रहः ।
गुरोरेप च शक्रस्य कक्षाभ्यां परिवर्जितः ॥ ३१ ॥

जाती कक्ष पक्ष सम्मम मह मतिमह सहित व्यूह कहाते और इस आर्यने यही व्यूह कक्ष (कोस) से रहित वर्णन किया है ॥ ३१ ॥

अमेयाः कुलजा मेध्या लब्धलक्ष्या प्रहारिण ।
सेनाङ्गपतय कार्या दृष्टपुष्पप्रतिक्रिया ॥ ३२ ॥

किसी प्रकारसे भेदको न मास होनेवाले कुलीन पवित्र लक्ष्यमेदी पुष्पसम्महारके करनेवाले अनेक बार युद्धके देखे हुए छोटे २ सेनापति करने चाहिये ॥ ३२ ॥

प्रवीरपुरुषैरेतोस्तिष्ठेयुः परिवारिताः ।
अभेदेन च युध्येरन्नक्षेयुश्च परस्परम् ॥ ३३ ॥

और इन सेनापतियोंके समीप मुख्य २ वीरगण स्थित रहैं, यह सब मिलकर युद्ध करैं, और परस्पर एक दूसरेकी रक्षा करें ॥ ३३ ॥

फल्गु सैन्यस्य यत्किञ्चिन्मध्ये व्यूहस्य तन्नवेत् ।
युद्धवस्तु च यत्किञ्चित्प्रायस्तज्जघने भवेत् ॥ ३४ ॥

जो कुछ सामान्य थोड़ीसी सेनाहो वह व्यूहके मध्यदेशमें रखनी चाहिये और जो कुछ युद्धकी वस्तु है वह जघन स्थानमें स्थापित करै ३४

युद्धार्थे युद्धकुशलं षण्डानीक प्रयोजयेत् ।
युद्ध हि नायकप्राण हन्यते तदनायकम् ॥ ३५ ॥

और युद्धके निमित्त युद्ध कुशल प्रचण्ड सेनाको प्रयुक्त करै युद्धमें सेनानायकही प्राण है बिना सेनापतिके सेना नष्ट होती है ॥ ३५ ॥

व्यूहोऽनुपृष्ठमचल पत्त्यश्वरथदन्तिभि ।
तथाप्रतिहतो ज्ञेयो हस्त्यश्वरथपत्तिभि ॥ ३६ ॥

पैदल घोडे सवार हाथियोंके सँवार तथा रथियोंसे व्यूह दृढ पृष्ठ और अचल कहाता है और हाथी घोडे रथ पैदलोंसे सुसम्पन्न होनेसे सर्व अप्रतिहत (पराजयके अयोग्य) होती है ॥ ३६ ॥

मध्ये देशे हयानीकं रथानीकं तु कक्षयोः ।
पक्षयोश्च गजानीकं व्यूहोन्तभिदयं स्मृतः ॥ ३७ ॥

व्यूहके मध्यभागमे घोडोंकी सेना दोनों कक्षस्थानोंमें रथियोंकी सेना ों पक्षोंमें हाथियोंकी सेना होनेसे यह व्यूह अन्तर्भिद् कहाता है ३७॥

रथस्थाने हयान्दद्यात्पदातींश्च हयाश्रये ।
रथाभावे तु मतिमान्नागानेव प्रकल्पयेत् ॥ ३८ ॥

रथके स्थानमें घोडोंको स्थापित करै, और घोडोंके स्थानमे पैदलोको ापित करै, अथवा रथोंके अभावमे बुद्धिमान् हाथियोंको नियुक्त ॥ ३८ ॥

विभज्य प्रक्षिपेन्मध्ये पत्त्यश्वरथकुञ्जरान् ।
मध्ये कुर्वीत नागेन्द्रान्पत्त्यश्वरथवारितान् ॥ ३९ ॥

समकार पैदल रथी घुडसवार हस्त्यारोही जनोंका विभाग करके मध्यमें थापन करै, और रथी घुडसवार तथा पैदलोंसे घेरेहुए गजेन्द्रोको मध्यमें थापित करै ॥ ३९ ॥

धनुःसूची च दण्डश्च शकटो मकरध्वजः ।
इत्यादयो महाव्यूहास्तदाकारान्प्रकल्पयेत् ॥ ४० ॥

धनुष सूची, दण्ड, शकट, मकरध्वज यह नामवाले महाव्यूह इन्हीं स्तुओंके यह महाव्यूह कहातेहै, जो शब्दार्थ है उसीके आकार व्यूह ल्पना करनी चाहिये ॥ ४० ॥

यदि स्याद्दण्डबाहुल्यं तदा चापः प्रकीर्त्तितः ।
मण्डलोऽसंहतो भोगो दण्डश्चेति मनीषिभिः ॥ ४१ ॥

दण्डव्यूह अधिक हो तो यह चापव्यूह कहाताहै,मण्डल, असहत, भोग और दण्ड बुद्धिमानोंने ॥ ४१ ॥

कथिता मण्डलव्यूहा भेदास्तेषां प्रकीर्त्तिता ।
य स त व्यूहा यतिमान्काले स्थाने प्रकल्पयेत् ॥ ४२

यह प्रकृति व्यूह कहे हैं और इनके भेद भी कहेहैं इनमेंसे बुद्धिमान्
देशकालानुसार व्यूहोंकी कल्पना करे ॥ ४२ ॥

तिर्यग्वृत्तिश्च दण्डः स्याद्भोगतावृत्तिरेव च ।
प्रदरो दृढकोऽसह्यश्चापो वै तद्विपर्यय ॥ ४३ ॥

तिर्यग्वृत्तिवाला दण्डव्यूह है, भोगन होनेसे वृत्ति [प्रवृत्ति अर्था
तिरछे गमन] होतीहै प्रदर, दृढक, असह्य यह इस दण्डव्यूहके भेद है
चापव्यूह इससे विपरीत होताहै, तिर्यग्वृत्ति नहीं होता "आगे सेनाध्यक्ष
मध्यमें राजा पीछे सेनापति होवे पार्श्व भागमें हाथी, उसके समीपमें
घुड़सवार पीछे पैदल ऐसी रचनावाला दण्डाकार दण्डव्यूह कहाता
है" ॥ ४३ ॥

प्रतिष्ठ सुप्रतिष्ठश्च श्येनो विजयसञ्जयौ ।
विशालविजय सूची स्थूणाकर्णचमूमुख ॥ ४४ ॥

प्रतिष्ठ सुप्रतिष्ठ, श्येन विजय, संजय विशालविजय सूची, स्थूणा-
कर्ण चमूमुख ॥ ४४ ॥

सुखास्यो वलयश्चैव दण्डभेदाः सुदुर्जया ।
अतिक्रान्त प्रतिक्रान्त कक्षाभ्यामेकपक्षतः ॥ ४५ ॥
अतिक्रान्तश्च पक्षाभ्यां त्रयोऽन्यस्तु विपर्यय ।
स्थूणापक्षो धनुःपक्षो द्विस्थूणो दण्ड ऊर्ध्वग ॥ ४६ ॥

प्रास तथा वलय यह दुर्जय दण्डव्यूहके भेदहैं भागव्यूहके भेद कहते
हैं अतिक्रान्त दोनोंपक्षोंसे आगेको बढ़ा हुआ प्रतिक्रान्त इसके विपरीत
पक्ष पीछे हाथीका भाग आगेको बढ़ाहुआ (जैसे पक्षी बैठताहै) अन्य
इसके विपरीत एक पक्ष आगको बढ़ा हुआ

स्थूणापक्ष "स्थूणके आकार पक्षवाला" धनुःपक्ष "धनुषकेसे पखोंवाला" द्विस्थूण "दोस्थूणकी समान पक्षवाला" दण्डः 'दण्डके आकार पक्षवाला' तथा ऊर्ध्वग ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

द्विगुणान्तरस्त्वतिक्रान्तपक्षोऽन्योऽस्य विपर्ययः ।
द्विचतुर्दण्ड इत्येवं ज्ञेयो लक्षणतः क्रमात् ॥ ४७ ॥

अतिक्रान्तपक्ष द्विगुणान्त होताहै अन्य इसके विपरीत होगा वह चाहे द्विचतुरदण्डहो यह क्रमसे लक्षणपूर्वक द्विदण्ड, चतुर्दण्ड संज्ञावाला मानना ॥ ४७ ॥

गोमूत्रिकाऽहिसञ्चारी शकटो मकरस्तथा ।
भोगभेदाः समाख्यातास्तथा परिपतन्तकः ॥ ४८ ॥

गोमूत्रिका अहिसंचारी शकट और मकर यह भोगव्यूहके भेदहै तथा परिपतन्तक भी इसीके भेदहै, शकटके आकारका शकट और मकरके आकारका मकरव्यूह होताहै ॥ ४८ ॥

दण्डपक्षो युगोरस्यः शकटस्तद्विपर्ययः ।
मकरो व्यवकीर्णश्च शेषः कुञ्जरराजिभिः ॥ ४९ ॥

युगहै उरस्यभाग जिसमें ऐसा शकटव्यूह होताहै, दण्डपक्ष परिपतन्तक होताहै, दण्डपक्षका युगोरस्य शकट विपर्ययहै, शेष मकरव्यूह हाथियोंकी पंक्तिसे मकराकार फैलाहुआ होताहै ॥ ४९ ॥

मण्डलव्यूहभेदौ च सर्वतोभद्रदुर्जयौ ।
गजानीको द्वितीयस्तु प्रथमः सर्वतोमुखः ॥ ५० ॥

सर्वतोभद्र और दुर्जय मण्डलव्यूहके भेदहै दुर्जयमें हाथीकी सेना होतीहै सर्वतोभद्रमें सेनाका सब ओरको मुख होताहै ॥ ५० ॥

अर्द्धचन्द्रक उद्धारो वज्रो भेदास्त्वसंहतेः ।
तथा कक्कुटश्रृङ्गी च काकपादी च गोधिका ॥५१॥

अर्द्धचन्द्र [अर्धचन्द्राकार सेना] उद्धार और वज्र यह असंहत भेद हैं कुक्कुटशृंगी काकपादी [काकके चरणाकार] गोधिका [गोधाकार] यह इसीके भेद हैं ॥ ५१ ॥

त्रिचतुष्पञ्चसैन्यानां ज्ञेया आकारभेदतः ।
इति व्यूहाः समाख्याता व्यूहभेदप्रयोक्तृभिः ॥५२॥

आकारभेदसे कुक्कुटशृंगी ३ सेनाका, काकपादी चारका और गोधिकाव्यूह पांच सेनाओंका आकारभेदसे जानना यह व्यूहके जाननेवालोंने व्यूहभेद कहे हैं ॥ ५२ ॥

एवं सप्तदश प्रोक्ता दण्डव्यूहाश्च पञ्चधा ।
तथा व्यूहद्वयञ्चैव मण्डलस्य प्रयोक्तृभिः ॥ ५३ ॥

यह सब भेद सत्रह प्रकारके हैं चापसहित पांच प्रकारका दण्डव्यूह दो प्रकारका मंडलव्यूह * अर्धचन्द्रसे गोधिका तक छःप्रकारका असंहतव्यूह ॥ ५३ ॥

असंहतास्तु षड्व्यूहा भोगव्यूहाश्च पञ्चधा ।
व्यूहज्ञैस्तु प्रयोज्याः स्युर्युद्धकाल उपस्थिते ॥ ५४ ॥

गोमूत्रिकादि पांच प्रकारके भोग व्यूह हैं व्यूहके जाननेवालोंका युद्धके समय इनका प्रयोग करना चाहिये । जिसमें विरल सूक्ष्मग्रीव, मध्यमपुच्छ मोटे पक्षवाला क्रौञ्चव्यूह होता है । बडे पक्षवाला गल और पूंछमें मध्यम सूक्ष्म मुख श्येनव्यूह कहलाता है चौपायेके समान लम्बे आकार वाला स्थूलमुख, दो ओष्ठसंयुक्त मकरव्यूह होता है सूक्ष्ममुख लम्बाईमें समान विस्तारवाला बीचमें खाली सूचीव्यूह कहलाता है जिसका एक मार्ग हो आगे दृष्टि हो उसे चक्रव्यूह कहते हैं चारों दिशाओंमें जिसकी आठ परिधी हों उसे सर्वतोभद्रव्यूह कहते हैं जिसकी

* इन दोनोंका एकही भाव लिखा है ।

आकार छकडेके समान हो उसे शकटव्यूह सर्पके समान आकारवाला व्यालव्यूह कहाता है ॥ ५४ ॥

पक्षादीनामनीकेन हत्वा शेषं परिक्षिपेत् ।
तरसा च समाहत्य कोटिभ्यां परिवेष्टयन् ॥ ५५ ॥

अपनी सेनासे शत्रुके व्यूहके पक्षादिका संहार करके शेष सेनापर प्रहार और बडे वेगसे शत्रुसेनाकी कोटि (अग्रभाग) को घेरकर ताडित ॥ ५५ ॥

परकोटिमुपक्रम्य पक्षाभ्यामप्रतिग्रहः ।
कोटिभ्यां जघने हन्यादुरसा च प्रपीडयेत् ॥ ५६ ॥

अपनी सेनाके दोनों पक्षोंसे अप्रतिगृहीत होकर शत्रुकी सेनाकी कोट आक्रमण करके अपनी कोटियोंसे शत्रुसेनाके जघन देशमें प्रहार रके अपनी सेनाके उरस्थल भागसे उसको पीडित करै ॥ ५६ ॥

एवं व्यूहप्रयत्नेन यत्नवानवनीपतिः ।
विदारयेद्व्यूहजातं बलैश्च द्विषताम्बलम् ॥ ५७ ॥

इसप्रकार राजा व्यूहके प्रयत्नसे यत्न करताहुआ अपनी महान् सेनासे शत्रुके व्यूह और दलको विदीर्ण करै ॥ ५७ ॥

यतः फल्गु यतोऽभिन्नं यतो दुष्टैरधिष्ठितम् ।
ततो रिपुबलं हन्यादात्मानं चापि बृंहयेत् ॥ ५८ ॥

जिस समय शत्रुकी सेना थोडी हो वा मध्यम हो वा सबद्दको प्राप्त हुई हो, या दुष्टोंसे अधिष्ठित हो उस समय अपनी वृद्धि करताहुआ शत्रुकी सेनाको नष्ट करै ॥ ५८ ॥

अरिं द्विगुणसारेण फल्गुसारेण पीडयेत् ।
संहतं च गजानीके प्रचण्डैरेव वारयेत् ॥ ५९ ॥

शत्रुको दिगुने बलसे थोड़े बलसे पीड़ित करे, और संहति समूहमें प्राप्त हुए शत्रुको प्रचण्ड हाथियोंकी सेनासे निवारण करे ॥ ५९ ॥

दुर्जयान्करिण सिंहवसासिक्तैर्महागजे ।
आहन्यात्करिणां साथ समूहे साध्वधिष्ठिते ॥६०॥

सिंहकी चरबीसे अनुलिप्त महागजेन्द्रोंकि समूहों पर स्थित योधाओं द्वारा शत्रुको मारे, तथा उसकी चतुरंगिनी सेनाको नष्ट करे। कारण कि, हाथी दुर्जय होतेहैं इससे वा भलीप्रकार हस्त्यारोही और हाथियोंद्वारा मर्दित होते हैं ॥ ६० ॥

सलोहजालैर्दृढबद्धदन्तै सुकल्पितैरूर्जितपादरक्षैः ।
प्रवीरयोधैर्मदवुर्निवारैर्हन्याद्गजेन्द्रैर्द्विपतामनीकम् ॥६१॥

लोहजालसे जिनके दाँत दृढतासे बँधेहुए हैं और जिनके चरणोंकी रक्षा बहुत उत्तम रीतिसे की गई है, और जिनके गण्डस्थलसे मद चुराहै, ऐसे गजेन्द्र और महाबली योधाओंसे शत्रुकी सेनाको नष्ट करे ॥ ६१ ॥

एकोऽपि वारणपतिर्द्विषतामनीक
व्यक्तमिहन्ति मदसत्त्वगुणोपपन्नः ।
नागेषु हि क्षितिभुजां विजयो निबद्ध—
स्तस्माद्गजाधिकबलो नृपतिः सदा स्यात् ॥ ६२ ॥

इति श्रीकामन्दकीये नीतिसारे गजाश्वपथिकर्मणि
पदातिरथहस्तिभूमयो यानकल्पना व्यूहकल्पना
प्रकाराणुज वर्णनं नामोनविंश
सर्गः ॥ १९ ॥

मद और सत्वगुण सम्पन्न एकही गजराज अपने आरोही सहित निश्चयही शत्रुसेनाका संहार करता है । विशेष कहांतक कहै, राजाओंकी विजय हाथियोंकेही अधीन है इससे राजाको हाथियोका बल विशेष सग्रह करना चाहिये ॥ ६२ ॥

इति श्रीकामन्दकीये नीतिसारे मुरादाबादनिवासी पडितज्वाला-
प्रसादमिश्रकृतभाषाटीकाया गजाश्वपत्तिकर्मणि
पदातिरथ हस्तिभूमयो यानकल्पना व्यूह-
कल्पनाप्रकाशयुद्ध वर्णनं नामोन
विंश सर्ग ॥ १९ ॥

समाप्तश्चायं कामन्दकीयनीतिसारः ।



दोहा ।

श्रीरघुपतिके चरणयुग ममसहित हियलाय ।
नीतिसार कामन्दकी, भाषा लिखी बनाय ॥ १ ॥
पढहि याहि मनलाय जो, बढहि इहि अनुसार ।
राजकाज अरु लोकमें नित्य होय जयकार ॥ २ ॥
सम्वत्नभरससमहिविधु पौषकृष्ण गुरुवार ।
चतुर्दशी शिवतिथिकर, पूर्णभयो नयसार ॥ ३ ॥
बसत रामगंगानिकट, नगर मुरादाबाद ।
भजन करत हरिको तहां बुध ज्वालाप्रसाद ॥ ४ ॥
नितप्रति सुमिरहु रामको जपहु निरन्तर राम ।
तिनकी कृपाकटाक्षसे, सिद्धहोत सब काम ॥ ५ ॥

॥ शुभमस्तु ॥



पुस्तकोंके मिलनेका ठिकाना—
खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस, खेतवाडी—बम्बई